स्वर विहार

कक्षा 11 (संगीत)

स्वर विहार

कक्षा 11 (संगीत)

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान, अजमेर

पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति
पुस्तक – स्वर विहार (संगीत) कक्षा 11

संयोजिका एवं लेखिका
डॉ. सीमा राठौड़
वरिष्ठ व्याख्याता संगीत
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

लेखकगण

डॉ. प्रेम भण्डारी
सेवानिवृत विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय,
उदयपुर

श्री दुष्यन्त त्रिपाठी
विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय
ब्यावर, अजमेर

डॉ. मधु माथुर
वरिष्ठ व्याख्याता, संगीत
सम्राट पृथ्वीराज चौहान
राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

श्रीमती अनुपमा भट्ट
व्याख्याता संगीत,
राज. आदर्श बालिका उ.मा. विद्यालय
गणगौरी बाजार, जयपुर

अभिष्ट

देशी व मार्गी संगीत की दो चिरंतन धाराऐं युगों–युगों से मानव मन का रंजन करती रही हैं। देशी संगीत (प्रचलित अथवा लोकसंगीत) व्यापक व सर्वग्राह्य है। यहां इस प्राक्कथन की विषय वस्तु मार्गी (शास्त्रीय) संगीत है।

वैदिक संगीत की दिव्य अनुभूतियाँ, तानसेन के सांगीतिक चमत्कार, मींरा के दिव्य संगीत का प्रभाव, स्वामी हरिदास, नायक गोपाल, बैजू, बख्शू जैसे महान संगीतज्ञों की संगीत प्रतिभा की किंवदंतियां तथा इतिहास में प्राप्त कुछ लिखित साक्ष्य ही हम पश्चातवर्तियों को उपलब्ध है। ठोस व व्यावहारिक प्रमाण के अभाव में उनकी कला की मात्र चर्चा ही शेष है।

परंतु आज विज्ञान के चमत्कारी प्रयोगों से महान संगीतज्ञों की कला को सुरक्षित रखने व सर्वसुलभ कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आज संगीत शिक्षा हेतु कष्टसाध्य भटकाव की आवश्यकता नहीं है। विविध दृश्य श्रव्य उपकरण, इंटरनेट, पुस्तकें, संगीत कार्यक्रम, शिक्षा के व्यापक प्रसार, व्यक्तिगत व शासकीय प्रयासों आदि ने संगीत विद्यार्थियों को संदर्भ सामग्री के भंडार उपलब्ध करवा दिए है। लेकिन तमाम अध्ययन सामग्री की उपलब्धता के बावजूद भी विद्यार्थी के लिए मूलभूत अध्ययन सामग्री पुस्तक है तथा पाठ्यक्रम आधारित पुस्तक की उपलब्धता उन दूर दराज के ग्रामीण विद्यार्थियों के लिए सर्वाधिक है, जो साधनों की कमी या अन्य कारणों से मात्र पुस्तक के सहारे ही अध्यापन कार्य कर पाते हैं। अतः पुस्तक की अध्ययन सामग्री सरल, सुबोध, चित्रात्मक व आकर्षक होना आवश्यक है।

इस उद्देश्य की पूर्णता हेतु मा. शि. बोर्ड. अजमेर के सतत् प्रयासों से यह पुस्तक विद्यार्थियों के समक्ष है। गायन, मैलोडी वाद्य, ताल वाद्य तथा कथक नृत्य इन 4 खंडों में विभक्त इस पुस्तक लेखन में यह प्रयास किया गया है कि सरल भाषा के साथ संगीत संबंधी सामान्य ज्ञान की कुछ जानकारियाँ विद्यार्थियों को उपलब्ध करायी जा सके, साथ ही संगीत के लब्ध प्रतिष्ठित विद्ववत्जनों की प्रकाशित पुस्तकों के मंथन से प्राप्त नवनीत के द्वारा प्रत्येक अध्याय की विषयवस्तु को तथ्यात्मक कलेवर प्रदान करने का भी प्रयास किया गया है। इंटरनेट की सहायता से चित्रों का प्रयोग किया है जिनमें पुस्तक की पाठ्य सामग्री से संबंधित चित्रों के अलावा महान संगीतकारों के चित्र, मध्यकालीन रागमाला चित्र व्यंजना, विविध नृत्य शैलियों, मुद्राओं, तालों आदि का चित्रात्मक ज्ञान निश्चित तौर पर विद्यार्थियों की सांगीतिक अभिरूचि में वृद्धि करेगा, साथ ही प्रतियोगी परीक्षाओं हेतु संदर्भ पुस्तिका के रूप में भी उच्च शिक्षा के विद्यार्थी इसका प्रयोग कर सकेगें। पुस्तक के सुन्दर संयोजन एवं डिजाइनिंग कार्य हेतु **राजेन्द्र सिंह, रंगकर्मी, अजमेर** के आभारी हैं।

उत्तर भारत की प्रमुख कथक नृत्य शैली को इस वर्ष से प्रारंभ करने हेतु संपूर्ण संगीत जगत, मा. शि. बोर्ड अजमेर के समस्त नीति नियंताओं तथा राज्य सरकार का आभारी है।

पुस्तक में भूलवश किसी त्रुटि हेतु संपादक मंडल क्षमाप्रार्थी है।

सम्पादक मण्डल

मनुष्य की पाशविक वृत्तियों के शमन व शोध हेतु जीवन में संगीत की नितांत आवश्यकता है। – स्वामी विवेकानन्द

संगीत की मधुरता आत्मा व परमात्मा के बीच के अनन्त को भरती है।
– रविन्द्रनाथ टैगोर

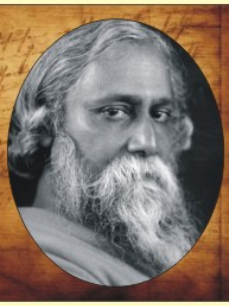

संगीत विज्ञान व मस्तिष्क के ज्ञान से परे आत्मा व परम् ध्यान के मध्य की रिक्तता की मधुर ध्वनियां हैं। –डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

योगीजन जिस ब्रह्म की प्राप्ति में अपने रक्त मांस को सुखा देते हैं वह संगीत से सहज ही प्राप्य है। – ओशो

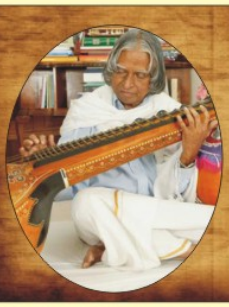

संगीत और पुस्तकों के सहारे मैं सम्पूर्ण जीवन आनन्द से काट सकता हूं।
– ए.पी.जे. अब्दुल कलाम

सबसे तोड़ो, सुर से जोड़ो, सुर ही सुमिरन।
सुर ही पूजा, सुर ही ईश्वर, सुर ही है जीवन।।
सुर में शक्ति, सुर ही भक्ति, सुर है देव अनंत।
सुर ही शाश्वत सत्य जगत का, सुर ही दिक् दिगंत।।
सुर का पान है, अमरलोक और राग रुप है रथ।
सुर–साधु, सुर–संत, सुर–सलिल साधे पंकज पंथ।।
सुर–सुर–सुर–सुर क्रम इस सुर का अनल–अनंत, अनूठा।
राग रुप में, तान रुप में कण–कण प्रतिपल छूता।।
आदिकाल से वर्तमान तक सुर स्वराज छाया है।
गीति–साम और लोक–शास्त्र क्या, हर स्वरुप पाया है।।
मीरा की करताल, कृष्ण का मुरली रुप जो पाया है।
शिव का डमरु, देवगान सब, सारी स्वर की माया है।।

–दुष्यन्त त्रिपाठी

अनुक्रमणिका

खण्ड 1	**गायन**	**पृष्ठ संख्या**
अध्याय 1.	परिभाषाएँ	9–23
अध्याय 2.	रागों का शास्त्रीय वर्णन	24–26
अध्याय 3.	संगीतज्ञों का योगदान एवं जीवनियाँ	27–37
अध्याय 4.	विविध बंदिशों का विस्तृत शास्त्रीय ज्ञान	38–40
अध्याय 5.	पं. विष्णु नारायण भातखण्डे की स्वरलिपि पद्धति	41–44
अध्याय 6	तालों और बंदिशों का स्वरलिपि लेखन	45–47
	बंदिशों की स्वरलिपि	48–61
खण्ड 2	**स्वर वाद्य**	
अध्याय 1.	परिभाषाएँ	62–73
अध्याय 2.	रागों का विस्तृत वर्णन	74–82
अध्याय 3.	संगीतज्ञों की जीवनियाँ	83–89
अध्याय 4.	ताल	90–92
अध्याय 5.	वाद्य यन्त्र परिचय	93–96
अध्याय 6	पं. विष्णु नारायण भातखण्डे की स्वरलिपि पद्धति	97–98
खण्ड 3	**ताल वाद्य**	
अध्याय 1.	परिभाषाएँ	99–103
अध्याय 2.	ताल के दस प्राण	104–109
अध्याय 3.	तबला एवं पखावज की रचना	110–117
अध्याय 4.	संगीतज्ञों की जीवनियाँ एवं पूर्ण परिचय	118–122
अध्याय 5.	प्रचलित तालें	123–130
खण्ड 4	**कथक नृत्य**	
अध्याय 1.	संगीत व नृत्य संबंधी पारिभाषिक शब्द	131–139
अध्याय 2.	कथक नृत्य के घराने	140–144
अध्याय 3.	नृत्यकारों की जीवनियाँ	145–149
अध्याय 4.	शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय	150–164
अध्याय 5.	राजस्थान के लोक नृत्य	165–171
अध्याय 6.	ताल	172–176
अध्याय 7.	प्रायोगिक कार्य हेतु परिशिष्ठ	177–184

संगीत–गायन

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
म मद्भक्तां यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न योगियों के हृदय में।
हे नारद, मेरे भक्त जहाँ गायन करते हैं वहीं मेरा निवास रहता है।

अध्याय 1

परिभाषाएँ

संगीत सम्पूर्ण चराचर जगत को ईश्वर द्वारा प्रदत्त मनोरम उपहार है। जो जड़ और चेतन को आनंद दे कर अनंतकाल से रसाप्लावित करता रहा है। सम्पूर्ण जीव जगत संगीत की लयात्मक अनुभूति से अनुप्रेरित है फिर चाहे वो हृदय की लयबद्ध धड़कन हो या श्वासों की सरगम। मेघों की गरजन का संगीत जहाँ अवनद्ध वादन की अनुभूति देता है तो मयूर का नर्तन जीवन्त नृत्य का प्रतिरुप है। इसी से शास्त्रों में गीत वाद्य और नृत्य की सम्मिलित अभिव्यक्ति को संगीत की संज्ञा दी गयी है।

यद्यपि गायन–वादन और नृत्य तीनों मिलकर संगीत की सम्यक सृष्टि करते है तथापि ये तीनों विद्याएँ अपने आप में पूर्ण होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। गायन को शास्त्रों में श्रेष्ठतर माना है क्योंकि गायन कला में बिना किसी भौतिक स्थूल आधार के अभिव्यक्ति व अनुभूति होती है। वादन कला को गायन का अनुचर और नृत्य कला गायन व वादन की सम्मिलित हाव भाव पूर्ण अभिव्यक्ति है।

नाद

दो वस्तु अथवा पदार्थ के परस्पर घर्षण अथवा आघात से ''ध्वनि'' उत्पन्न होती है। ध्वनि वह है जो कानों को सुनाई दे। ध्वनि दो प्रकार की होती है –

1. अमधुर ध्वनि (शोर अथवा कोलाहल)

वस्तु अथवा पदार्थ पर आघात से कम्पन्न उत्पन्न होता है जिसे ''आंदोलन'' कहते हैं। वह ध्वनि जिसके कम्पन्न अथवा आंदोलन अनियमित होते हैं – सुनने में कानों को अप्रिय लगती है। यह कर्कश ध्वनि – शोर अथवा कोलाहल कहलाती है। कर्कश ध्वनि संगीत में सर्वथा वर्ज्य है।

2. मधुर ध्वनि (नाद)

वह ध्वनि जिसके कम्पन्न अथवा आंदोलन नियमित होते हैं। कानों को सुनने में प्रिय लगती है। मधुर ध्वनि का सम्बंध संगीत से है।

मधुर एवं कर्णप्रिय संगीतोपयोगी ध्वनि ही नाद कहलाती है।

पं. शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में 'नाद' के संदर्भ में लिखा है –

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोभिधीयते ।। **– (संगीत रत्नाकर)**

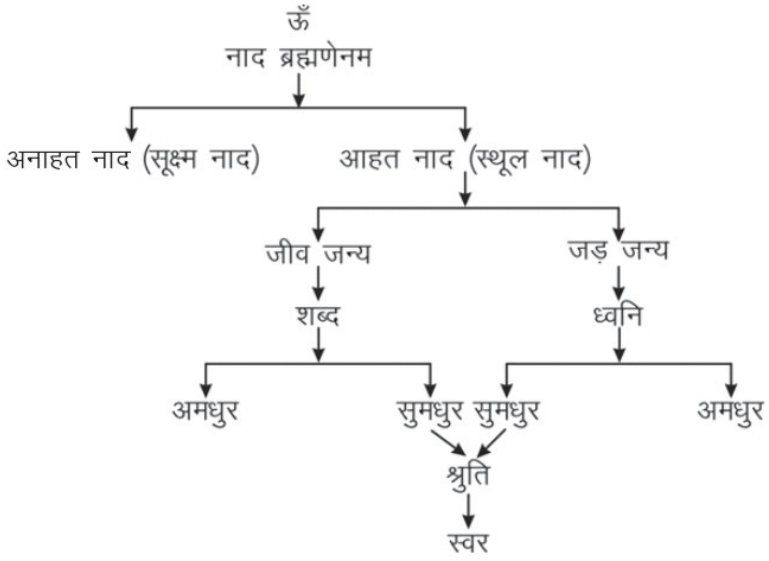

अर्थात नकार, प्राण वायु तथा दकार अग्निवाचक है। अतः प्राण वायु एवं अग्नि के संयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे ''नाद'' कहते हैं। नाद के दो भेद माने गये हैं –

(1) अनाहत नाद

(2) आहत नाद

(1) अनाहत नाद

स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न) ध्वनि है। नाभि से निरन्तर बिना किसी आघात के ध्वनि गुंजायमान होती है। इसी की अनुभूति योग में ''अनहद नाद'' कहलाती है। इसी अनहत नाद की साधना कर योगी, संत, महात्मा ''ब्रह्म'' से साक्षात्कार करते हैं। अनहत नाद की अखण्ड सत्ता शाश्वत है, सनातन है और सर्वव्यापक है जो सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण चराचर जगत अनहत नाद से आवर्त्त है। कबीर ने हठयोग साधना के संदर्भ में अनहत नाद का उल्लेख किया है –

'' आदि नाद अनहत भयो ।
ताते उपज्यो ब्रह्म ''।।

अनहत नाद केवल अनुभूति योग्य है जिसे स्थिर प्रज्ञ होकर समाधि अवस्था में ही सुन सकते हैं। सामान्य अवस्था में कनिष्का ऊंगली को कानों में गहराई तक दबाव पूर्वक डाल कर एकाग्रचित्त शान्त अवस्था में भी अनहत नाद की अनुभूति को सुना जा सकता है।

(2) आहत नाद

आहत नाद के अन्तर्गत वह मधुर ध्वनि आती है जो किसी प्रयास से उत्पन्न की जाती है। संगीत में नाद के इसी स्वरूप का प्रयोग होता है। यह नाद तीन प्रकार से उत्पन्न होता है –

1) वस्तु अथवा पदार्थ के परस्पर आघात द्वारा। उदाहरण –तबले की पूड़ी पर आघात करने पर उत्पन्न नाद।

2)दो वस्तुओं के परस्पर रगड़ अथवा घर्षण से । उदाहरण

–सारंगी, वॉयलिन पर गज को तार पर रगड़े जाने से ध्वनि उत्पन्न होती है।

3) वायु के आवागमन द्वारा । उदाहरण – बाँसुरी, शहनाई, बीन आदि में हवा भरने से ध्वनि उत्पन्न होती है। गले में भी वायु के प्रवेश से स्वर तन्तुओं में कम्पन्न होता है और ध्वनि उत्पन्न होती है।

नाद की विशेषताएँ –'' नाद '' की तीन विशेषताएँ हैं –

(1) नाद का ऊँचा–नीचापन अथवा ''तारता''

नाद की इस विशेषता का सम्बन्ध प्रति सैंकण्ड में होने वाली आन्दोलन संख्या से है। संगीत में सप्तक का आधार नाद का ऊँचा–नीचापन होता है। आधार स्वर ''सा'' से क्रमशः आरोह करने पर रे ग म प ध नी स्वर ऊँचे होते चले जाते हैं तथा तार 'सां' से अवरोह करने पर नी ध प म ग रे स्वर क्रमशः नीचे होते चले जाते हैं। स्वर के ऊँचे होने पर उसकी आन्दोलन संख्या बढ़ती जाती है और नीचे होने पर आन्दोलन संख्या घटती जाती है। उदाहरण के लिये मध्य 'सा' की आन्दोलन संख्या 240 है तो तार 'सां' की आन्दोलन संख्या 480 है।

(2) नाद का छोटा–बड़ापन अथवा ''तीव्रता''

जब वस्तु पर आघात अथवा घर्षण धीरे किया जाता है तो वह नाद कम दूरी तक सुनाई देता है और जब यही आघात अथवा घर्षण ताकत से किया जाता है तो नाद दूर तक सुनाई देता है। उदाहरण के लिये जब हम गुनगुनाते हैं तो ध्वनि को पास बैठा व्यक्ति ही सुन सकता है। वहीं खुले गले का जोरदार गायन दूर तक सुनाई देता है। नाद का यही गुण नाद का छोटा–बड़ापन अथवा ''तीव्रता'' कहलाती है।

(3) नाद की जाति अथवा गुण

नाद की इस विशेषता द्वारा ही हमें यह बोध होता है कि नाद अथवा मधुर ध्वनि किस वाद्य या वस्तु अथवा अपरिचित/परिचित कंठ से उत्पन्न हो रही है। नाद की इसी विशेषता के द्वारा एक नाद से दूसरे नाद के पृथकत्व को पहचाना जा सकता है। उदाहरण के लिये सितार, तबला और बाँसुरी से उत्पन्न मधुर ध्वनि को हम बिना वाद्य देखे ही पहचान लेते हैं अथवा किसी परिचित के कंठ की ध्वनि को उस व्यक्ति को देखे बिना ही पहचान लेते हैं।

श्रुति

'श्रुति' शब्द संस्कृत के ''श्रु'' धातु से बना है जिसका अर्थ है – श्रवण करना।

नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।
लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीतश्रुतिलक्षणम ।। **– अभिनव राग मंजरी**

अर्थात् – वह मधुर ध्वनि जो गीत में प्रयुक्त की जा सके और एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, 'श्रुति' कहलाती है। इसे अधिक स्पष्ट समझने के लिये मान लिजिये, हमने पहले एक नाद लिया, जिसकी आंदोलन–संख्या 100 कंपन प्रति सैकंड है। फिर हमने दूसरा नाद लिया, जिसकी आंदोलन संख्या 101 कंपन प्रति सैकंड है। वैज्ञानिक दृष्टि से तो ये दो भिन्न नाद हैं, परन्तु इनकी कंपन–संख्याओं में इतना कम अंतर है कि किसी कुशल संगीतज्ञ के कान भी इन दोनों नादों को पृथक–पृथक शायद ही पहचान सकेंगे। अब यदि हम दूसरे नाद में क्रमशः एक–एक कंपन्न प्रति सैकंड बढ़ाते जाएँ, तो एक

स्थिति ऐसी आ जाएगी कि ये दोनों नाद अलग–अलग स्पष्ट पहचाने जा सकेंगे या इन दोनों नादों को पृथक–पृथक स्पष्ट सुना जा सकेगा। इसी आधार पर विद्वानों ने श्रुति की परिभाषा यह दी है कि जो नाद एक–दूसरे से पृथक तथा स्पष्ट पहचाना जा सके, उसे 'श्रुति' कहते हैं। एक सप्तक में ऐसे गुणीजन पृथक्–पृथक् सुने जा सकने वाले नादों की संख्या बाईस मानते हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्लोक देखिए :

तस्य द्वाविंशतिर्भेद श्रवणात् श्रुतयोर्मताः।
हृदयाभ्यन्तरसंलग्ना नाड्यो द्वाविशतिर्मताः।। **– स्वरमेल कलानिधि**

अर्थात– हृदय–स्थान में बाईस नाड़ियाँ हैं। उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं। यही नाद के बाईस भेद माने गए हैं। हमारे संगीत–शास्त्रकार प्राचीन समय से बाईस नाद मानते चले आ रहे हैं। ये नाद क्रमशः एक–दूसरे से ऊँचे चढ़ते चले गए हैं। इन्हीं बाईस नादों को 'श्रुति' कहते हैं।

शास्त्रों में 22 श्रुतियों के नाम इस प्रकार बताये गये हैं –

1.	तीव्रा	9.	क्रोधा	17.	आलापिनी
2.	कुमुद्धति	10.	वज्रिका	18.	मदंती
3.	मंदा	11.	प्रसारिणी	19.	रोहिणी
4.	छन्दोवती	12.	प्रीति	20.	रम्या
5.	दयावती	13.	मार्जनी	21.	उग्रा
6.	रंजनी	14.	क्षिति	22.	क्षोभिणी
7.	रक्तिका	15	रक्ता		
8.	रौद्री	16.	संदीपनी		

किन्तु इन 22 श्रुतियों पर गान करने में सर्वसाधारण को कठिनाई होती है। अतः इन बाईस श्रुतियों में से बारह श्रुतियों को चुनकर गान में प्रयुक्त किया जाने लगा। इन्हीं 12 श्रुतियों पर संगीत के सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर स्थित हैं।

श्रुति स्वर विभाजन

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड़ज मध्यम पंचमा : ।
द्वै द्वै निषाद गांधारो त्रिस्त्रीऋषभधैवतो ।।– श्री मल्ललक्ष्यसंगीत

अर्थात – सा – म – प स्वरों की चार–चार श्रुतियाँ, रे – ध स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ तथा निषाद और गंधार स्वरों की दो–दो श्रुतियाँ हैं। इसे यों समझ सकते हैं –

सा, म, प,	स्वर	3 स्वर	X	4 श्रुति युक्त	–	12 श्रुति
रे, ध	स्वर	2 स्वर	X	3 श्रुति युक्त	–	6 श्रुति
ग, नि	स्वर	2 स्वर	X	2 श्रुति युक्त	–	4 श्रुति
		योग = 7 स्वर				योग = 22 श्रुति

प्राचीन ग्रंथकार शुद्ध स्वरों को उस स्वर की अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते हैं।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
			↓			↓		↓				↓				↓			↓		↓
			सा			रे		ग				म				प			ध		नी

आधुनिक ग्रंथकार शुद्ध स्वरों को उनकी पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
↓				↓			↓		↓				↓				↓			↓	
सा				रे			ग		म				प				ध			नी	

इन्हीं सात स्वरों के मध्य पाँच विकृत स्वर स्थित हैं। इस प्रकार 22 श्रुतियों व स्वरों की अवस्था बताई गयी है।

स्वर

राजते जाति रागादौ स्वयं रञ्जयतीह तान्।
रञ्जकः श्रोतृमसां मृगान् रञ्जयतीहत्यपि ।।
– गीत रत्नकोष/संगीत राज महाराणा कुम्भाकृत

अर्थात – स्वर स्वयं रंजक है। जाति और राग स्वर से ही शोभित होते हैं। श्रोताओं के मन को और मृगादि (पशुओं) को भी स्वर रंजकता (आनन्द) प्रदान करता है।

कर्णप्रिय ध्वनि की प्रारम्भिक सूक्ष्म अवस्था श्रुति है और अनुरणात्मक (गुंजित) स्थिर स्वरूप ''स्वर'' कहलाता है। जो श्रुति से ही उत्पन्न होता है।

श्रुतयः स्युः स्वराभिनः श्रवणेत्वने हेतुना ।
अहिकुण्डलवत्तत्र भेदोक्ति शास्त्रसम्मता ।। – संगीत पारिजात

अर्थात – श्रुति और स्वर में '' सर्प '' और '' कुण्डली '' के समान भेद है 22 श्रुतियों में से जब किसी ''श्रुति'' का प्रयोग राग में होता है तो वह सर्प की भाँति क्रियाशील हो जाती है और अप्रयोगित होने की दशा में वह कुण्डली की भाँति सुप्तावस्था में श्रुति की संज्ञा पाती है। कुण्डली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है, उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर ''स्वर'' स्थित है। एक सप्तक में 7 शुद्ध और पांच विकृत कुल 12 स्वर माने गये हैं –

शुद्ध स्वर – स्वर जब अपने निश्चित स्थान पर रहता है तो ''शुद्ध स्वर'' कहलाता है। शुद्ध स्वर 7 माने गये हैं –

षड़ज – सा
ऋषभ – रे
गंधार – ग
मध्यम – म
पंचम – प
धैवत – ध
निषाद – नी

संगीतानुरागी महाराणा कुम्भा

विकृत स्वर – स्वर अपनी निश्चित अथवा शुद्ध अवस्था को छोड़कर विलकृत कहाता है। विकृत स्वरों की संख्या 5 हैं–

कोमल स्वर : रे , ग , ध , नी

तीव्र स्वर : म

अचल स्वर – सा और प अचल स्वर कहलाते हैं जो कभी भी अपना स्थान नहीं छोड़ते हैं।

रागों में स्वरों के चार रूप प्रयुक्त होते हैं –

(1) वादी स्वर –

रागका प्रधान स्वर है जिसपर राग का स्वरूप निश्चित रहता है। इस स्वर का राग में ''राजा'' के समान महत्त्व होता है।

(2) संवादी स्वर –

रागमें इस स्वर को ''मंत्री'' के समान महत्त्व दिया गया है जो वादी के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण स्वर है। संवादी स्वर का वादी स्वर से सदैव 'संवाद' रहता है जो प्रायः 9 अथवा 13 श्रुतियों का होता है। यथा सा – प, सा – म, रे – ध, ग – नि । यह संवाद राग में रंजकता लाता है।

(3) अनुवादी स्वर –

इस स्वर का महत्त्व ''अनुचार'' के समान होता है। वादी और संवादी स्वर के अतिरिक्त राग में लगने वाले सभी स्वर अनुवादी कहलाते हैं।

(4) विवादी स्वर –

यह राग का वर्जित स्वर है जो राग को हानि पहुँचाता है किन्तु अल्पमात्रा में कुशलतापूर्वक प्रयोग कभी–कभी सौन्दर्यवृद्धि भी करता है।

सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात'। क्योंकि एक स्थान पर सात शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अतः इसका नाम 'सप्तक' हुआ। ध्वनि की साधारण उँचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा 'अ.....' इस प्रकार आलाप लेता है, तो उसे 'मध्य–सप्तक' कहते हैं, किन्तु जब कभी नीचे आवाज़ ले जाने की आवश्यकता होती है, तो वहाँ 'मंद्र–सप्तक' के स्वर काम देते हैं। और, जब मध्य–सप्तक से भी ऊँचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब 'तार–सप्तक' के स्वर प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार सप्तक तीन प्रकार के होते हैं।

मंद्र–सप्तक के स्वरों को बोलने में हृदय पर, मध्य–सप्तक के स्वरों को बोलने में कंठ पर और तार–सप्तक के स्वरों को बोलने में तालू पर ज़ोर लगाना पड़ता है। नाद, अर्थात आवाज़ की ऊँचाई और निचाई के आधार पर उसके मंद्र, मध्य और तार, ये तीन भेद माने जाते हैं। इनको 'नाद–स्थान' कहते हैं। इन तीन नाद–स्थानों में एक–एक सप्तक मानकर क्रमशः मंद्र–सप्तक, मध्य–सप्तक और तान–सप्तक कहलाते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक होते हैं; यथा :–

प्रथमं सप्तकं मंद्र, द्वितीयं मध्यमं स्मृतम्।
तृतीय तारसंज्ञं स्यादेवं स्थानत्रयं मतम।।

मंद्र–सप्तक :

जिस सप्तक के स्वरों की आवाज़ सबसे नीची हो अथवा मध्य–सप्तक से आधी हो, उसे 'मंद्र–सप्तक' कहते हैं। भातखंडे–पद्धति में इसके स्वरों की पहचान के लिये स्वरों के नीचे बिन्दु लगाया जाता है।

जैसे – सा॒ रे॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नि॒ (मंद्र –सप्तक)

मध्य–सप्तक :

मंद्र–सप्तक से दुगुनी आवाज़ होने पर 'मध्य–सप्तक' कहलाता हैं। इसके स्वरों पर कोई चिन्ह नहीं होता है

जैसे – सा रे ग म प ध नि (मध्य–सप्तक)

तार–सप्तक :

मध्य–सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज़ होने पर 'तार–सप्तक' कहलाता है। इसे उच्च–सप्तक भी कहते हैं। इसकी पहचान के लिये स्वरों के ऊपर बिन्दु लगा दिया जाता है ।
जैसे – सां रें गं मं पं धं निं (तार–सप्तक)

यद्यपि एक सप्तक में सात स्वर कहे गये हैं तथापि कोमल–तीव्र रूप करके स्वरों की संख्या एक सप्तक में बारह हो जाती है। बारह–बारह स्वरों के इस प्रकार सप्तक होते हैं :
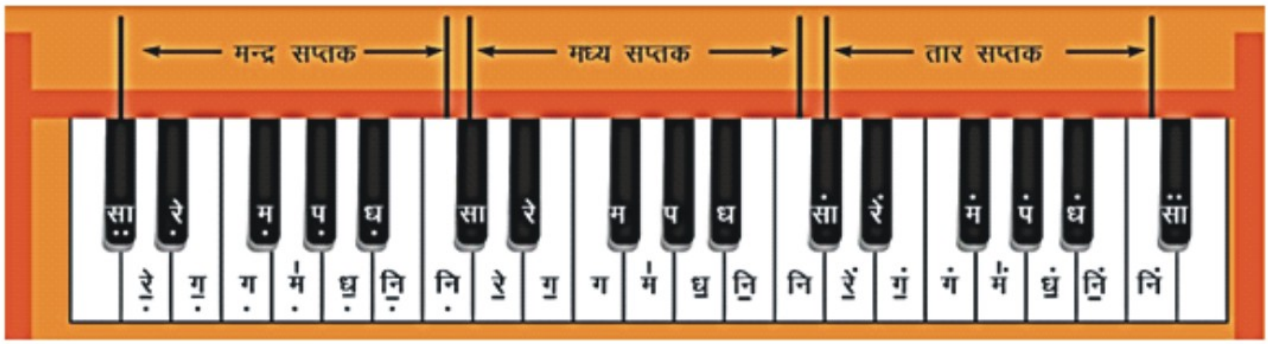
अलंकार

प्राचीन ग्रंथकार 'अलंकार' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं:

विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकार प्रचक्षते

अर्थात्– कुछ नियमित वर्ण–समुदायों को 'अलंकार' कहते हैं। 'अलंकार' का अर्थ है 'आभूषण' या 'गहना'। जिस प्रकार आभूषण शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन की शोभा बढ़ जाती है। 'अभिनव रागमंजरी' में लिखा है :

शशिनारहितेव निशाबिजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषिते कांता गीतिरलंकारहीना स्यात्।।

अर्थात्– जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, फूलों के बिना लता तथा आभूषणों के बिना स्त्री शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार अलंकार–बिना गीत भी शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकार को 'पलटा' भी कहते हैं। गायन सीखने से पहले विद्यार्थियों को अलंकार सिखाये जाते हैं, क्योंकि इसके बिना न तो अच्छा स्वर–ज्ञान होता है और न उन्हें आगे संगीत–कला में सफलता ही मिलती है। अलंकारों से राग–विस्तार में भी काफी सहायता मिलती है। अलंकारों के द्वारा राग की सजावट करके उसमें चार चाँद लगाए जा सकते हैं। तानें इत्यादि भी अलंकारों के आधार पर ही बनती हैं, जैसे 'सारे, गरे, गम, गम प –। रेग रेग मप मप ध –' इत्यादि।

अलंकार वर्ण–समुदायों में ही होते हैं। उदाहरण के लिए इस वर्ण–समुदाय को लीजिए – 'सा रे ग सा'। इसमें आरोही–अवरोही, दोनों वर्ण आ गए हैं। यह एक सीढ़ी मान लीजिए। अब इसी आधार पर आगे बढ़िए और पिछला स्वर छोड़कर आगे का स्वर बढ़ाते जाइए; रे ग म रे यह दूसरी सीढ़ी हुई; ग म प ग यह तीसरी सीढ़ी हुई। इसी प्रकार बहुत से अलंकार तैयार किए जा सकते हैं; शुद्ध स्वरों के अलावा कोमल–तीव्र स्वरों के अलंकार भी तैयार किए जा सकते हैं, किन्तु उनमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं, वे ही स्वर उस राग के अलंकारों में मिल जाएँ। यथा शुद्ध स्वरों के कुछ अलंकार इस प्रकार हैं –

(1)	आरोह	–	सारे–सारेग, रेग–रेगम, गम–गमप, मप–मपध, पध–पधनी, धनि, धनिसां
	अवरोह	–	सांनि–सांनिध, निध–निधप, धप–धपम, पम–पमग, मग–मगरे, गरे–गरेसा
(2)	आरोह	–	सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी, धनिसां
	अवरोह	–	सांनिध, निधप, धपम, पमग, मगरे, गरेसा
(3)	आरोह	–	सारेगम, रेगमप, गमपध, मपधनि, पधनिसां
	अवरोह	–	सांनिधप, निधपम, धपमग, पमगरे, मगरेसा
(4)	आरोह	–	सारेगमप, रेगमपध, गमपधनि, मपधनिसां
	अवरोह	–	सांनिधपम, निधपमग, धपमगरे, पमगरेसा
(5)	आरोह	–	सागरेसा, रेमगरे, गपमग, मधपम, पनिधप, धसांनिध, निरेंसांनि, सांगरेंसां
	अवरोह	–	सांगरेंसां, निरेंसांनि, धसांनिध, पनिधप, मधपम, गपमग, रेमगरे, सागरेसा

राग

योऽयमं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ।।

अर्थात – ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसमें स्वर तथा वर्ण के कारण सौंदर्य हो, जो मनुष्य के चित्त वर्ण का रंजन करे अर्थात जो श्रोताओं के मन को प्रसन्न करे, बुद्धिमान लोग उसे 'राग' कहते हैं। प्राचीन ''जाति गायन'' का ही परिवर्तित स्वरूप राग गायन है। रागदारी संगीत भारतीय संगीत का प्रधान वैशिष्ट्य है। राग में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है –

1) राग किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए ।
2) किसी भी राग में षड़ज स्वर सर्वथा वर्जित नहीं होना चाहिये क्योंकि यह सप्तक का आधार स्वर होता है। साथ ही म, प दोनों स्वर एक राग में एक साथ वर्जित नहीं होने चाहिए।
3) उसमें स्वर तथा वर्ण आरोह–अवरोह हो एवं वादी तथा संवादी योजना होनी आवश्यक है।
4) रंजकता यानी सुन्दरता हो।
5) राग में कम से कम पाँच स्वर होने चाहिए।

जाति

ठाठ के स्वरों में से ही राग तैयार होते हैं। ठाठ में सात स्वर होने जरूरी हैं, किन्तु राग में यह जरूरी नहीं कि सात ही स्वर हों। अतः किसी ठाठ के स्वरों में से पांच, छह या सात स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है, तो जितने स्वर उस ठाठ में से लिए जाते हैं, उन्हीं के आधार पर उसकी जाति निश्चित की जाती है। इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों की तीन जातियाँ मानी गई हैं; जिन्हें औडव, षाड़व और सम्पूर्ण कहते हैं –

औडव राग

जब किसी ठाठ में से कोई दो स्वर घटाकर (वर्जित करके) कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में पाँच स्वर लगते हैं, तो उसे 'औड़व राग' कहते हैं; जैसे भूपाली, मालकौंस इत्यादि। ध्यान रहे कि

'सा' स्वर वर्जित नहीं किया जाता।

षाड़व राग

किसी ठाठ में से केवल एक स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में छह स्वर प्रयुक्त होते हैं, तो उसे 'षाड़व राग' कहते हैं; जैसे मारवा, पूरिया इत्यादि।

सम्पूर्ण राग

ठाठ में कोई स्वर न घटाकर सातों स्वर जिस राग में लगते हैं, उसे 'सम्पूर्ण राग' कहते हैं; जैसे यमन, बिलावल, भैरव और भैरवी इत्यादि। ऊपर बताई हुई तीन जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः पाँच–छह स्वर हैं, लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं, जिनके आरोह में छह तथा अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं अथवा आरोह में सात और अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं। ऐसे रागों को पहचानने के लिए ग्रंथकारों ने उपर्युक्त तीन जातियों में से हर एक जाति की तीन–तीन जातियाँ और बना दी है। इस तरह नौ प्रकार की जातियाँ बनी –

सम्पूर्ण	1) सम्पूर्ण–सम्पूर्ण	2) सम्पूर्ण–षाड़व	3)सम्पूर्ण–औड़व
षाड़व	1) षाड़व–सम्पूर्ण	2) षाड़व–षाड़व	3) षाड़व–औड़व
औड़व	1) औड़व–सम्पूर्ण	2) औड़व–षाड़व	3) औड़व–औड़व

इस प्रकार तीन जातियों से नौ उपजातियों की उत्पत्ति हुई। अब इनका पूर्ण विवरण देखिए –

सम्पूर्ण–सम्पूर्ण :

जिस राग के आरोह में सात स्वर हों और अवरोह में भी सात स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण–सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे।

सम्पूर्ण–षाड़व :

जिस राग के आरोह में सात स्वर और अवरोह में छह स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण–षाड़व जाति का राग कहेंगे।

सम्पूर्ण–औड़व : जिसके आरोह में सात स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हों।
षाड़व–सम्पूर्ण : जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में सात स्वर हों।
षाड़व–षाड़व : जिसके आरोह में छह स्वर हो तथा अवरोह में भी छह स्वर हो।
षाड़व–औड़व : जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हो।
औड़व–सम्पूर्ण : जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में सात स्वर हो।
औड़व–औड़व : जिसके आरोह में भी पाँच स्वर हों तथा अवरोह में भी पाँच स्वर लगते हो।

रागों की इन जातियों से राग–संख्या मालूम हो जाती है। देखिए, उपर्युक्त नौ जातियों से किस प्रकार किसी एक ठाठ द्वारा 484 राग तैयार हुए।

सम्पूर्ण–सम्पूर्ण : इससे केवल एक राग ही बन सका, क्योंकि आरोह में भी सात स्वर हैं और अवरोह में भी सात स्वर हैं।

सम्पूर्ण–षाड़व : इस जाति के छह राग बन सकते हैं, क्योंकि आरोह तो सम्पूर्ण रखते जाइए और अवरोह में प्रत्येक बार एक स्वर बदलकर छोड़ते जाइए।

सम्पूर्ण–औड़व : इसके आरोह में सात स्वर रखते जाइए और अवरोह में दो स्वर (बदल–बदलकर) जोड़ते जाइए, तो पन्द्रह राग बनें।

षाड़व–सम्पूर्ण : आरोह में छह स्वर होने के कारण, छह बार एक–एक स्वर बदलकर छोड़ने से इसके भी छह राग बने।

षाड़व–षाड़व : इसके आरोह में छह बार, एक–एक स्वर बदलकर रखा, तो छह टुकड़े हुए। इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया, तो $6\times6=36$राग इस जाति से बनें।

षाड़व–औड़व : इस जाति में 90 राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में एक स्वर छोड़ने से छह और अवरोह में दो–दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह अर्थात् $15\times6=90$राग बनें।

औड़व–सम्पूर्ण : आरोह में दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से पन्द्रह राग पैदा हुए।

औड़व–षाड़व : क्योंकि इसके आरोह में प्रतिबार कोई से दो स्वर छोड़ने पड़े तो पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में एक स्वर प्रतिबार छोड़ना पड़ा तो छह प्रकार बने, इसलिए $15\times6=90$ राग इस जाति से उत्पन्न हुए।

औड़व–औड़व : इस जाति के सबसे अधिक अर्थात् दो सौ पच्चीस राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रतिबार दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने, तो $15\times15=225$ राग तैयार हुए ।

इस प्रकार एक ठाठ की नौ जातियों से चार सौ चौरासी (484) राग बने, जो नक्शे द्वारा स्पष्ट किए जाते हैं।

सं.	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयारहो सकते हैं
1.	सम्पूर्ण–सम्पूर्ण	7	7	1
2.	सम्पूर्ण–षाड़व	7	6	6
3.	सम्पूर्ण–औड़व	7	5	15
4.	षाड़व–सम्पूर्ण	6	7	6
5.	षाड़व–षाड़व	6	6	36
6.	षाड़व–औड़व	6	5	90
7.	औड़व–सम्पूर्ण	5	7	15
8.	औड़व–षाड़व	5	6	90
9.	औड़व–औड़व	5	5	225

इस प्रकार एक ठाठ की नौ जातियों से उत्पन्न रागों का कुल जोड़ 484 (चार सौ चौरासी) होता है।

जब एक ठाठ से चार सौ चौरासी राग तैयार हो सकते हैं, तो उत्तरी संगीत–पद्धति के दस ठाठों से $484\times10=4840$ राग बने और दक्षिण संगीत–पद्धति के बहत्तर ठाठों से $484\times72=34848$ राग तैयार हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और भी राग केवल वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार यद्यपि रागों की संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है; किन्तु प्रचार में दो सौ रागों से अधिक दिखाई नहीं देते; क्योंकि राग में रंजकता होनी आवश्यक है। इस बंधन के कारण राग संख्या मर्यादित–सी हो जाती है।

थाट

'मेल' (ठाठ) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिससे राग उत्पन्न हो सके। नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से ठाठ तैयार होते हैं –

मेलःस्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्

एक सप्तक में शुद्ध–विकृत (कोमल–तीव्र) मिलकर कुल बारह स्वर होते हैं। इन्हीं स्वरों की सहायता से ठाठ तैयार होते हैं और 'ठाठ' को ही संस्कृत में 'मेल' कहते हैं।

ठाठ के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें –

(1) यद्यपि ठाठ बारह स्वरों से तैयार किए गए हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वर ही लिए जाते हैं। ये सात स्वर उन्हीं बारह स्वरों में से चुन लिए जाते हैं।

(2) वे सात स्वर 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि,' इसी क्रम से और इन्हीं नामों से होने चाहिए। यह हो सकता है कि उपर्युक्त सात स्वरों में से कोई कोमल या कोई तीव्र ले लिया जाए, किन्तु सिलसिला यही रहेगा। राग में ये स्वर इस क्रम से हों या न हों, किन्तु ठाठ में इस क्रम का होना आवश्यक है। राग में सात स्वरों से कम भी हो सकते हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वरों का होना जरूरी है। अर्थात् ठाठ का सम्पूर्ण होना आवश्यक है, क्यों कि बहुत से ऐसे राग हैं, जिनमें सातों स्वर लगते हैं, इसलिए ठाठ में सातों स्वरों का होना आवश्यक है; अन्यथा उससे सम्पूर्ण जाति के राग तैयार करने में असुविधा होगी।

(3) ठाठ में केवल आरोह ही होता है, इसमें आरोह–अवरोह, दोनों का होना आवश्यक नहीं है।

(4) ठाठ में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल व तीव्र) साथ–साथ नहीं आ सकते हैं।

(5) ठाठ में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है, अर्थात् यह आवश्यक नहीं कि ठाठ सुनने में कानों को अच्छा ही लगे। कारण, ठाठ में क्रमानुसार सात स्वर लेना अनिवार्य होता है और कभी–कभी एक स्वर के दो स्वरूप (कोमल–तीव्र) भी साथ–साथ आ सकते हैं; इसलिए प्रत्येक ठाठ में रंजकता का रहना सम्भव है ही नहीं क्यों कि थाट को गाया अथवा बजाया नहीं जाता ।

(6) ठाठ को पहचानने के लिए, उसमें से उत्पन्न हुए किसी प्रमुख राग का नाम दे दिया जाता है; जैसे – असावरी एक प्रसिद्ध राग है, इसलिए असावरी राग के स्वरों के अनुसार जो ठाठ बना, उस ठाठ का नाम भी 'असावरी ठाठ' रख दिया। इसी प्रकार अन्य ठाठों के नाम रखे गए। प्रत्येक ठाठ में स्वर तो केवल सात ही होते हैं, किन्तु उनके स्वरों में कोमल, तीव्र का अन्तर पड़ सकता है। इस अन्तर से ही तरह–तरह के ठाठ बना लिए है।

यमन, बिलावल और खमाजी; भैरव पूरवि, मारवा, काफ़ी ।
आसा, भैरवी, तोड़ी बखाने; दशमित ठाठ 'चतुर' गुनि मानें ।।

पंडित भारखण्डे जी की इस कविता से दस ठाठों के नाम आसानी से याद हो जाते हैं। नीचे दस ठाठों में लगने वाले कोमल व तीव्र स्वर इस प्रकार हैं –

दस ठाठों के सांकेतिक चिन्ह –

यमन या कल्याण ठाठ	:	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
बिलावल ठाठ	:	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
खमाज ठाठ	:	सा	रे	ग	म	प	ध	<u>नि</u>	सां
भैरव ठाठ	:	सा	<u>रे</u>	ग	म	प	<u>ध</u>	नि	सां
पूर्वी ठाठ	:	सा	<u>रे</u>	ग	म॑	प	<u>ध</u>	नि	सां
मारवा ठाठ	:	सा	<u>रे</u>	ग	म॑	प	ध	नि	सां
काफ़ी ठाठ	:	सा	रे	<u>ग</u>	म	प	ध	<u>नि</u>	सां
आसावरी ठाठ	:	सा	रे	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां
भैरवी ठाठ	:	सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म	प	<u>ध</u>	<u>नि</u>	सां
तोड़ी ठाठ	:	सा	<u>रे</u>	<u>ग</u>	म॑	प	<u>ध</u>	नि	सां

लय

सम्पूर्ण ब्रह्मांड लयात्मक है। प्रकृति का प्रत्येक उपादान लयात्मक अनुभूति से झंकृत हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, सभी कुछ लयबद्ध अस्तित्व को अपने आप में समेटे हुए हैं। प्रकृति को देखिये उसका प्रत्येक क्रियाकलाप लयबद्ध है – भोर का उगता हुआ सूर्य, चाँदनी बिखेरता चाँद, टिमटिमाते तारे, सभी की मार्मिक अनुभूति लयात्मक है। मेघों का गर्जन हो या झरनों का कलरव, कोयल की कूक हो या पपीहे की हूक, सूखे पत्तों की मर्मराहट हो या सनसनाती वासंती पवन, सभी की क्रियाएँ लयात्मक है। जहाँ तक मनुष्य जीवन का संबंध है – तो फिर साँसों की सरगम हो या हृदय की धड़कन, इनकी लयात्मकता ही प्राणी मात्र में प्राणों का संचार करती है। इसीलिये हम संगीत साधक सदैव नादरूपा रसरंजनी माँ सरस्वती से सदैव इसी नित्य सुख की कामना करते हैं कि वो हमारी वाणी में सुर और प्राणों में लय का स्पंदन कभी भी विशृंखल ना होने दे। हमारे नित्य प्रति के व्यवहार में सदैव कोई ना कोई लय अवश्य रहती है।

संगीत में समान गति को लय कहते हैं। व्यापक अर्थ में समय की किसी भी गति को लय कहते हैं। लय की शास्त्रीय व्याख्या इस प्रकार हो सकती है– ''ताल में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच के विश्रान्ति का काल, जो पहली क्रिया का विस्तार है – '' लय '' कहलाता है। अर्थात कलाओं के मध्य स्थित कला की विश्रान्ति युक्त क्रिया को लय कहा जाता है। विश्रान्ति के घटने और बढ़ने से लय में विविधता आती है और इसी विविधता को तीन प्रकार से बाँटा जा सकता है। लय के तीन प्रकार इस प्रकार है –

(1)विलंबित लय –

विलम्ब का अर्थ है '' देर ''। जिस लय की चाल बहुत धीमी हो उसे विलम्बित लय कहते हैं। इसकी गति मध्य लय से ठीक दुगुनी होती है

(2)मध्य लय –

मध्य लय की गति साधारण होती है। मध्य का अर्थ है – '' बीच ''। अर्थात जिस लय की चाल विलम्बित से तेज और द्रुत से कम हो उसे '' मध्य लय '' कहते हैं।

(3)द्रुत लय –

''द्रुत'' का अर्थ है ''तेज'' । जिस लय की चाल विलम्बित लय से चौगुनी या मध्यलय से दुगुनी हो उसे द्रुत लय कहते हैं।

साधारणतया मध्य लय घड़ी के एक सैकण्ड के बराबर, विलम्बित लय इसकी आधी और द्रुत लय इसकी दुगुनी मानी जाती है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि विलम्बित लय की एक मात्रा दो सैकण्ड के बराबर तथा द्रुत लय की एक मात्रा आधे सैकण्ड के बराबर होती है। व्यवहार में इसे पालन करने का कोई कठोर नियम नहीं है। कोई भी गायक अथवा वादक अपनी आवश्यकतानुसार लय को अधिक विलम्बित अथवा द्रुत कर सकता है।

ताल

संगीत में गायन, वादन और नृत्य के समय को नापने का माध्यम ताल है। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण, भवन के लिये नींव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत में ताल की आवश्यकता होती है। गायन–वादन व नृत्य की शोभा ताल से ही है। यथा –

ताल स्तल प्रतिष्ठा यामिति घायोर्धजि स्मृतिः ।
गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं यतऽस्ताले, प्रतिष्ठितम ।।

ताल शब्द 'तल' धातु (प्रतिष्ठा, स्थिरता) से बना है। संगीत में ताल का विशेष स्थान है, क्योंकि ताल ही गीत, वाद्य और नृत्य को आधार प्रदान करता है।

ताल इस बात की एक कसौटी है कि गाना सही है या गलत। ताल के बिना संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती । संगीत में समय का माप मात्रा द्वारा किया जाता है। भिन्न–भिन्न मात्रानुसार भिन्न–भिन्न तालों की रचना की गई है।

विभिन्न मात्राओं के विविध समूहों को 'ताल' कहते हैं। ताल को मापने का माध्यम वाद्य है, जैसे – तबला, पखावज, मृदंग, ढोलक इत्यादि। ताल अनेक मात्राओं की होती है। विभाग द्वारा ताल का स्वरूप बनता है और भिन्न–भिन्न तालों की रचना होती है। भारतीय शास्त्रीय, उपशास्त्रीय तथा सुगमसंगीत की निश्चित तालें हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- मधुर एवं कर्णप्रिय संगीतापयोगी ध्वनि ''नाद'' कहलाती है।
- वह मधुर ध्वनि जो गीत में प्रयुक्त की जा सके तथा एक दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहचानी जा सके ''श्रुति'' कहलाती है।
- क्रमानुसार सात स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं।
- नियमित वर्ण–समुदायों को अलंकार कहते हैं।
- स्वर और वर्ण से विभूषित वह विशिष्ट रचना जो जन चित्त का रंजन कर सके ''राग'' कहलाती है।
- स्वरों का वह समूह जिससे राग उत्पन्न हो सके ''थाट'' कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ''नाद'' कितने प्रकार के होते हैं ?
   (अ) 4 (ब) 2 (स) 3 (द) 5
2. किसी प्रयास से उत्पन्न होनेवाली मधुर ध्वनि क्या कहलाती है ?
   (अ) आहत नाद (ब) अनहत नाद (स) कोलाहल (द) उपरोक्त सभी
3. ''नाद'' की जाति का सम्बन्ध किससे है ?
   (अ) तारता से (ब) तीव्रता से (स) गुण से (द) उपरोक्त सभी
4. ''श्रुतियों '' की संख्या कितनी है ?
   (अ) 20 (ब) 44 (स) 22 (द) 10
5. रे और ध की कितनी श्रुतियाँ हैं ?
   (अ) 2 (ब) 3 (स) 4 (द) 5
6. स्वरों की कुल संख्या कितनी है ?
   (अ) 8 (ब) 10 (स) 12 (द) 14
7. ग और नी की कितनी श्रुतियाँ हैं ?
   (अ) 2 (ब) 5 (स) 6 (द) 22

8. राग में कम से कम कितने स्वर आवश्यक है ?
   (अ) 7 (ब) 6 (स) 10 (द) 5
9. राग की कितनी जातियाँ और कितनी उप जातियाँ हैं ?
   (अ) 3–9 (ब) 4–7 (स) 5–10 (द) 10–10
10. ''थाट'' में कितने स्वर होने आवश्यक है ?
    (अ) 7 (ब) 9 (स) 5 (द) 6

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ''नाद'' को परिभाषित कीजिये ।
2. ''श्रुति'' को परिभाषित कीजिये ।
3. ''अलंकार'' किसे कहते हैं ?परिभाषित कीजिये ।
4. ''सप्तक'' की परिभाषा लिखिये ।
5. ''राग'' को परिभाषित कीजिये ।
6. ''थाट'' किसे कहते हैं ?
7. 22 श्रुतियों के नाम लिखिये ।
8. औड़व जाति के राग कौनसे हैं ?
9. एक थाट की नौ जातियों से कितने राग तैयार हो सकते हैं ?
10. ''ताल'' किसे कहते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''नाद'' की उत्पत्ति एवं भेद को विस्तारपूर्वक लिखिये ।
2. श्रुति और स्वर में अन्तर बताते हुए श्रुति–स्वर विभाजन को विस्तार से समझाइये।
3. ''राग'' की व्याख्या करते हुए ''राग जाति'' प्रकार पर विस्तृत लेख लिखिये।
4. प. भातखंडे के प्रमुख दस थाटों का विस्तृत वर्णन करते हुए ''थाट'' की सम्यक व्याख्या कीजिये ।
5. ''ताल'' और ''लय'' में अन्तर स्पष्ट करते हुए ''ताल'' के महत्त्व पर लेख लिखिये ।

वीणा वादन तत्वज्ञ श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।।

वीणा वादन का तत्व जानने वाला, श्रुति और जातियों में विशारद तथा ताल का ज्ञाता बिना प्रयास ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

अध्याय 2

रागों का शास्त्रीय वर्णन

राग – यमन

सबही तीवर सुर जहाँ, वादी गंधार सुहाय।
अरू संवादी निखाद तें, ईमन राग कहाय।। – चन्द्रिकासार

राग यमन अत्यंत कर्णप्रिय राग है। यह राग कल्याण थाट से उत्पन्न होता है। इसकी जाति सम्पूर्ण है। इसमें मध्यम स्वर तीव्र तथा अन्य स्वर शुद्ध लगते हैं। वादी स्वर गांधार और संवादी स्वर निषाद है। इस राग का गायन समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। यमन राग में जब कभी अल्प प्रमाण में कोमल मध्यम का प्रयोग होता है, तब इसे यमन कल्याण ऐसा संयुक्त नाम कोई कोई विद्वान देते हैं। यद्यपि यह सम्पूर्ण जाति की राग है किन्तु इसको प्रारम्भ करते समय ''षड़ज'' स्वर का लंघन कर दिया जाता है। इस राग का चलन नि़ रे ग से ही पहचाना जाता है।

आरोह : नि़ रे ग, म॑,प, ध, नि सां।
अवरोह : सां नि ध, प, म॑,ग, रे सा ।
पकड़ : नि़ रे ग रे, सा, प, म॑, ग, रे, सा ।

राग – भैरव

भैरव कोमल रि–म–ध सुर, तीख गंधार निखाद।
घैवत वादी सुर कहौ तासु रिखब संवाद।। – चन्द्रिका सार

राग भैरव प्रातःकाल की शांत एवं सन्धि बेला में गाया जाने वाला मधुर राग है। यह राग भैरव ठाठ से उत्पन्न होता है। इसकी जाति सम्पूर्ण है। ऋषभ तथा घैवत स्वर इसमें कोमल प्रयुक्त होते हैं, शेष स्वर शुद्ध लगते हैं। वादी स्वर घैवत तथा संवादी स्वर ऋषभ है। इस राग का गायन समय प्रातःकाल माना जाता है। कभी–कभी इस राग के अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग कोई–कोई गायक कुशलतापूर्वक करते हैं। इस राग की प्रकृति गंभीर है। भैरव राग की सब विशेषता 'रे, ध' स्वरों पर निर्भर है। इन स्वरों के आन्दोलन से यह राग अधिक रक्तिदायक होता है। इसके आरोह में ऋषभ का अल्पत्व रहता है। मध्यम से ऋषभ की मींड इसमें बहुत सुन्दर दिखाई देती है। यह राग भैरव थाट का आश्रय राग साथ ही यह प्रातःकालीन ''सन्धि प्रकाश'' राग भी है।

आरोह : सा <u>रे</u> ग म, प <u>ध</u>, नि_सां ।
अवरोह : सां नि <u>ध</u>, प म ग, <u>रे</u>, सा
पकड़ : सा, ग, म प, <u>ध</u>, प

राग – देस

पंचम वादि अरू रिखब संवादी संजोग।
सोरठ के ही सुरन तें देस कहत हैं लोग।। – चन्द्रिका सार

यह राग खमाज ठाठ के जन्य रागों में से एक है। यह राग औडव सम्पूर्ण माना जाता है। आरोही में गांधार व धैवत वर्ज्य है। इसका वादी स्वर ऋषभ और संवादी पंचम है। गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग में दोनों निषाद तथा शेष स्वर शुद्र लगते हैं। इस राग का स्वरूप सोरठ नामक एक प्रसिद्ध राग के समान दिखाई देता है। प्रायः देस व सोरठ , ये दोनों राग समप्रकृतिक होने के कारण प्रचार में परस्पर मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए ये दोनो राग एक के बाद एक गाने में गायकों को कठिन पड़ते हैं। इस राग में गंधार स्वर स्पष्ट रूप से लिया जाता है वहीं सोरठ में प्रायः ढका हुआ रहता है। इसके आरोह में गंधार व धैवत प्रायः नहीं लेते। अवरोह में ऋषभ वक्र रहता है। यह राग अत्यन्त लोकप्रिय है।

आरोह : सा, रे म प, नि सां ।
अवरोह : सां नि ध प, म ग, रे ग, सा ।
पकड़ : रे, म प, नि ध प, प ध म प, ग रे ग सा

राग – देशकार

ठाठ बिलावल में जबै म. नि को दिये निकार।
ध–ग वादी–संवादी ते औडव देसीकार ।। – चन्द्रिका सार

देशकार राग बिलावल ठाठ से उत्पन्न होता है। इसका समय दिन का दूसरा प्रहर है। वादी स्वर धैवत व संवादी गान्धार है। इस राग में मध्यम व निषाद दोनों स्वर वर्जित हैं। जाति औडुव है। इस राग में धैवत स्वर का प्रयोग कुशलता से करना आवश्यक है अन्यथा 'भूपाली' राग की छाया उत्पन्न हो जाती है। भूपाली पूर्वांग प्रधान राग है और देशकार उत्तरांग प्रधान राग है। देशकार राग की प्रकृति गम्भीर है। आरोह में कभी–कभी क्वचित निषाद भी लगा हुआ दिखता है।

आरोह : सा रे ग, प, ध सां
अवरोह : सां ध, प, ग प ध प, ग रे सा
पकड़ : ध, प, ग प, ग रे सा

राग – बागेश्री

तीवर रि ध कोमल ग म नि मध्यम वादि बखानि।
खरज जहाँ संवादि है बागेसरी लखानि।। – राग चन्द्रिका सार

बागेश्री काफी थाट का राग है। इसमें गंधार और निषाद स्वर कोमल हैं; शेष सभी स्वर शुद्ध हैं। वादी–मध्यम संवादी–षड़ज है। गायन समय–मध्यरात्रि है। इस राग की जाति के सम्बन्ध में मतभेद है। कोई पंचम बिल्कुल वर्ज्य करते हैं तो कोई अवरोह में ''म प ध ग'' संगति से पंचम का प्रयोग करते हैं। कुछ

विद्वान आरोह–अवरोह दोनों में लेते दिखाई देते हैं। आरोह में ऋषभ प्रायः नहीं लगता है। इस आधार पर इस राग की जाति षाड़व–षाड़व अथवा षाड़व–सम्पूर्ण अथवा संपूर्ण–संपूर्ण मानी जाती है। आरोह में कभी–कभी तीव्र निषाद का अल्प प्रयोग भी विद्वानों द्वारा किया जाता है।

आरोह : सा, नि़ ध़ नि़ सा, म ग़, म ध, नि सां

अवरोह : सां, नि ध, म ग़, म ग़ रे सा

पकड़ : सा, नि़ ध़, सा, म ध नि ध, म, ग़ रे, सा

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- राग यमन कल्याण थाट का राग है।
- राग भैरव–भैरव थाट का ''आश्रय राग'' है तथा प्रातःकालीन संधिप्रकाश राग है।
- राग ''देशकार'' और ''भूपाली'' में समान स्वर है किन्तु देशकार ''उत्तरांग प्रधान'' होने से भूपाली राग से पृथक अनुभूति देता है।
- राग ''बागेश्री'' को ''कान्हड़ा के प्रकार'' में भी कई विद्वान रखते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. राग यमन का गायन समय क्या है ?
2. राग भैरव की जाति क्या है ?
3. राग ''देस'' किस थाट का राग है ?
4. राग बागेश्री के वादी–संवादी स्वर कौनसे हैं ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. अपने पाठ्यक्रम की रागों का विस्तृत शास्त्रीय वर्णन लिखिये ।

प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थियों के ज्ञानवर्धन हेतु मध्यकालीन रागरागिनी व्यवस्था में चित्रित रागमाला चित्र दिये गये हैं। जो भारतीय संगीत व चित्रकला विषय की अनमोल धरोहर है। वर्तमान में थाट एवं राग व्यवस्था प्रचलित है।

अध्याय 3

संगीतज्ञों का योगदान एवं जीवनियाँ

तानसेन

जन्म : 1532 ई. मृत्यु : 1585 ई.

भारतीय संगीत के वांङ्मय में संगीत सम्राट तानसेन का अनन्य स्थान है। तानसेन का जन्म 1532 ई. में ग्वालियर के बेहट गांव में हुआ। अपनी विलक्षण सांगीतिक प्रतिभा से अकबर दरबार के नवरत्नों में आपको स्थान प्राप्त था। तानसेन का जन्म नाम ''तन्ना मिश्र'' था। आपके पिता का नाम मकरंद पाण्डे अथवा मुकुंदराम पाण्डे था। आपकी माता एवं पिता दोनों ही ईश्वर भक्त सात्विक एवं कुलीन ब्राह्मण थे। लम्बे समय तक निःसंतान रहने से आपके माता–पिता ने शिव की अनन्य भक्ति की । कहा जाता है कि मोहम्मद गौस नामक सिद्ध पुरुष के आशीर्वाद से ही उन्हें पुत्र रत्न के रूप में तानसेन प्राप्त हुए। बालक तन्ना मिश्र बचपन से ही अद्वितीय सांगीतिक प्रतिभा के धनी थे। बचपन में तानसेन पशु–पक्षी, जानवर की आवाज़ हूबहू अपने कंठ से निकाल कर लोगों को चमत्कृत कर देते थे। आपकी इस प्रतिभा से प्रभावित होकर वृंदावन के महान् संगीतज्ञ सन्यासी स्वामी हरिदास जी ने आपको अपना शिष्य बना लिया। स्वामी हरिदास की संगीत शिक्षा से बालक तन्ना मिश्र मात्र 10 वर्ष की आयु में ही धुरन्धर संगीतज्ञ बन गये। उनकी संगीत प्रतिभा की कीर्ति चारों ओर फैलने लगी। बालक तन्ना मिश्र ''तानसेन'' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। वृन्दावन में स्वामी हरिदास से संगीत शिक्षा लेकर तानसेन पुनः ग्वालियर आ गये। ग्वालियर में संगीत प्रेमी गुर्जरी रानी मृगनयनी ने तानसेन का विवाह ''हुसैनी'' नामक कन्या से करवा दिया। तानसेन के चार पुत्र और एक पुत्री थी।

सूरतसेन, तरंगसेन शरतसेन और विलास खाँ तानसेन के चारों पुत्र संगीत कला के संस्कार लेकर ही पैदा हुए और आगे चलकर इन्होंने महान् संगीत परम्पराओं को जन्म दिया।

तानसेन की संगीत प्रतिभा को देख सर्वप्रथम रीवा नरेश रामचन्द्र इन्हें अपने दरबार में ले गये और तानसेन रूपी संगीत रत्न को मुगल सम्राट अकबर को भेंट किया। कला पारखी अकबर ने इन्हें अपने दरबार के नौ रत्नों में स्थान दिया। तानसेन ने रीवा नरेश राजा रामचन्द्र बाघेला और सम्राट अकबर की प्रसंज्ञा में अनेक

ध्रुपदों की रचना की। उदाहरण –

राग – परज – चौताल

जाके दान थरथराट मेदिनी
ऐसो वीरभान को नंदन
राजा राम बाधेला वीर
जाके चढ़त सेस कमल
ऐसे प्रचण्ड बलबीर

(ध्रुपद और उसका विकास, आचार्य बृहस्पति)

तानसेन द्वारा रचित सम्राट अकबर की प्रशंसा में लिखा गया ध्रुपद –

धनी धनी धरती धर साही अकबर
जाको जगत में चली दुआई

(ध्रुपद और उसका विकास, आचार्य बृहस्पति)

तानसेन ध्रुपद की गोबरहार वाणी के प्रणेता थे। उन्हें गोबरहारी ध्रुपदिया भी कहा जाता था। कृष्णानंद व्यासकृत राग कल्पद्रुम (1889) में तानसेन की ध्रुपद रचनाएँ संग्रहित है जो भारतीय शास्त्रीय संगीत की अनमोल धरोहर है। प. भातखण्डे जी ने स्वरलिपि में बांधकर इन्हें सुरक्षित रखने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

तानसेन की वंश परम्परा ने ध्रुपद के साथ ही उच्च कोटि के बीनकार भी दिये हैं, ध्रुपद अंग के वीणा वादक एवं सुरबहार वाद्य की रचना करने का श्रेय तानसेन की वंश परम्परा को ही है। सितार का सेनिया घराना तानसेन के वंशजों की देन है। तानसेन द्वारा कई रागों की रचना भी की गयी । जैसे – मियाँ की मल्हार, मियाँ की सारंग, मियाँ की तोड़ी, दरबारी कान्हड़ा आदि ।

तानसेन द्वारा लिखे गये भक्ति और स्तुति के पद संगीत की धरोहर है। उन्होंने गणेश स्तुति, विष्णु स्तुति, शिव स्तुति , सरस्वती स्तुति, देव स्तुति, अल्लाह नाम (शेख सलीम) आदि के पद सृजित किये जो राग–यमनी बिलावल, मालकौंस, सूहा, मुल्तानी, हिंडौल आदि अनेकों रागों में निबद्ध है। तानसेन ने ऋतुवर्णन, होरी के पद, नायिका भेद पर भी अनेकों पद लिखे जिनका उल्लेख रागमाला और संगीतसार में मिलता है। उन्हें अनेक राग–रागिनियों में सिद्धि प्राप्त थी। सुरों के सच्चे साधक तानसेन के जीवन में पानी बरसाने, जंगली पशुओं को वशीभूत करने, रोगियों को ठीक करने जैसी अनेक चमत्कारी घटनाएँ हुई। कहा जाता है कि षड़यंत्रपूर्वक तानसेन से ''दीपक'' राग गाने की फरमाईश कर दरबारियों ने उन्हें झुलसा दिया था। तानसेन की मृत्यु 1585 में दिल्ली में हुई। झिलमिल नाथ टेम्पल ''बेहट'' में स्थित तानसेन स्मारक एवं तानसेन आराधना स्थल आज भी इस महान संगीतज्ञ की प्रतिभा के मूक साक्षी है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- तानसेन ध्रुपद की गोबहर वाणी के प्रणेता थे।
- तानसेन को सम्राट अकबर के नवरत्नों में स्थान प्राप्त था।
- तानसेन की वंश परंपरा में ध्रुपद गायन और वीणा वादन दोनों परंपराऐं चलती रही।
- कृष्णानंद व्यास कृत 'राग कल्पद्रुम' पुस्तक में तानसेन की ध्रुपद रचनाओं का संग्रह है।
- तानसेन समारोह प्रतिवर्ष ग्वालियर में आयोजित होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) तानसेन का जन्म कहाँ हुआ था ?
(2) तानसेन द्वारा रचित किन्हीं दो रागों के नाम लिखिये ?
(3) तानसेन ध्रुपद की किस वाणी के प्रवर्त्तक थे ?
(4) तानसेन की वंश परंपरा में कौनसा वाद्य बजाया गया ?
(5) तानसेन के संगीत गुरु कौन थे ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) तानसेन के सांगीतिक योगदान पर निबंध लिखिये ?
(2) तानसेन के सम्पूर्ण जीवनवृत्त पर निबंध लिखिये ?

सम्राट अकबर, तानसेन एवं स्वामी हरिदास (तानसेन के गुरु)

भैरो सुर सरिता बहे कोल्हू चले जु धाय।
मालकौंस जो गाइये, पाहन पिघली पहाय।।
चलत हिंडेलो आपतैं, सुनत राग हिंडोल।
बरसे जल–धन–धार अति मेघ राग के बोल।।
श्री राग के सुर सुनत सूखो वृक्ष हराय।
दीपक दीयो बरि उठे, जो कोई जाने गाय।।
– तानसेन कृत गणेश स्तुति से
6 पुरुष रागों के प्रभाव का तानसेन द्वारा उल्लेख

विष्णु नारायण भातखंडे

जन्म : 10 अगस्त 1860, बालकेश्वर, महाराष्ट्र

मृत्यु : 19 सितंबर 1936, गणेश चतुर्थी के दिन, पक्षाघात से

संगीत क्षेत्र : उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के संस्थापक, भारतीय शास्त्रीय संगीत के पुनरूद्धारक, संगीत शास्त्री व शास्त्रीय गायक

गायन विधा : खयाल गायक

उपनाम : चतुरपंडित, विष्णु शर्मा,मंजरीकार

शिक्षा : कानून में स्नातक, वीणा, सितार, बाँसुरी व शास्त्रीय गायन की शिक्षा

गुरू : उ. वजीर खान, मौहम्मद अली(हररंग),मौहम्मद हुसैन(आगरा), रावजी बुआ

महत्त्वपूर्ण कार्य

- प्राचीन व मध्यकालीन ग्रंथों के गहन अध्ययन के पश्चात् भारतीय संगीत जो मौखिक परंपरा पर अधिक आश्रित था, उसे एक व्यवस्थित सूत्र में बांधने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।
- घरानों में जकड़ी संगीत व्यवस्था से अत्यंत कष्ट पाकर बंदिशें प्राप्त कीं।
- विश्वविद्यालय व विद्यालयों की स्थापना तथा पाठ्यक्रमों का निर्माण।
- 5 अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों का आयोजन किया।
- रागों की स्वर मालिका व लक्षण गीतों की रचना, स्वरलिपि पद्धति का निर्माण ।
- दस थाट पद्धति का निर्माण व महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना।

ग्रंथों की रचना

श्री मल्ल लक्ष्य संगीत, लक्षण गीत संग्रह भाग 1–3, हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति शास्त्र भाग 1–4, क्रमिक पुस्तक मालिका भाग 1–6, हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ इंडियन म्युजिक तथा मध्यकालीन प्रमुख संगीत ग्रंथों की सरल व्याख्या आदि ।

शिक्षण संस्थाओं की स्थापना

माधव संगीत विद्यालय, ग्वालियर (1916), मैरिस म्युजिक कॉलेज (वर्तमान नाम 'भातखंडे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ) 1926,

शिष्य

पं. एस. एन. रातंजनकर, दिलिप कुमार राय व एक विशाल शिष्य परंपरा ।

पं. भातखंडे एक युग पुरुष थे। भारतीय संगीत के पुनरूद्धार का महत्त्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया तथा संगीत को सर्वत्र सुलभ बनाया। अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों का आयोजन कर संगीत के शास्त्रीय क्रियात्मक पक्षों में विचार विमर्श कर एकरूपता स्थापित की। भारत सरकार ने इनके महत्त्वपूर्ण योगदान पर 1961 में डाक टिकट जारी किया।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने घरानेदार महत्त्वपूर्ण बंदिशों को लिपिबद्ध संगृहित कर भारतीय शास्त्रीय संगीत को समृद्ध किया।
- पं. विष्णु नारायण भातखंडे का उपनाम 'चतुर पंडित' था।
- पं. विष्णु नारायण भातखंडे उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के सिद्धांतों को संस्थापित करने वाले महान विद्वान थे।
- माधव संगीत महाविद्यालय की ग्वालियर में स्थापना पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने की थी।
- पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों का आयोजन कर हिन्दुस्तानी संगीत को व्यापक एवं सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में प्रचलित 10 थाटों के सिद्धांत के प्रवर्तक कौन थे ?
(2) मैरिस म्यूजिक कॉलेज की स्थापना किसने की थी ?
(3) भातखंडे जी द्वारा लिखे गये ग्रंथों के नाम लिखिये ?
(4) भातखंडे जी ने कितने अखिल भारतीय संगीत सम्मेलनों का आयोजन करवाया ?
(5) भातखंडे जी द्वारा लिपिबद्ध बंदिशों का संग्रह किस पुस्तक में मिलता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) "पं. विष्णु नारायण भातखंडे हिन्दुस्तानी संगीत के पुनरूद्धारक थे।" कथन की विस्तृत विवेचना कीजिये।
(2) पं. विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा संगीत जगत को दिये गये योगदान पर निबंध लिखिये ?

विष्णु दिगंबर पलुस्कर

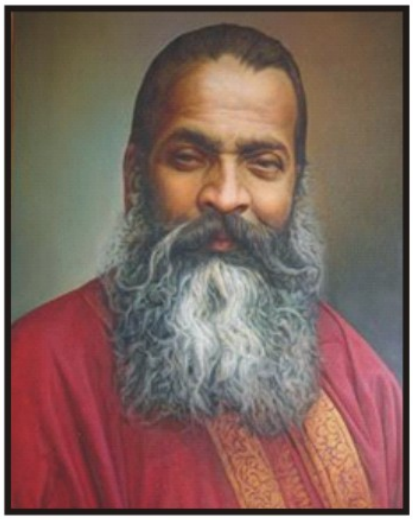

जन्म : 18 अगस्त 1872, कुंदवाड़, महाराष्ट्र

मृत्यु : 21 अगस्त 1931, मिरज, महाराष्ट्र

संगीत क्षेत्र : भारतीय शास्त्रीय गायन

गायन विधा : खयाल गायन (संत संगीतज्ञ)

घराना : ग्वालियर घराना

गुरु : बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर (खयाल गायन), चंदन चौबे (ध्रुपद शिक्षा)

महत्त्वपूर्ण कार्य

– 'रघुपति राघव राजाराम' की स्वर रचना के निर्माता थे।

– उच्च कोटि के गायक, संगीत शिक्षक व संगीत के शास्त्रीय व क्रियात्मक दोनों पक्षों के महत्त्वपूर्ण सुधारक थे।

– संगीत को आमजन में सम्मानजनक स्थान दिलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

– स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया।

– राष्ट्र को शिष्यों के रूप में महान कलाकारों की एक विशाल श्रृंखला प्रदान की।

पुस्तक लेखन

संगीत बाल बोध भाग 1–3, स्वल्पालापगायन, संगीत तत्व दर्शक राग प्रवेश, भजन

शिक्षण संस्था

गांधर्व महाविद्यालय 1901 में स्थापित किया। आज देशभर में इसकी विभिन्न शाखाऐं हैं।

प्रमुख शिष्य

पं. विनायक राव पटवर्द्धन, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, पं. नारायणराव व्यास, बी. आर. देवधर, दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर (पुत्र), नारायण मोरेश्वर खरे ।

भारतीय संगीत के पुनरूद्धार कार्य में पं. विष्णु नारायण भातखंडे व पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। इन्हें 'विष्णुद्वय' भी कहते हैं। कठोर साधना, गुरु भक्ति व नियंत्रण में संगीत शिक्षा प्राप्त की। संगीत के क्रियात्मक व शास्त्रीय दोनों पक्षों को समृद्ध किया। बाल्यकाल में एक दुर्घटना के फलस्वरूप दोनों आँखों की दृष्टि क्षीण हो गई, परिवार में अनेकों कष्ट थे तथा 11 पुत्रों की असमय मृत्यु हो गई इसके उपरांत भी राष्ट्र को शास्त्रीय संगीत से समृद्ध कर गए। 1973 में भारत सरकार ने इनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ग्वालियर घराने से संबंधित थे।
- 'रघुपति राघव राजा राम ' की स्वर रचना पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने की थी।
- पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर संगीत के प्रयोग पक्ष व शास्त्र पक्ष दोनों के सुधारक थे।
- पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की थी।
- शास्त्रीय संगीत की महत्त्वपूर्ण बंदिशों को सुरक्षित रखने हेतु स्वरलिपि निर्माण का कार्य पं. पलुस्कर द्वारा किया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म कहाँ हुआ ?

(2) पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के गुरु का नाम क्या था ?

(3) पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर किस घराने से संबंधित थे ?

(4) 'रघुपति राघव राजाराम' की स्वर रचना किसने की थी ?

(5) गंधर्व महाविद्यालय के संस्थापक कौन थे ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) भारतीय संगीत के विकास में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के योगदान को विस्तृत रूप से समझाईये ?

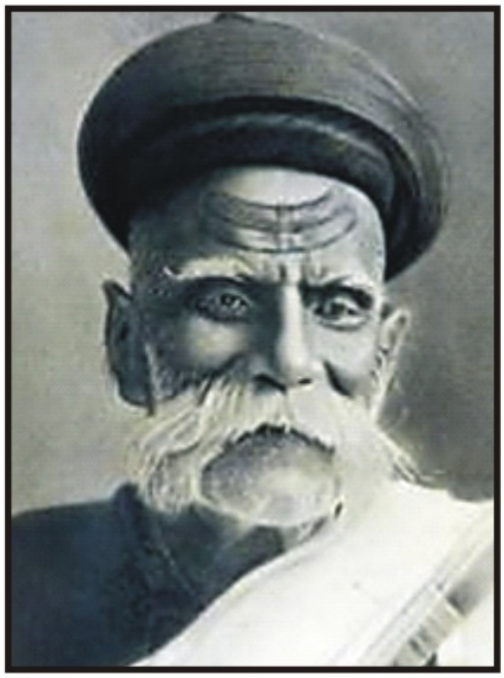

पं. बाल कृष्ण बुआ इचलकरंजीकर
पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के गुरु

पण्डित भीमसेन जोशी

जन्म : 04 फरवरी 1922, धारवाड़ कर्नाटक ।

मृत्यु : 24 जनवरी 2011, पुणे, महाराष्ट्र ।

संगीत क्षेत्र : भारतीय शास्त्रीय गायन ।

गायन विधा : खयाल, भजन, अभंग (कन्नड, मराठी व हिन्दी) व ठुमरी गायन ।

घराना : किराना घराना

गुरू : प्रारंभिक शिक्षा – चुनप्पा, श्यामाचार्य जोशी, उ. हाफिज अली खाँ से तत्पश्चात् पं. सवाई गंधर्व ।

पार्श्वगायन : बसंत बहार, तानसेन, आँखें तथा कन्नड व मराठी फिल्मों में गायन किया। श्रेष्ठ गायक का फिल्मफेयर अवार्ड प्राप्त किया ।

विशेष कार्य

- एच एम वी ने अनेक एल पी रिकॉर्ड बनाए, अनेक कैसेट, सी.डी. व रिकॉर्डिंग तैयार की।
- गायन में दमदार आवाज, सांस पर चमत्कारिक नियंत्रण, अद्‌भुत तानों का प्रवाह, छोटी–छोटी सुंदर भरावट, शुद्ध रागदारी।
- मिले सुर मेरा तुम्हारा (1988), जन–गण–मन (2000) वीडियो की प्रसिद्धि ।
- भारतीय शास्त्रीय संगीत को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की।
- उत्तर भारतीय व दक्षिण भारतीय संगीत की जुगलबंदी का प्रयोगात्मक कार्य किया।

शिष्य

श्रीकांत देशपांडे, नारायण देशपांडे, माधव गुड़ी, आनंद भाटे, श्रीनिवास जोशी आदि प्रमुख शिष्य हैं।

सम्मान व पुरस्कार

- पद्‌मश्री (1972), संगीत नाटक अकादमी अवार्ड (1976), पद्‌म भूषण (1985), पद्‌म विभूषण (1999), महाराष्ट्र भूषण (2002), कर्नाटक रत्न (2005), भारत रत्न (2008), इनके अलावा अनेक प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त हुए।

पं. भीमसेन जोशी ने भारतीय संगीत को नई ऊँचाईयाँ प्रदान की हैं। मात्र 11 वर्ष की उम्र में अब्दुल करीम खाँ की ठुमरी – 'पिया बिन नहीं आवत चैन' सुनकर संगीत शिक्षा हेतु घर छोड़ दिया। अनेक स्थानों पर भटकने व गुरुओं से जो भी मिला, प्राप्त करते हुए पं. सवाई गंधर्व के शिष्य बने। दरबारी, तोड़ी, रामकली, मल्हार, पूरिया कल्याण आदि रागे खूब प्रसारित हुईं। गुरु की स्मृति में 1953 से पूना में 'सवाई गंधर्व संगीत समारोह' का आयोजन किया जाता है जो आज भारत का महत्त्वपूर्ण संगीत समारोह बन चुका है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- पं. भीमसेन जोशी किराना घराने के मूर्धन्य गायक थे।
- पं. भीमसेन जोशी के गुरु की स्मृति में आज भी ''सवाई गंधर्व समारोह'' का आयोजन पूना में किया जाता है।
- पं. भीमसेन जोशी ने उत्तर और दक्षिण भारतीय संगीत की जुगलबंदी का प्रयोगात्मक कार्य किया।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) पं. भीमसेन जोशी का जन्म कहाँ हुआ ?

(2) पं. भीमसेन जोशी द्वारा ख्याल विधा के अतिरिक्त संगीत की कौन–कौन सी विधाऐं गायी गयी ?

(3) सवाई गंधर्व समारोह प्रतिवर्ष कहाँ आयोजित होता है ?

(4) पं. भीमसेन जोशी ने किन दो संगीत पद्धतियों की जुगलबंदी का काम किया ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) ''पं. भीमसेन जोशी का भारतीय शास्त्रीय संगीत में योगदान'' विषय पर लेख लिखिये ?

(2) पं. भीमसेन जोशी के सम्पूर्ण जीवनवृत्त को उजागर कीजिये ?

उ. अब्दुल करीम खां
किराना घराने के स्तंभ

पं. रामभाउ कुन्दगोलकर सवाई गंधर्व
भीमसेन जोशी के गुरु

किशोरी अमोनकर

जन्म : 10 अप्रैल 1932

संगीत क्षेत्र : उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन (भजन, ठुमरी व पार्श्वगायन से भी प्रसिद्धि)

गायन विधा : खयाल गायन शैली

घराना : जयपुर घराना –अल्लादिया खाँ

गुरू : मुख्य शिक्षा अपनी माता व प्रख्यात गायिका मोघू बाई कुर्डीकर से प्राप्त की तथा अंजनि बाई मालपेकर (भिंडी बाजार घराना), डॉ. अनवर हुसैन खाँ (आगरा घराना) से ।

वर्तमान निवास : मुंबई, महाराष्ट्र में ।

विशेष कार्य

- शास्त्रीय बंदिशें तथा उप शास्त्रीय गीतों की अनेकों रचनाऐं की है
- गायन शैली में मूलतः जयपुर घराने की विशेषताऐं रखते हुए, अन्य घरानों का मिश्रण कर प्रयोगात्मक संगीत की प्रस्तुति देती हैं।
- शास्त्रीय गायन को भाव व रस का सृजनात्मक प्रयोग ।
- संगीत, रस व भाव विषय की अद्‌भुत व कुशल वक्ता ।

शिष्य परंपरा

आरती अंकलेकर, देवकी पंडित, मीरां वंशीकर, सुहासिनी मुलगांवकर, मानिक भिड़े, रघुनंदन वंशीकर, तेजश्री अमोनकर (पौत्री) ।

किशोरी जी, वर्तमान में देश की ख्यातनाम शास्त्रीय गायिका हैं तथा जयपुर घराने की प्रतिनिधि कलाकार है लेकिन भाव व रस निष्पत्ति हेतु गायन में विविध प्रयोगों के कारण चर्चा में रहीं हैं। परंपरा व प्रयोग का समन्वय इनकी गायकी में दिखाई देता रहा है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- किशोरी अमोनकर जयपुर घराने की सुप्रसिद्ध ख्याल गायिका है।
- किशोरी अमोनकर ने जयपुर घराने की ख्याल गायकी में प्रयोगधर्मिता का समावेश किया।
- परंपरा और प्रयोग का समन्वय इनकी गायकी की विशेषता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) किशोरी अमोनकर किस गायन शैली की कलाकार हैं ?

(2) किशोरी अमोनकर का 'घराना' कौनसा है ?

(3) किशोरी अमोनकर की माता का क्या नाम है ?

(4) किशोरी अमोनकर के किन्हीं दो शिष्यों के नाम लिखिये ?

(5) किशोरी अमोनकर का वर्तमान निवास कहाँ है ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) किशोरी अमोनकर के भारतीय संगीत में योगदान पर निबंध लिखिये ?

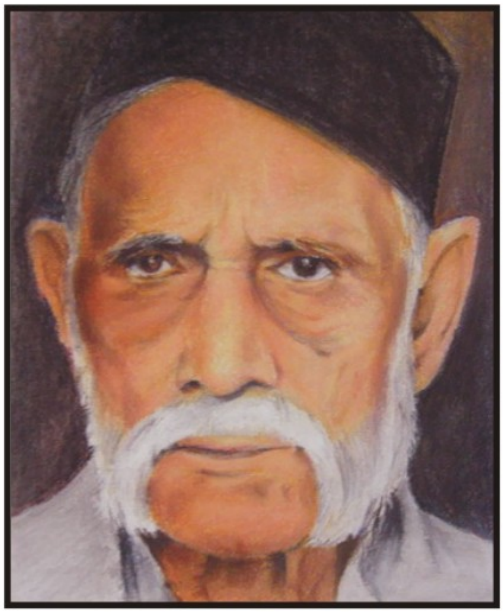

उ. अल्लादिया खान
जयपुर घराने के आधार स्तम्भ

मोगू बाई कुर्डीकर
किशोरी अमोनकर की मां एवं गुरु

समाधि अवस्था में जाने क सरल–सुरीला व अत्यंत यौगिक मार्ग, भारतीय राग आधारित संगीत है।
– पं. जितेन्द्र अभिषेकी

अध्याय 4

विविध बंदिशों का विस्तृत शास्त्रीय ज्ञान

(1) सरगम गीत

इसमें किसी प्रकार का साहित्य अथवा कविता नहीं होती, केवल राग से सम्बन्धित स्वर तालबद्ध होते हैं। विभिन्न रागों के पृथक–पृथक सरगम गीत होते हैं, जो पृथक–पृथक तालों में गाये जाते हैं। इनके अभ्यास से विद्यार्थियों को राग के स्वरूप अनुभूति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इसे स्वर–मालिका भी कहते हैं। इसके स्थायी और अन्तरा दो भाग होते हैं।

(2) लक्षण गीत

लक्षणगीत के शब्दों में अथवा साहित्य में राग की सम्पूर्ण विशेषताओं का वर्णन होता है। राग के वादी–संवादी तथा विवादी स्वर, राग का गायन समय, राग में प्रयुक्त कोमल, शुद्ध एवं तीव्र स्वरों का सम्यक वर्णन उस राग के लक्षण गीत को गाने से विद्यार्थियों को सरलतापूर्वक याद हो जाता है। प्रत्येक राग का पृथक–पृथक लक्षण होता है जो पृथक–पृथक तालों में गाया जाता है। इसमें भी स्थायी और अन्तरा दो भाग होते हैं। प्रायः सरगम गीत के बाद विद्यार्थियों को राग के लक्षणों का ज्ञान कराने के लिये लक्षण गीत सिखाया जाता है।

(3) ख्याल

पं. कुमार गंधर्व ग्वालियर घराना

फारसी भाषा में ''ख्याल'' का अर्थ है – कल्पना अथवा विचार करना। ''ख्याल'' गायन शैली मध्यकालीन संगीत की देन है। कुछ विद्वान इस गायन शैली का आविष्कारक''अमीर खुसरो'' को मानते हैं तो कुछ विद्वान जौनुपर के सुल्तान ''हुसैन शर्की'' को ख्याल के जन्मदाता मानते हैं। इस गायन शैली को लोकप्रिय बनाने का श्रेय मोहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक ''सदारंग'' और ''अदारंग'' को है। इनके द्वारा रचित ''ख्याल'' आज तक मोहक अंदाज में गाये जाते हैं। इस गायन शैली में स्थायी और अन्तरा दो भाग होते हैं। यह शृंगार रस प्रधान गीत शैली है। भक्ति एवं करूण रस में भी अनेकों मार्मिक ख्यालों की रचना है। द्रुत ख्याल में गायक राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी सृजनशीलता एवं कल्पना से आलाप, बोल आलाप, तान, बोल तान, को खटका, मुर्की, सरगम आदि से

ख्यालों को सजाकर गाते हैं। यह वर्तमान की सर्वाधिक लोकप्रिय गायन शैली है। ख्याल दो प्रकार के होते हैं –

(1) विलम्बित ख्याल अथवा बड़ा ख्याल

विलम्बित लय की तालों में निबद्ध गीत रचना को विलम्बित ख्याल अथवा बड़ा ख्याल कहते हैं। इसकी प्रकृति प्रायः गंभीर होती है। यह तिलवाड़ा, एकताल, आड़ा चौताल, झूमरा आदि तालों में गाया जाता हैं।

(2) द्रुत ख्याल अथवा छोटा ख्याल

द्रुतलय की तालों में निबद्ध गीत रचना को द्रुत ख्याल अथवा छोटा ख्याल कहते हैं। इसकी प्रकृति चपल चंचल होती है। यह प्रायः त्रिताल, एक ताल, रूपक, झपताल आदि प्रमुख तालों में गाया जाता है।

(4) तराना

कहा जाता है कि ओम हरि अनन्त नारायण इस प्रकार के शब्दों का परिवर्तित रुप दीम तन तदानी रुपों में कालान्तर में परिवर्तित हुआ अन्य मत में अरबी और फारसी भाषा के विद्वान ''अमीर खुसरो'' जब हिन्दुस्तान में आये तो यहाँ के शास्त्रीय संगीत से बहुत प्रभावित हुए किन्तु उन्हें ''संस्कृत'' भाषा का ज्ञान नहीं था। अतः उन्होंने निरर्थक शब्दों के माध्यम से यहाँ की रागों का गायन किया। ये निरर्थक शब्द की गायकी ही आगे चलकर ''तराना'' गायन शैली के नाम से प्रसिद्ध हुई।

''तराना'' गायकी में – ता ना, दे, रे, ओ दानी, त दाने, दीम तन आदि निरर्थक शब्दों के बोल राग विशेष में बांधकर गाये जाते हैं। ''स्थाई '' और ''अन्तरा'' इस गायकी के दो भाग होते हैं। गति द्रुत होती है। लय और ताल का आनंद ही इस गायकी की प्रधान विशेषता है। इस गायकी को प्रायः प्रस्तुति के अन्त में गाया जाता है।

(5) ध्रुपद

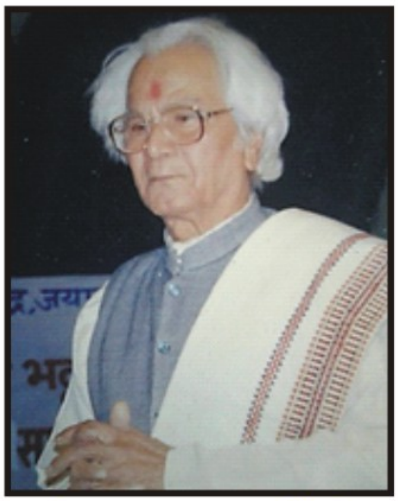

पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग

''प्रबंध'' गायन शैली की प्राचीन परम्परा का वर्तमान में प्रतिनिधित्व करने वाली वर्तमान विधा ''ध्रुपद'' है। वर्तमान समय में ध्रुवपद गंभीर एवं खुले गले की जोरदार गायकी मानी जाती है। यह गायकी वीर, श्रृंगार और शांत रस प्रधान है। ध्रुपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू एवं ब्रजभाषा में होते हैं किन्तु प्राचीन काल में ध्रुपद में संस्कृत के श्लोकों को गा कर ईश आराधना की जाती थी। 15वीं शताब्दी में ग्वालियर के नरेश राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुपद के विकास हेतु कार्य किया था, ऐसा माना जाता है। ध्रुपद के 4 अंग होते हैं– स्थाई, अन्तरा, संचारी और आभोग। यह प्रायः सूल ताल, चौताल, तीव्रा, रूद्रताल, ब्रह्मताल में गाया जाता है। ध्रुपद गायन को उपरोक्त तालों की पखावज पर संगति प्रभावशाली बनाती है। ध्रुपद में तानों का प्रयोग नहीं होता है। दुगुन, चौगुन, बोलबांट लयकारी का चमत्कार ही ध्रुपद गायन शैली की विशेषता है। वर्तमान में ध्रुपद गायन के प्रारम्भ में नोमतोम का प्रभावशाली आलाप किया जाता है।राजस्थान में डागर परंपरा के प्रतिष्ठित गायक पं. लक्ष्मण भट्ट तैलंग हैं।

ध्रुपद के घरानों को ''वाणी'' संज्ञा दी गयी है। ध्रुपद के गायक ''कलांवत'' अथवा ''ध्रुपदिये'' कहलाते हैं। उनकी गायकी भेद से ध्रुपद की चार वाणियाँ मानी जाती है।

1) गोबरहार वाणी या शुद्ध वाणी
2) खंडहार वाणी
3) डागुर वाणी
4) नोहार वाणी

गोबरहार वाणी : यह शान्त रस प्रधान है। इसकी गति धीर–गंभीर होती है।

खंडार वाणी : इसकी गति तीव्र एवं स्वरूप वैचित्र्य वर्द्धक होता है।

डागुर वाणी : इसकी गति सहज और सरलता इसका प्रधान गुण है।

नोहार वाणी : इसकी गति सिंह के समान है । यह अद्‌भुत रस की सृष्टि करती है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- ख्याल गायकी मध्यकाल की देन है।
- सरगम गीत को राग की स्वरमालिका भी कहते हैं।
- ''तराना'' गायन शैली के जनक फारसी भाषा के विद्वान ''अमीर खुसरो'' को माना जाता है।
- ''सदारंग'' और ''अदारंग'' मोहम्मद शाह रंगीले के दरबारी–संगीतज्ञ थे जिन्होंने ख्याल गायकी को लोकप्रिय बनाया।
- ''ध्रुपद'' गायन शैली प्रबंध गायन की प्राचीन परम्परा का वर्तमान में प्रतिनिधित्व करने वाली शैली है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. केवल राग के स्वरों पर आधारित शब्दहीन बंदिश को क्या कहते हैं ?
2. जिस रचना के साहित्य अथवा शब्दों से राग की विशेषताएँ प्रकट हो, उसे क्या कहते हैं ?
3. निरर्थक शब्दों की राग विशेष में निबद्ध गायन शैली क्या कहलाती है ?
4. ध्रुपद की कितनी वाणियाँ है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. ख्याल गायन शैली की विशेषताओं एवं प्रकार को विस्तारपूर्वक समझाइये।
2. ध्रुपद गायन शैली के स्वरूप एवं ''वाणियों'' पर निबन्ध लिखिये।

समस्त नाद का आदि और अंत 'प्रणव' है जिसकी ओर साधक को बढ़ना है, और उसी में लीन होना है।
–महर्षि अरविंद

अध्याय 5

पं. विष्णु नारायण भातखण्डे की स्वरलिपि पद्धति

संगीत अनादि है, शाश्वत है और सनातन है। संगीत की अजस्त्र धारा युग–युगान्तर से प्रवाहित होती रही है। मानव कंठ से निःसृत न जाने कितने सुमधुर स्वरों का गायन प्रकृति में गुंजायमान होता रहा होगा ? अकल्पनीय है। आदि मानव ने अपने हृदयगत उद्‌गारों की अभिव्यक्ति के लिये अवश्य ही गीत और संगीत के स्वरों को माध्यम बनाया होगा। क्योंकि संगीत तो सभ्यता के प्रथम चरण में ही आदि मानव का सहचर बनकर उसके प्राणों को स्पन्दित करता रहा, किन्तु उस संगीत का स्वभाव कैसा था ? निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता है। शनैः शनैः काल चक्र की मंथर गति से युग बदले, युगों का स्वरूप बदला और इसी के साथ गीत और संगीत भी परिष्कृति को प्राप्त होता गया। अनेकों संगीत साधक अपनी साधना के मंथन से निकाले गये नवनीत द्वारा जनमानस को आनंद पुष्टि प्रदान करते रहे। किन्तु तकनीकी साधनों के उस अभावग्रस्त समय में संगीत की वह अनमोल धरोहर काल के गर्त में समा गयी। उनकी संगीत साधना को चिरस्थायित्व प्रदान करने हेतु लेखन प्रणाली एवं मुद्रण सम्बन्धी सुविधा उस युग में नहीं थी। वह युग वैज्ञानिक उपकरणों के अभावों का दौर था जहाँ वर्तमान युग की तरह टेप, रिकॉर्ड जैसी विद्युत प्रणाली विकसित नहीं थी।

हिन्दुस्तानी संगीत के मध्ययुग में संगीत के घरानों का अभ्युदय भी हो चुका था। घरानों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत वांङ्मय में अनेक दैदीप्यमान मूर्धन्य कलाकार प्रदान किये किन्तु राजनैतिक एवं सामाजिक उठापटक के उस दौर में संगीत से सामान्य जनता भयग्रस्त होकर दूर होने लगी। संगीत वर्ग विशेष की धरोहर बन कर रह गया। कुलीन वर्ग में संगीत सीखना तो दूर संगीत सुनना भी प्रतिबंधित हो गया था। घरानों की संकीर्ण मानसिकता के चलते उस्तादों द्वारा अपनी साधना से तराशी गयी बंदिशों को छुपाकर रखा जाने लगा। फलतः संगीत की अमूल्य बंदिशों का ख़जाना विलुप्त प्रायः होने लगा। ऐसे संकट के दौर में पं. भातखण्डे जी ने अपने अथक परिश्रम से पुराने घरानेदार उस्तादों की बंदिशों को लिपिबद्ध कर सुरक्षित किया। उनके इस महान कार्य ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की अनमोल धरोहर को सदा के लिये अमर कर दिया। ''क्रमिक पुस्तक मालिका'' नामक पुस्तक पं. भातखण्डे की संगृहीत स्वरलिपियों का महाकोष है।

स्वरलिपि क्या है ?

संगीत के स्वर, ताल, मात्रा, विभाग, गीत के शब्द आदि को अंकित करने की प्रणाली को ''स्वरलिपि'' या ''नोटेशन सिस्टम'' कहते हैं। स्वरलिपि के द्वारा किसी भी देश के गीत और संगीत की बंदिश (कम्पोजिशन) के स्वरूप को वर्षों तक अक्षुण्ण रखा जा सकता है। जिस प्रकार वाणी अथवा भाषा को सुरक्षित रखने के लिये या उसे व्यक्त करने के लिये चिन्ह और संकेतों का आश्रय लेना पडा तथा इन्हीं चिन्ह संकेतों को उस भाषा की ''लिपि'' कहा गया ठीक उसी प्रकार संगीत के स्वर, ताल, लय और शब्द को अंकित करने की प्रणाली ''स्वरलिपि'' होती है। किस समय कौनसा राग एवं गीत प्रकार कैसे गाये जाते थे ? उसके स्वरूप से आनेवाली पीढ़ियों को परिचित कराने का सशक्त माध्यम स्वरलिपि है। स्वरलिपि बंदिश रूपी ताले की वह कुंजी है जिसके द्वारा राग विशेष में सृजित बंदिश के स्वर स्वरूप की परतें खोली जा सकती है और बंदिश के शब्दों में निहित स्वरों की आत्मा से रूबरू हुआ जा सकता है।

स्वरलिपि पद्धति का विकास

संगीत एक क्रियात्मक कला है जो गुरूमुख से सुनकर ही आत्मसात् की जाती है। लेखन प्रणाली एवं मुद्रण प्रणाली सम्बन्धी सुविधा नहीं होने से प्राचीन स्वरलिपि पद्धति अधिक विकसित नहीं थी।

वैदिक काल में उदात्त स्वर को ''3'', अनुदात्त स्वर को ''क'' तथा स्वरित को ''र'' द्वारा व्यक्त किया जाता था । साथ ही कहीं–कहीं इन्हीं स्वरों के लिये क्रमशः 1, 2, 3 अंकों का भी प्रयोग हुआ है। सामगान में स्वरित को ''2र'' चिन्ह से प्रदर्शित किया गया है।

भरतकाल के नाट्यशास्त्र में भी स्वरांकन एवं मात्रांकन सम्बन्धी सामग्री मिलती है। नाट्यशास्त्र में मंद्र स्वरों के लिये स्वरों के ऊपर बिंदी तथा तार स्वरों के लिये ऊपर खड़ी रेखा, मध्य सप्तक चिन्ह रहित दिखाया गया है। भरतकालीन वीणा वादन की स्वरांकन पद्धति में वीणा के बोल '' धातु '' को प्रयोग करने के चिन्हों का उल्लेख मिलता है। भरत के नाट्य शास्त्र में पाटाक्षर के संकेत चिन्ह भी दिये गये हैं।

मंतग मुनि – के वृहद्देशी ग्रंथ के अलंकार प्रकरण में अलंकारों का और जाति प्रकरण में जाति के प्रस्तारों का अंकन मिलता है। बृहद्देशी ग्रंथ में स्वरों के ''ह्रस्व'' अथवा ''लघु'' रूप को अकारांत या इकारांत लिखा गया है। यथा – '' सा गा मा पा धा '' लिखा गया है।

शारंग देव – के संगीत रत्नाकर ग्रंथ में प्रबन्धाध्याय में छंद का अंकन और उसी आधार पर ताल का अंकन किया गया है। – यथा –

लघु – ल।

गुरू – ग ऽ

प्लुत – प ऽ

वर्णिक छंदों में 'गण'' और उसके मात्रा संकेत इस प्रकार हैं –

य – गण ।ऽऽ

म – गण ऽऽऽ

त – गण ऽऽ।

सोमनाथ – के ग्रन्थ ''राग विबोध'' में 23 गमकों के चिन्ह बताये गये हैं जो वीणा के हैं। सोमनाथ की स्वरांकन पद्धति में स्वरों का संकेताक्षर अंको में दिया गया है जैसे – 1, 2, 3, 4,

आधुनिक काल – केग्रन्थकारों में पं. विष्णुनारायण भातखण्डे, वी. डी. पलुस्कर, पं. ओंकारनाथ ठाकुर, रविन्द्रनाथ ठाकुर, मौला बख्श एवं भृगुलाल मुंशी ने स्वरांकन पद्धति तैयार की किन्तु हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में सुगमता की दृष्टि से सर्वाधिक लोक प्रचलित स्वरलिपि पद्धति पं. भातखण्डे जी की रही। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के समकक्ष ही कर्नाटक स्वरलिपि पद्धति और पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति भी विकसित होती रही जिनमें वहाँ का संगीत सुरक्षित है। पं. विष्णुनारायण भातखण्डे की स्वरलिपि पद्धति के चिन्ह इस प्रकार हैं –

1. जिन स्वरों के नीचे ऊपर कोई चिन्ह नहीं होता, उन्हें ''शुद्ध स्वर '' मानते हैं। जैसे – सा, रे , ग, म,
2. जिन स्वरों के नीचे आड़ी रेखा हो उन्हें ''कोमल स्वर'' कहते हैं । जैसे –रे, ग, ध, नि
3. तीव्र मध्यम के ऊपर खड़ी लकीर खींची जाती है । जैसे –म
4. मन्द्र सप्तक के स्वरों के नीचे बिन्दु लगाते हैं। जैसे – नि, ध, प
5. तार सप्तक के स्वरों के ऊपर बिन्दु लगाते हैं। जैसे – सां, रें, गं, मं, पं
6. बिना बिन्दी वाले स्वर मध्य सप्तक के समझने चाहिये। जैसे – सा, रे, ग, म, प
7. गाने के शब्द को बढ़ाकर गाने के लिये अवग्रह चिन्ह (ऽ) लगाया जाता है – रा ऽ ऽ म
8. स्वर को बढ़ा कर गाने के लिये (–) आड़ी लकीर का प्रयोग होता है – सा –– रे –– ग –– म
9. कई स्वरों को एक मात्रा में गाने या बजाने के लिये ‿ चिन्ह का प्रयोग होता है – पगध मपधनी
10. मींड के लिये ⁀ चिन्ह का प्रयोग होता है – रे–प ग
11. कण स्वर को प्रायः बंदिश के स्वर विशेष के ऊपर लिखा जाता है –रे अर्थात ''म'' को छूते हुए ''रे'' स्वर को गाना या बजाना ।
12. जो स्वर कोष्ठक में बंद हो उसे इस प्रकार गाना चाहिये – (प) = धपमप ।
13. ताल में सम दिखाने के लिये × चिन्ह होता है।
14. खाली के लिये 0 चिन्ह होता है।
15. सम को पहली ताली मानकर क्रमशः ×, 2, 3, 4, ... अन्य तालियों की संख्याएँ लगाते हैं।
16. नीचे दो बिन्दी वाले स्वर अति मन्द्र सप्तक के होते हैं – सा
17. अति तार सप्तक के लिये स्वर के ऊपर दो बिन्दी लगाते हैं – सां
18. वाद्य में स्वरों को आंदोलित करने की क्रिया 'जमजमा' को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है। ∿∿∿

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- संगीत की बंदिशों के स्वरूप को (स्वर, ताल, मात्रा, विभाग, शब्द) लेखन प्रणाली के संकेतों द्वारा लिपिबद्ध करना ही ''स्वरलिपि'' है।
- स्वरलिपि के द्वारा किसी भी देश के संगीत को चिरस्थायित्व प्रदान किया जा सकता है।
- रविन्द्रनाथ ठाकुर ने ''आकार मात्रिक'' स्वरलिपि पद्धति का आविष्कार किया था।

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. कोमल स्वरों के लिये भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में कौनसा चिन्ह है ?
2. तीव्र मध्यम को बताने के लिये किस संकेत का प्रयोग किया जाता है ?
3. मन्द्र एवं तार सप्तक के स्वरों को किस प्रकार दर्शाया जाता है ?
4. ताल के सम और खाली को दिखाने के लिये किस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वरलिपि पद्धति क्या है ? उसके महत्त्व को बताते हुए पं. भातखंडे की स्वरलिपि की विस्तृत व्याख्या कीजिये।

अध्याय 6

तालों और बंदिशों का स्वरलिपि लेखन

ताल – दादरा (मात्रा 6, भाग–2)

संगीत में यह ताल ''सुगम संगीत'' तथा ''दादरा'' गायन शैली के साथ बजायी जाने वाली एवं एक अत्यंत प्रचलित ताल है। यह ताल तबले के अलावा ढोलक तथा ''नाल'' पर भी बजायी जाती है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6
बोल	धा	धिं	ना	धा	तिं	ना
ताली	x			0		

दुगुन

मात्रा	1	2	3	4	5	6
बोल	धाधिं	नाधा	तिंना	धाधिं	नाधा	तिंना
ताली	x			0		

ताल – कहरवा (मात्रा 8, भाग 2)

यह लोक प्रचलित ताल है। लोक संगीत से लेकर सुगम संगीत, भक्ति संगीत, फिल्मी संगीत सभी तरह के गीत और भजन में प्रयुक्त होती है। ''ठुमरी'' के अन्त में पंजाबी ताल के साथ ''कहरवा'' की लग्गी बजायी जाती है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8
बोल	धा	गे	ना	ति	न	क	धि	न
ताली	x				0			

दुगुन

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8
बोल	धागे	नाति	नक	धिन	धागे	नाति	नक	धिन
ताली	x				0			

ताल – एकताल (मात्रा 12, भाग–6)

गायन में यह ताल छोटा ख्याल, बड़ा ख्याल के साथ द्रुत, मध्य तथा विलम्बित तीनों लयों में बजायी जाती है। इसका वादन तबले पर होता है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल	धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
ताली	x		0		2		0		3		4	

दुगुन

मात्रा	1	2	3	4	5	6
बोल	धींधीं	धागे तिरकिट	तुना	कता	धागे तिरकिट	धींना
ताली	x		0		2	

मात्रा	7	8	9	10	11	12
बोल	धींधीं	धागे तिरकिट	तुना	कता	धागे तिरकिट	धींना
ताली	0		3		4	

ताल – त्रिताल (मात्रा 16, भाग–6)

गायन संगीत में छोटा ख्याल अथवा द्रुत ख्याल तथा बड़ा ख्याल अथवा विलम्बित ख्याल में इस ताल का प्रयोग किया जाता है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धि	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
ताली	x				2				0				3			

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातीं	तिंता	ताधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातीं	तिंता	ताधिं	धिंधा
ताली	x				2				0				3			

चौताल – (मात्रा 12, भाग–6)

यह खुले बोल की ताल है जो पखावज पर बजायी जाती है। गायन में यह ताल ''ध्रुपद'' गायन शैली के साथ बजायी जाती है। इसकी प्रकृति गंभीर होती है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
ताली	x		0		2		0		3		4	

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
बोल	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिट कत	गदि गन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिट कत	गदि गन
ताली	x		0		2		0		3		4	

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना वृत्तं तस्मान्नाादात्मकं जगत।।

न नाद के बिना गीत है, न नाद के बिन स्वर है, न नाद के बिना नृत्य है, यह समस्त जगत ही नादात्मक है।

बंदिशों की स्वरलिपि

राग – यमन – त्रिताल (मध्य लय)

सरगम – गीत

स्थायी

नि	ध	प	मं	ग	रे	ग	मं	नि	ध	मं	s	प	मं	ग	रे
0				3				x				2			
ग	मं	प	मं	ग	रे	सा	नि़	ध़	नि़	s	मं़	s	ध़	नि़	रे
0				3				x				2			
ग	रे	ग	मं	प	ध	नि	ध	प	मं	ग	मं	ग	रे	सा	s
0				3				x				2			

अन्तरा

नि़	रे	ग	नि़	रे	ग	मं	प	ध	नि	सां	नि	ध	प	मं	ग
x				2				0				3			
रे	ग	मं	प	ध	नि	रें	s	ध	s	गं	रें	s	ध	रें	s
x				2				0				3			
सां	नि	ध	प	मं	प	नि	ध	प	मं	ग	मं	ग	रे	सा	नि
x				2				0				3			
ध़	नि़	s	मं	s	ध़	नि़	रे	ग	रे	ग	मं	प	ध	नि	ध
x				2				0				3	x		
प	मं	ग	मं	ग	रे	सा	s								
x				2											

उ. बड़े गुलाम अली खां
पटियाला घराने के आधार स्तंभ

पं.डी.वी.पलुस्कर
ग्वालियर घराना

राग – यमन – एक ताल (मध्य लय)
लक्षण गीत – स्थायी

प			ध	ध		म		मं	ग		
सां	सां	नि	नि	मं	प	प	प	मं	ग	–	ग
स	ब	गु	नि	ज	न	इ	म	न	गा	s	त
x		0		2		0		3		4	
मं											
ग	–	ग	रे	ग	प	रे	ग	रे	नि़	रे	सा
ती	s	व	र	सु	र	क	र	त	सा	s	ध
x		0		2		0		3		4	
सा	सा	रे	रे	ग	ग	मं	मं	प	प	ध	ध
x		0		2		0		3		4	
नि	नि	रें	रें	गं	रें	सां	रे	सां	नि	ध	प
x		0		2		0		3		4	

अन्तरा

मं						प					
प	ग	प	–	ध	प	सां	–	सां	सां	–	सां
सु	र	वा	s	दि	गं	धा	s	र	सा	s	ध
x		0		2		0		3		4	
									ध		
सां	सां	रें	–	गं	रें	सां	सां	नि	नि	ध	प
स	म	वा	s	दी	s	क	र	नि	खा	s	द
x		0		2		0		3		4	
प	ग	ग	प	प	प	नि	नि	ध	प	ध	प
रा	s	त	स	म	य	प्र	थ	म	प्र	ह	र
x		0		2		0		3		4	
			ध						ग		
सां	सां	नि	नि	मं	प	प	ग	प	रे	–	सा
च	तु	र	सु	ज	न	म	न	रि	झा	s	त
x		0		2		0		3		4	

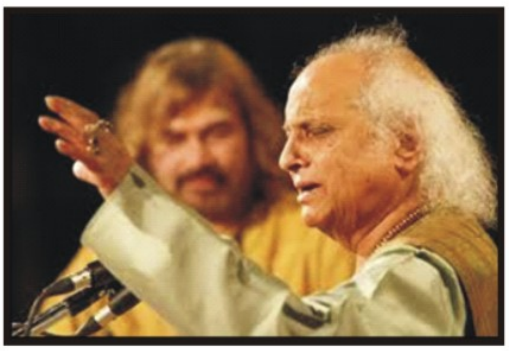

पं. जसराज
मेवाती घराना

गंगू बाई हंगल
किराना घराना

राग – यमन – त्रिताल (16 मात्राएँ)
छोटा ख्याल
स्थायी

सां												मं			
नी	ध	–	प	मं	प	ग	मं	प	–	–	–	प	मं	ग	रे
स	दा	s	शि	व	भ	ज	म	ना	s	s	s	नि	स	दि	न
								मं							
सा	रे	ग	रे	ग	मं	प	ध	प	मं	ग	रे	ग	रे	सा	सा
रि	धि	सि	धि	दा	s	य	क	वि	न	त	स	हा	s	य	क
सा								सां							
नि़	रे	ग	मं	प	ध	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प	मं	ग	मं
ना	s	ह	क	भ	ट	क	त	फि	र	त	अ	न	व	र	त
0				3				x				2			

अन्तरा

ग															
प	ग	प	धप	सां	–	सां	–	नि	रें	गं	रें	सां	नि	ध	प
शं	s	क	रs	भो	s	ला	s	पा	s	र	व	ती	र	म	ण
सां															
गं	रें	सां	नि	ध	प	नि	ध	प	मं	ग	रे	ग	रे	सा	सा
सि	त	त	न	पं	s	न	ग	भू	s	ष	ण	अ	नु	प	म
								सां							
नि़	रे	ग	मं	प	ध	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प	मं	ग	मं
का	s	हे	न	सु	मि	र	त	भ	ट	क	त	तू	फि	र	त
0				3				x				2			

पं. विनायक राव पटवर्धन
ग्वालियर घराना
पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर के शिष्य

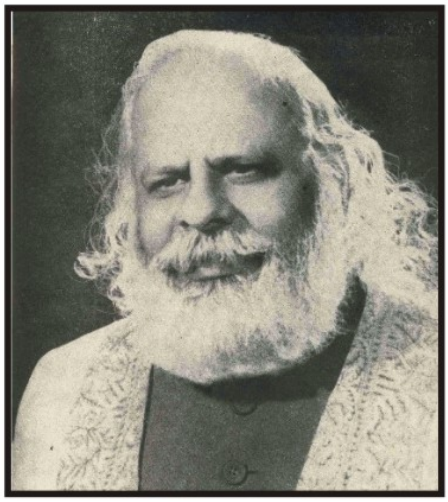

पं. औंकारनाथ ठाकुर
ग्वालियर घराना
पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर के शिष्य

राग – यमन – एक ताल (विलम्बित)

बड़ा ख्याल

स्थायी

नि़	प	नि़ध़	सारे	सा	–	नि़	रे	ग	रे	सा	(सा)
मे	रा	ऽऽ	मन	बा	ऽ	ऽ	ध	ली	नो	रे	ऽ
3		4		x		0		2		0	
			पग								
निनि	प(प)	रे	मंमं	प	प(प)	ग	रे	ध़	नि़	सा	सा
हाँऽ	रऽ	s	इन	जो	गीऽ	या	के	सा	ऽ	ऽ	थ
3		4		x		0		2		0	

अन्तरा

मं				पध	मं	प				नि	
ग	मं	प	ध	निनि	प(प)	मंग	गप	ग	रे	सारे	सा
स	दा	रं	ग	कऽ	रऽ	मऽ	कऽ	रो	ऽ	क्यूँ	ना
3		4		x		0		2			
				पध				ग	सा		
नि	रे	ग	मं	निनि	प	मंग	प	रे	नि	रे	सा
इ	न	प्रा		नऽ	ना	ऽऽ	थ	के	हा	ऽ	थ
3		4		x		0		2		0	

राग – भैरव –झपताल, (मध्य लय)

सरगम गीत

स्थायी

सा	ध़	प	प	ध़	म	प	म	ग	रे़
ग	रे़	ग	म	प	म	ग	रे़	रे़	सा
नि़	सा	रे़	रे़	सा	ध़	ध़	नि़	सा	–
ग	रे़	ग	म	प	म	ग	रे़	रे़	सा
x		2			0		3		

अन्तरा

प	प	ध़	ध़	नी	सां	–	ध़	नि	सां
ध़	ध़	नि	सां	रें़	सां	नी	ध़	ध़	प
म	ग	म	प	ध़	रें़	सां	ध़	ध़	प
सां	नि	ध़	ध़	प	म	ग	रे़	रे़	सा
x		2			0		3		

राग – भैरव – छोटा ख्याल
त्रिताल (मध्य लय)

स्थायी

म		नि				ग		ग				ग			
ग	म	ध़	ध़	पम़	प	म	ग	रे़	–	मग़	प	रे़	–	सा	–
ध	न	ध	न	मूऽ	ऽ	र	त	कृ	ऽ	ष्णऽ	मु	रा	ऽ	री	ऽ
नि़	नि़											सा		म	
सा	ध़	–	नि	सा	सा	सा	सा	रे़	–	साऽ	–	नि़	सा	ग	म
सु	ल	ऽ	च्छ	ऽ	न	गि	रि	धा	ऽ	रीऽ	ऽ	छ	बि	सुँ	ऽ
		नि		ध़		नि									
प	प	ध़	–	सां	–	ध़	प	पध	निसां	सारें	सांनि	धनि	धप	मग	म
द	र	ला	ऽ	गे	ऽ	अ	ति	प्याऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	री
0				3				X				2			

अन्तरा

म				नि											
प	–	प	प	ध़	ध़	नि	नि	सां	सां	सां	सां	नि	सां	सां	–
बं	ऽ	सी	ऽ	ध	र	म	न	मो	ह	न	सु	हा	ऽ	वे	ऽ
सां	रें											नि			
रें़	रें़	मं	मं	रें़	–	सां	–	सां	सां	रें़	सां	ध़	–	प	–
ब	लि	ब	लि	जा	ऽ	ऊँ	ऽ	मो	रे	म	न	भा	ऽ	वे	ऽ
म						नि									
ग	म	ग	म	प	ऽ	ध़	प	पध़	निसां	सारें़	सांनि	धनि	धप	मग	म
स	ब	रं	ग	ज्ञा	ऽ	न	वि	चाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	री
0				3				X				2			

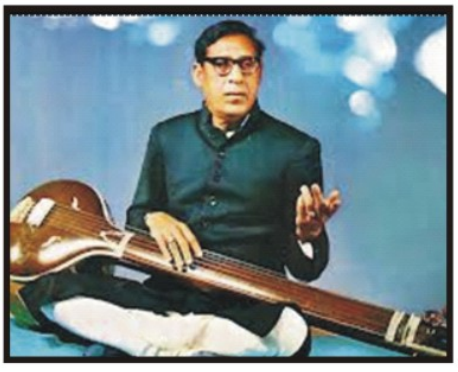

उ. अमीर खां
इंदौर घराने के प्रवर्तक

आफ़ताबे मौसिकी
उ. फैयाज खां
आगरा घराना

राग भैरव – बड़ा ख्याल
एक ताल (विलम्बित)
स्थायी

				नि							सा
											बि
म	–	गम	पप	ध	–	प	पम	धधपम	प	म	ग
ना	ऽ	ऽऽ	हरि	कौ	ऽ	न	ऽऽ	खऽऽऽ	ऽ	ब	ऽ
3		4		X		0		2		0	
म	नि						ग	म			
रे	ग	म	प	म	–	ग	म(म)	रे	–	सा	सा
र	ऽमो	री	ऽ	ले	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	त	बि
3		4		X		0		2		0	

अन्तरा

		नि					नि	ग			
प	मप	ध	नि	सां	–	सां	सां	रें	–	सां	सां
का	ऽऽ	हे	को	सो	ऽ	च	ऽक	रे	ऽ	म	न
3		4		X		0		2		0	
सां		नि		म						नि	
नि	सां	ध	प	प	म	गम	प	प	–	ध	–
मू	ऽ	र	ख	नि	त	ऽऽ	उ	ठि	ऽ	भो	ऽ
3		4		X		0		2		0	
									नि		
–	नि	सां	निसां	रें	–	सां	नि	सां	ध	प	मपधप
ऽ	ज	न	ऽऽ	दें	ऽ	ऽ	ऽ	रें	त	ऽ	ऽऽऽति
3		4		X		0		2		0	
				नि						ग	
म	गम	प	प	ध	–	–	प	मप	प	म	ग
ना	ऽऽ	ह	रि	कौ	ऽ	ऽ	(म)	ऽऽ	ख	ब	र
3		4		X		0		2		0	
रे	ग	प	प								
ऽ	मो	री	ऽ								
3		4									

राग देस – त्रिताल (16 मात्रा)
सरगम गीत
स्थायी

नि	ध	प	म	ग	रे	ग	सा	रे	रे	म	प	नि	नि	सां	ऽ
रें	गं	रें	सां	नि	ध	म	प	सां	नि	ध	प	म	ग	रे	रे
रे	ग	रे	प	म	ग	रे	सा	सां	रें	सां	नि	ध	प	म	प
2				0				3				X			

अन्तरा

म	ऽ	म	प	ऽ	प	नि	ऽ	नि	सा	ऽ	सां	मं	गं	रें	सां
मं															
रें	पं	मं	गं	सां	रें	नि	सा	नि	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प
2				0				3				X			

राग देस – छोटा ख्याल
त्रिताल (मध्य लय, 16 मात्रा)
स्थायी

रे	म	रे	म	–	प	–	ध	(नि)	–	–	प	प	ध	प	–
ह	रि	गु	ण	ऽ	गा	ऽ	य	रे	ऽ	ऽ	तू	ऽ	म	ना	ऽ
–	सां	–	नि	ध	प	म	प	ध	म	–	म	ग	रे	ग	सा
ऽ	का	ऽ	हे	भ	ट	क	त	फि	रे	ऽ	नि	स	दि	ना	ऽ
0				3				X				2			

अन्तरा

म	म	प	–	नि	नि	सां	सां	रेंगं	रेंगं	रें	सां	रें	नि	सां	–
छि	न	भं	ऽ	गु	र	स	ब	जऽ	गऽ	त	प	सा	ऽ	रा	ऽ
निसां	रें	सां	नि	–	ध	म	प	मप	ध	–	म	गे	रे	ग	सा
माऽ	ऽ	या	जा	ऽ	ल	बि	र	थाऽ	ऽ	ऽ	क	ल	प	ना	ऽ
0				3				X				2			

राग देस – बड़ा ख्याल
त्रिताल (विलम्बित)
स्थायी

ग		ग	प	सां		सां	सां	नि	ध			ग			
म	(म)	मरे	मप	नि	सां	निसारें	निनि	धप	प	ध	–म	म	(म)	रे	–
हो	जी	ऽऽ	म्हारी	बे	ऽ	ऽऽऽ	ऽग	सुन	ऽ	ऽ	–ली	जो	(ऽ)	ऽ	ऽ
3				X				2			0				
म	म		प	प											
रे	रें	प	–	मप	मपध	म	रे	ममगरे	ग	–	सानि	सा	–	–	सा
हो	जी	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽऽऽ	ऽ	ऽ	म्हारा	रा	ऽ	ऽ	ज
3				X			2					0			

अन्तरा

प		सां						प		सां					
म	मप	नि	–नि	सां	सां	सां	सां	म	प	नि	सां	निसां	निसारे	रें	–
क	बऽ	की	ऽमैं	उ	भी	ठा	ड़ी	अ	प	ने	मं	दऽ	रऽऽ	वा	ऽ
3				X				2				0			
सां								सां							
नि	नि	सां	–नि	सां	निसां	सां	–	नि	सां	सां	–	निसारेंगं	रेंसांनिध	निसांनिध	पधप
अ	र	ज	ऽक	रे	ऽऽ	शां	ऽ	वा	ऽ	लो	ऽ	राऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽज
3				X				2				0			

राग देशकार – सरगम गीत
त्रिताल (मध्य लय)
स्थायी

ग	रे	सा	सा	प	–	ध	प	प	ग	प	ध	प	ध	प	प
प	ग	प	ध	सां	–	ध	प	ग	प	ध	प	ग	रे	सा	–
3				X				2				0			

अन्तरा

प	ग	प	ध	सां	–	रें	सां	सां	ध	सां	रें	सां	रें	सां	ध
गं	रें	सां	रें	सां	सां	ध	प	ग	प	ध	प	ग	रे	सा	–
3				X				2				0			

राग देशकार – लक्षण गीत

एक ताल (मध्यलय)

स्थायी

प						प					
ध	–	प	ध	ध	प	ग	–	प	ग	रे	सा
प्रा	ऽ	त	स	म	य	दे	ऽ	श	का	ऽ	र
						प		प			
सा	–	ध़	सा	सा	रे	ग	प	ग	प	ऽ	प
रा	ऽ	ग	क	ह	त	गु	नि	वि	चा	ऽ	र
ग											
प	ग	प	प	ध	ध	सा	ध	सां	सां	रें	सां
ओ	ऽ	डु	व	म	नि	त	ज	सु	ध	सु	र
सां	रें	सां	–	ध	प	ध	प	ग	रे	सा	–
X		0		2		0		3		4	

अन्तरा

ग											
प	ग	प	प	ध	ध	सां	–	सां	सां	सां	सां
धै	ऽ	व	त	सु	र	वा	ऽ	दि	क	र	त
										प	
सां	ध	सां	सां	सां	रें	सां	रें	सां	ध	ध	प
स	ह	च	र	गं	ध	धा	ऽ	र	र	ह	त
प	ध	ग	ग	प	ध	सां	–	सां	रें	सां	सां
गं	रें	सां	रें	सां	ध	सां	ध	प	ग	रे	सा
X		0		2		0		3		4	

विदुषी गिरिजा देवी
प्रख्यात ख्याल व ठुमरी गायिका

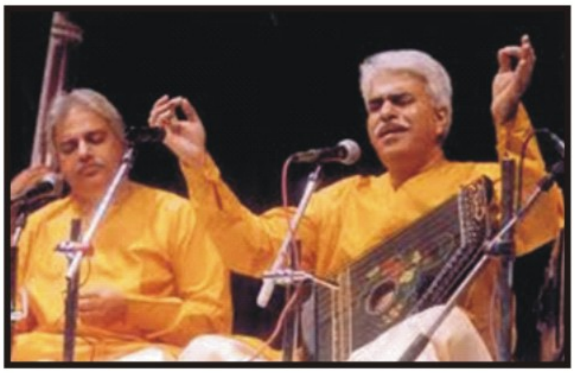

पं. राजन साजन मिश्र
बनारस घराना

राग देशकार – छोटा ख्याल
त्रिताल – मध्यलय
स्थायी

ध	प	–	ग	प	ध	सां	सां	सां	–	सां	रें	सां	–	ध	ध ते प
ऽ	रे	ऽ	प	द	पं	ऽ	क	ज	ऽ	श	र	ण	ऽ	ग	त
प			प					प							सां
ग	प	ध	ध	सां	–	ध	प	ग	प	ध	प	ग	रे	सा	सां
वि	प	त	बि	दा	ऽ	र	ण	च	तु	र	गो	बिं	ऽ	द	ते
3				ग				2				0			

अन्तरा

	सां							सां							प ग तू
प	ध	सां	सां	सां	सां	रें	सां	ध	–	सां	रें	सां	–	ध	प
ऽ	ही	ऽ	ज	ग	त	प	ति	तू	ऽ	प	र	मा	ऽ	त	म
प			सां			सां									सां
गं	रें	सां	रें	सां	–	ध	प	ग	प	ध	प	ग	रे	सा	सा
तू	ऽ	हि	चि	दा	ऽ	न	द	तू	ऽ	हि	अ	नं	ऽ	त	ते
3				X				2				0			

राग – बागेश्री – सरगम गीत
एक ताल – (मात्रा 12, मध्यलय)
स्थायी

म	ग	रे	सा	नि	सा	ध़	नि	सा	–	म	ग
म	ध	नि	सां	निं	ध	म	धं	नि	ध	म	ग
म	ग	म	ध	नि	सां	–	ध	नि	सां	रें	सा
सां	रें	सां	नि	ध	म	ध	म	ग	ग	रे	सा
X		0		2		0		3		4	

अन्तरा

म	ग	म	ध	नि	सां	–	ध	नि	सां	रें	सां
नि	सां	मं	गं	रें	सां	नि	सां	रें	सां	नि	ध
म	ध	सां	नि	ध	म	ध	म	ग	ग	रे	सा
सां	रें	सां	नि	ध	नि	ध	म	ग	ग	रे	सा
X		0		2		0		3		4	

राग बागेश्री – छोटा ख्याल
त्रिताल (मध्य लय)
स्थायी

ध								म							
सां	–	नि	नि	ध	म	प	ध	ग	ग	रे	सा	रे	रे	सा	–
कौ	ऽ	न	क	र	त	तो	रि	बि	न	ति	पि	य	र	वा	ऽ
0				3				X				2			
–	सां	नि	नि	ध	म	प	प	ग	ग	रे	सा	रे	रे	सा	–
कौ	ऽ	न	क	र	त	तो	रि	बि	न	ति	पि	य	र	वा	ऽ
0				3				X				2			
	ध												म		
	नि़	–	ध़	नि़	सा	–	सा	म	ध	पध	नि	ध	ग	–	रेसा
ऽ	मा	ऽ	नो	न	मा	ऽ	नो	ह	म	रीऽ	ऽ	ऽ	बा	ऽ	तऽ
0				3				X				2			

अन्तरा

		नि						सां				सां			
ग	म	ध	नि	सां	–	सां	सां	नि	सां	रें	सां	नि	सां	नि	ध
ज	ब	सें	ग	ये	ऽ	मो	रि	सु	ध	हु	न	ली	ऽ	नी	ऽ
0				3				X				2			
	नि							म			ग				
–	ध	–	ध	नि	–	ध	ध	ग	–	–	म	ग	रे	–	सा
ऽ	चा	ऽ	हे	सौ	ऽ	त	न	के	ऽ	ऽ	ध	र	जा	ऽ	त
0				3				X				2			
	सां	नि	नि												
ऽ	कौ	न	क												
0															

डॉ. प्रभा अत्रे
किराना घराना

बेगम परवीन सुल्ताना
पटियाला घराना

राग बागेश्री – बड़ा ख्याल
एकताल (विलम्बित)
स्थायी

ध			प				ध		प	प	
सां	नि	धनि	धध	सां	–	नि	नि	ध	ध	म	ग
मो	ऽ	ऽऽ	हेम	ना	ऽ	ऽ	व	न	आ	ऽ	ऽ
3		4		X		0		2		0	
म	ग	रे	सा	रे	सा	नि़	ध़	सा	सा	सा	–
ऽ	ये	हो	ऽ	स	ग	री	ऽ	र	ति	या	ऽ
3		4		X		0		2		0	
सा		सा		सा		ध	प				
नि	सा	म	ग	म	ध	नि	ध	म	ग	मग	रेसा
किं	न	सौ	ऽ	त	न	ध	र	जा	ऽ	ऽऽ	गेऽ
3		4		X		0		2		0	

अन्तरा

		ध	सां						मं	सां	
ग	म	निध	नि	सां	–	सां	निसां	रें	गं	रें	सां
ते	ऽ	तोऽ	ऽरं	गी	ऽ	ले	ऽऽ	छ	बि	दि	ख
3		4		X		0		2		0	
सां											
निसां	सां	नि	ध	ग	म	ध	नि	सां	मंगं	रें	सां
लाऽ	ऽ	ये	ऽ	ला	ऽ	ल	न	के	ऽऽ	म	न
3		4		X		0		2		0	
सां				ध	नि		प			ग	
रें	सां	नि	ध	म	ध	नि	ध	म	ग	मग	रेसा
ल	ल	चा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽवे
3		4		X		0		2		0	

प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थियों हेतु घरानेदार प्रख्यात संगीतज्ञों के चित्र दिये गए है जो सांगीतिक ज्ञानवर्धन तथा प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लोक गीत – धरती धोरां री

– रचनाकार : कन्हैयालाल सेठिया

आ तो सुरगा नै सरमावै, ई पर देव रमण नै आवे, ई रो जस नर नारी गावै, धरती धोरा री।
सूरज कण कण ने चमकावै, चन्दो इमरत रस बरसावै, तारा निछरावल कर ज्यावै, धरती धोरा री।

काला बादलिया घहरावै, बिरखा घूघरिया घमकावै, बिजली डरती ओला खावै, धरती धोरा री।
लुळ लुळ बाजरिया लैहरावै, मक्की झाालो देर बुलावै, कुदरत दोन्यूं हाथ लुटावै, धरती धोरा री।

पंछी मधरा मधरा बोलै, मिसरी मीठै सुर स्यूं घोलै, झीणूं बादरियो पपोळे, धरती धोरा री।
नारा नागौरी हिद ताता, मदुआ उंट अणूंता खाथा, ई रे घोड़ा के बाता, धरती धोरा री।

ई रा फल फुलडा मन भावण, ई रै धीणो आंगणा आंगण, बाजै सगळा स्यूं बड़ भागण, धरती धोरा री।
ई रो चित्तौड़ो गढ़ लूंठो, ओ तो रण वीरां रो खूंटो, ई रे जोधाणूं नौ कुंटो, धरती धोरा री।

आबू आभै रै परवाणै, लूणी गंगाजी ही जाणै, उभो जयसलमेर सिंवाणै, धरती धोरा री।
ई रो बीकणूं गरबीलो, ई रो अलवर जबर हठीलो, ई रो अजयमेर भड़कीलो, धरती धोरा री।

जैपर नगर्यां में पटराणी, कोटा बूंदी कद अणजाणी, चम्बल कैवे आं री कहाणी, धरती धोरा री।
कोनी नांव भरतपुर छोटो, घूम्यो सुरजमल रो घोटो, खाई मात फिरंगी मोटो, धरती धोरा री।

ईं स्यूं नहीं माळवो न्यारो, मोबी हरियाणों है प्यारो, मिलतो तीन्या रो उणयारो, धरती धोरा री।
ईडर पालनपुर है ई रा, सागी जामण जाया बीरां, औ तो टुकड़ा मरु रै जी रा, धरती धोरा री।

सौरठ बंध्यो सोरठां लारै, भेळप सिंध आप हंकारै, मूमल बिसयां हेत चितारै, धरती धोरा री।
ई पर तनड़ो मनड़ो वारां, ई पर जीवण प्राण उवारां, ई री धजा उडै गिगनारां, धरती धोरा री।

ई नै मोत्या थाल बधावां, ई री धूल लिलाड़ लगावां, ई रो मोटो भाग सरावां, धरती धोरा री।
ई रै सत री आण निभावां ईं रै पत नै नहीं लजावां, ईं नै माथो भेंट चढ़ावां, भायड़ कोड़ा रीं

धरती धोरां री।

राष्ट्रभक्ति गीत

आ ग़ैरियत

आ ग़ैरियत के पर्दे एक बार फिर उठा दे
बिछुड़ो को फिर मिला दें, नक्शे दोई मिटा दें।

सूनी पड़ी हुई है, मुद्दत से दिल की बस्ती
आ एक नया शिवाला इस देश में बना दें।

दुनिया के तीरथों से उंचा हो अपना तीरथ
दामन ए आसमां से इसका कलश मिला दें।

हर सुबह उठ के गायें मंतर वो मीठे मीठे
सारे पुजारियों को मय प्रीत की पिला दें।

– कवि : मोहम्मद इकबाल

प्रयाण गीत

हम दिवानों की

हम दिवानों की क्या हस्ती, है आज यहां, कल वहां चले
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते वहां चले
आए बनकर उल्लास अभी, आंसू बनकर बह चले अभी
सब कहते ही रह गये अरे, तुम कैसे आए कहां चले
अब अपना और पराया क्या, आबाद रहें रुकने वाले
हम स्वयं बंधे थे, औ स्वयम् हम अपने बंधन तोड़ चले।

– कवि : भगवती चरण वर्मा

स्वर वाद्य संगीत
सितार / सरोद / वायलिन / दिलरुबा / बांसुरी / गिटार / इसराज

द्वयधिष्ठानाः स्वरावैणाः शारीराश्च प्रकीर्तिताः।
एतेषां समप्रवक्ष्यामि विधानं लक्षणन्वितम्।।
—नाट्य शास्त्र 28 / 12

स्वर उत्पत्ति के दो प्रमुख स्थान हैं – वीणा (तार वाद्य) एवं मनुष्य शरीर (शरीर वीणा)

अध्याय 1

परिभाषाएँ

''नाद''

''संगीत'' सृष्टि का वह महत्वपूर्ण धागा है, जिसके बिना संपूर्ण जगत नीरस है। संगीत का मूलाधार नाद है। यदि कहें कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड, नादमय है तो अतिश्योक्ति नही होगी। नाद का शब्दिक अर्थ है ध्वनि अथवा आवाज़। संगीतपयोगी मधुर ध्वनि, जिसमें स्थिर और नियमित आंदोलन संख्या होती है उसे 'नाद' कहते है। युगों से चली आ रही संगीत की अनादि परम्परा का मूल है 'नाद'।

वीणा वाद्य

नाद शब्द न और द इन दोनों अक्षरो से मिलकर बना है। न से नकार और द से दकार, भावार्थ नकार यानि प्राण या वायु तथा दकार का अर्थ अग्नि या ऊर्जा। इन दोनों के संयोग से ही नाद उत्पन्न होता है।

आवाज की उत्पत्ति कम्पन्न से होती है, कम्पन्न को आंदोलन कहते है और आंदोलन द्वारा उत्पन्न आवाज को शोर या कोलाहल भी कहते है।

न नादेन विना गीतं, न नादेन विना स्वरः।
न नादेन विना नृतं, तस्माद्नादात्मकं जगत।।

जिस ध्वनि की आंदोलन संख्या अनियमित और अस्थिर हो जाती है वह कानों को अमधुर लगती है और उसे शोर कहते है। वही ध्वनि नाद बन सकती है जो कर्णप्रिय है और मधुर हैं।

नाद के 2 प्रकार माने जाते है।

(1) आहत (2) अनाहत

(1) आहत

जो नाद किसी घर्षण, आघात द्वारा उत्पन्न होता है या किसी प्रयास द्वारा ध्वनि उत्पन्न की जाती हो, उ स नाद को आहत नाद कहते है।

उदाहरणतया– वीणा, सितार, तानपुरा या कण्ठ द्वारा उत्पन्न की गई ध्वनि। आहत नाद संगीत की उत्पत्ति कर्त्ता है। आहत नाद तीन (3) प्रकार से उत्पन्न होता है (1) आघात (प्रहार) द्वारा जैने– तबला, सरोद, सितार–तानपूरा आदि पर आघात करते है तो ध्वनि होती है। (2) घर्षण द्वारा– बायलिन, सारंगी में गज से इनके तारों पर घर्षण करते है। (3) वायु को भरकर या निकालकर– शहनाई बांसुरी, हारमोनियम आदि वाद्य इसी वर्ग में आते है तथा कंठ़ के द्वारा वायु के द्वारा आवाज उत्पन्न होती है।

(2) अनाहत

अनाहत नाद योग साधना की अनुभूति है। ये उत्पादित स्वयंभू ध्वनि है। ये संगीतपयोगी नही होता क्योंकि यह सबको सुनाई नही देता जैसे कान बन्द करने पर सांयसांय की आवाज। इसे गुप्त नाद भी कहते है।

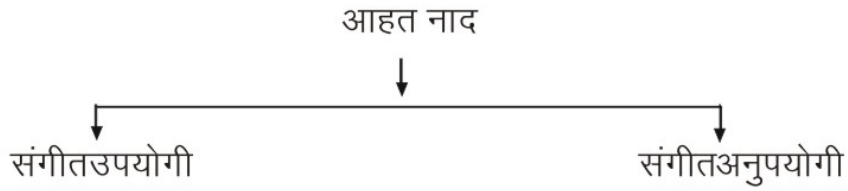

(1) संगीत उपयोगी नाद

वह नाद जिसका संगीत में उपयोग किया जा सके, जो कुछ समय तक स्थिर रहे और श्रवणेन्द्रियां उसका अनुसरण कर सके उसे संगीपयोगी नाद कहते है। जैसे : तानपुरा, बांसुरी, सितार आदि की ध्वनि।

(2) संगीत अनुपयोगी नाद

वह नाद जिसका संगीत में उपयोग नही किया जा सके। जैसे– बादलों की गडगडाहट, शोर आदि।

नाद की तीन मुख्य विशेषताए हैः–

1. नाद का छोटापन– बडापन
2. नाद का ऊंचा– नीचापन
3. नाद की जाति अथवा गुण

(1) नाद का छोटापन–बड़ापन

जब किसी वाद्य को या गीत को धीरे से गायन– वादन करते है, तो उसकी ध्वनि बहुत समीप तक ही सुनाई देगी, परन्तु यही ध्वनि जोर से गायन– वादन करने पर अधिक दूर तक सुनाई देगी। जो ध्वनि समीप तक सुनाई दे वो नाद का छोटापन तथा जो ध्वनि दूर तक सुनाई दे वो ध्वनि नाद का बडापन कहलाती है।

(2) नाद का ऊंचा नीचापन

गाते बजाते समय हम ये अनुभव करते है कि स्वर सा से ऊंचा रे, रे, से ऊंचा ग रहता है। जैसे– जैसे हम स्वर की ऊंचाई या बढते क्रम का गायन वादन करते है तो स्वर की ऊंचाई बढती जाती है। इसका कारण है कि नाद या स्वर की ऊंचाई या निचाई उसके कंपन या आन्दोलन संख्या पर आधारित है। उदाहरण के लिये यदि एक स्वर की कंपन संख्या 100(सौ) प्रति सैकिण्ड है और दूसरे स्वर की 150 आन्दोलन प्रति सैकिण्ड, तो यहॉ 100 आन्दोलन संख्या वाला नाद, नीचा है और 150 आन्दोलन संख्यावाला नाद, ऊंचा।

इसी आधार पर सा रे ग म प धनि में नाद ऊंचा होता चला जाता है और सां नि ध प म ग रे में नाद क्रम से नीचा होता जाता है। स्वर का उतार चढाव ही नाद का ऊंचा नीचापन कहलाता है।

(3) नाद की जाति अथवा गुण

प्रत्येक नाद की अपनी पृथक विशिष्ट गुणवत्ता है। नाद की जाति या गुण से हम आसानी से पहचान सकते है कि ये ध्वनि किस साज़ की है या किस व्यक्ति की है। उस विशेषता को नाद की जाति कहते है। एक ही नाद सब वाद्यो में है, तथापि हम नाद की जाति से ही वाद्य को बिना देखे बतला सकते है कि वह स्वर किस वाद्य का है।

श्रुति

सारंगी वाद्य

''श्रुति'' भारतीय सप्तक का मूलाधार है

श्रुति के सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने लिखा है –''श्रूयते इति श्रुतिः'' अर्थात ऐसी ध्वनि जो कानों को सुनाई दे उसे श्रुति कहते है, पंडित भातखण्डे जी ने श्रुति के सबंध में लिखा है–

नित्यं गीतोपयोगीत्वमभिज्ञेयत्वमप्युत।
लक्ष्ये प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीत श्रुतिलक्षणम्।।

अर्थात गीतों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि जिसे एक दूसरे से पृथक किया जा सके, श्रुति कहलाती है।

श्रुति शब्द संस्कृत के ''श्रु'' धातु से बना है श्रु का अर्थ श्रवण करना है। वह ध्वनि या नाद जो गीत में प्रयुक्त की जा सके तथा एक दूसरे से अलग व स्पष्ट सुनी जा सके, उसे श्रुति कहते है।

संगीतज्ञों ने प्राचीन समय में मधुर नादों में से कुछ ध्वनियां चुनी जो एक दूसरे से कुछ, ऊंचाई पर थी और जिनकी संख्या 22 है। 22 नादों को गाने– बजाने में कठिनाई को देखते हुये इनमें से मुख्य 12 श्रुतियां चुन ली गई और इन्ही से संगीत में गायन वादन होने लगा।

सप्तक के शुद्ध–विकृत मिलाकर 12 स्वर है, उनके नीचे ऊपर (बीच– बीच में) और भी सुरीली ध्वनियां है। श्रुतियों का दर्शन केवल, सारंगी, सितार, बेला व वीणा आदि तार वाद्यों में ही हो सकता है। परन्तु कुशल गायक गले से भी इन श्रुतियों की आवाज निकाल सकते है।

22 श्रुतियां सात स्वरों में इस प्रकार विभाजित है –

स– म– और प, में चार– चार श्रुतियां, रे और ध में तीन– तीन श्रुतियां और ग, नि में दो– दो श्रुतियाँ होती हैं।

प्राचीन ग्रंथकार शुद्व स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते थे, परन्तु आधुनिक ग्रंथकार शुद्व स्वरों को उनकी पहली श्रुतियों पर स्थापित करते है।

प्राचीन स्वर विभाजन

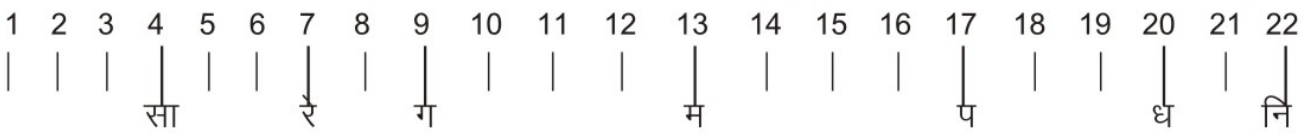

आधुनिक स्वर विभाजन

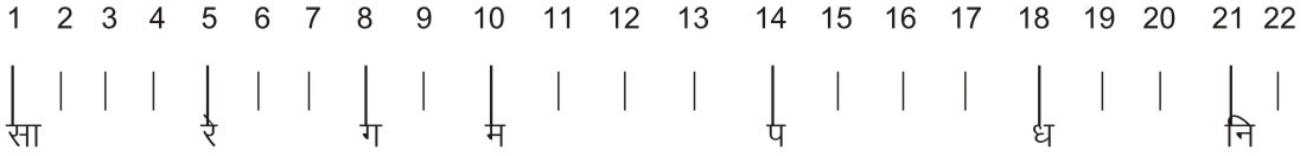

नोट : बडी लकीर वाले कायम स्वर है और बीच– बीच में छोटी लकीरें हैं वे श्रुतियां है।

स्वर

साधारणतः जब कोई ध्वनि नियमित आंदोलन संख्या वाली हो तो उसे ''स्वर'' कहते है। इसके विपरीत जब कंपन अनियमित व अस्थिर हो उस ध्वनि को शोर या कोलाहल कहते है।

सरोद वाद्य

संगीत में प्रयुक्त मधुर, कर्णप्रिय एवंचित्त को आनदित करने वाली ध्वनि को 'स्वर' कहते है। स्वर के विषय में प. अहोबल ने लिखा है।

रन्जयन्ति स्वतः श्रोतृणमिति ते स्वराः

अर्थात ऐसा स्वर जो श्रोताओं के चित्त को आकर्षित करता है, उसे 'स्वर' कहते है।

22 श्रुति से निश्चित अंतर पर 12 श्रुतियों को चुना ये श्रुतियां मधुर है और उनमें ठहराव है, स्वर दो प्रकार के होते है–

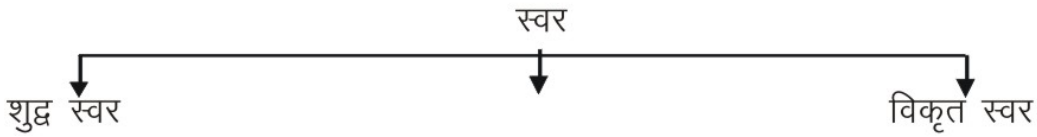

(1) शुद्व स्वर

बाहर स्वरों में से मूल सात स्वरों को 'शुद्व स्वर' कहते है। जो स्वर अपने निश्चित स्थान पर रहते है, वो शुद्व स्वर कहलाते है ये प्राकृतिक स्वर कहलाते है, इनकी संख्या 7 है। इन स्वरों के नाम इस प्रकार है –

षडज	–	सा
रिषभ	–	रे
गंधार	–	ग
मध्यम	–	म
पंचम	–	प
धैवत	–	ध
निषाद	–	नि

(2) विकृत स्वर जो स्वर अपने निश्चित अवस्था (स्थान) से हटकर नीचे या ऊपर गाये अथवा बजाये जाते है, उन्हे विकृत स्वर कहते है। विकृत स्वर की संख्या पांच है– रे, ग, म, ध, नि।

विकृत स्वर के दो प्रकार है।

(1) कोमल विकृत स्वर (2) तीव्र विकृत स्वर

(1) कोमल विकृत स्वर

जब स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से एक स्वर नीचे होकर गाया या बजाया जावे तो उसे कोमल विकृत 'स्वर' कहते है। इनकी संख्या 4 है तथा इनकी पहचान के लिये स्वर के नीचे आड़ी लकीर लगाई जाती है। जैसे रे ग ध नि

(2) तीव्र विकृत स्वर

जब स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से एक स्वर ऊपर होकर गाया या बजाया जाये तो उसे 'तीव्र विकृत स्वर' कहते है। इसकी संख्या एक है। तीव्र स्वर का पहचान चिन्ह – स्वर के ऊपर खडी लकीर का प्रयोग किया जाता है जैसे..... म'

सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात' । संगीत के मूल शुद्ध स्वर सात मानें गये है। सात स्वरों के समूह को जब एक क्रम से लिखा या गाया–बजाया जाता है, तो उसे 'सप्तक' कहते है। जैसे –सा, रे, ग, म, प, ध, नि।

इसराज वाद्य

सा से नि तक एक सप्तक होता है। इसमें प्रत्येक स्वर की आन्दोलन संख्या अपने पिछले स्वंर से अधिक होती है। दूसरे शब्दों में कहे तो षडज (सा) से जैसे – जैसे आगे बढते जाते है, स्वर की आंदोलन संख्या बढती जाती है, जैसे रे की सा से अधिक, ग की रे से अधिक 'म' की ग स्वर से अधिक होती है। इसी प्रकार प, ध और नि की आन्दोलन संख्या अपने पिछले स्वरों से ज्यादा होती है।

पंचम स्वर की आंदोलन संख्या 'सा' से डेढ गुनी अर्थात 3/2 गुनी होती है। उदाहरण के लिये अगर सा की आन्दोलन संख्या 240 है तो प स्वंर की आंदोलन सख्या 240 की डेढ गुनी 360 होगी।

सा से नि तक एक सप्तक होता है। सप्तक में शुद्ध व विकृत मिलाकर कुल 12 स्वर होते है, सामान्यतः क्रियात्मक संगीत में तीन सप्तक प्रयोग में लाये जाते है।

जिन्हे क्रमशः मन्द्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक कहते है।

सप्तक

मन्द्र सप्तक | मध्य सप्तक | तार सप्तक

(1) मन्द्र सप्तक

मध्य सप्तक के पहले का सप्तक मन्द्र सप्तक कहलाता है, जिस सप्तक के स्वरों की आवाज नीचे हो अथवा मध्य सप्तक के स्वरों से आधी हो उसे ''मन्द्र सप्तक'' कहते है। मन्द्र सप्तक के प्रत्येक स्वर की आन्दोलन संख्या मध्य सप्तक के उसी स्वर के आंदोलन संख्या से आधी होगी। उदाहरणार्थ अगर मध्य सप्तक के पंचम (4) की आंदोलन संख्या 360 है, तो मन्द्र पंचम की आंदोलन संख्या 360 से आधी, 180 होगी। इसीलिये मन्द्र के स्वरों की आवाज मध्य से ठीक आधी होती है। मन्द्र के स्वरों को पहचानने का चिन्ह मातखण्डे स्वरलिपि पद्वति के अनुसार स्वरों के नीचे बिन्दु लगता है, जैसे **ग़ म़ प़ ध़ नि़**।

(2) मध्य सप्तक

मन्द्र सप्तक से दुगुनी आवाज होने पर मध्य सप्तक कहलाता है। मध्य सप्तक के स्वरों की आवाज न अधिक नीची, न अधिक ऊंची होती है। इस सप्तक का उपयोग गायन वादन में अन्य सप्तकों की अपेक्षा अधिक होता है। ये सप्तक अन्य दो सप्तकों के मध्य में होता है। इसीलिये इसे मध्य सप्तक कहा गया है। इस सप्तक के स्वरों को पहचानने के लिये कोई चिन्ह का प्रयोग नही किया जाता। जैसे, सा रे ग म प ध नि। (कोई पहचान चिन्ह नही।)

(3) तार सप्तक

मध्य सप्तक के बाद का सप्तक ''तार सप्तक'' कहलाता है। यह सप्तक मध्य सप्तक से दुगुनी ऊंची आवाज में गाया अथवा बजाया जाने वाला सप्तक है। इस सप्तक के किसी स्वर की आंदोलन संख्या, मध्य सप्तक के उसी स्वंर की आंदोलन संख्या से ठीक दुगुनी होती है – उदाहरण के लिये मध्य सा की आंदोलन संख्या 240 है तो तार सा की 480 होगी। मध्य के रे की आंदोलन संख्या 270 है तो तार सप्तक के रे की आंदोलन संख्या 540 होगी। इस सप्तक के स्वर का पहचान चिन्ह – सं रें गं मं पं (स्वर के ऊपर बिंदी)

अलंकार

वर्ण की नियमित रचना अथवा विशिष्ट स्वर समुदाय को अंलकार कहते है। अलंकार को पलटा भी कहते है। अलंकार में कई कड़िया होती है, जो आपस में जुडी होती है। प्रत्येक अलंकार में मध्य सा से तार सां तक आरोही वर्ण और तार सां. से मध्य सा तक अवरोही वर्ण हुआ करता है। स्वरों की नियमानुसार उलट–पुलट रचना में ही अलंकार कहते है। संगीत दर्पण में अंलकार की परिभाषा इस प्रकार दी गई है –

वायलिन वाद्य

''विशिष्ट – वर्ण – संदर्भ अलंकार प्रचक्षते ''

अर्थात नियमित वर्ण समूह को अंलकार कहते है। अलंकार शब्द का अर्थ 'आभूषण या गहना है। जिस प्रकार आभूषण शरीर की शोभा बढाते है, उसी प्रकार अलंकारों द्वारा गायन व वादन की शोभा बढती है। अलंकार की प्रत्येक कडी में स्वरों की संख्या व घुमाव समान होना चाहिये।

स्वर का शीघ्र ज्ञान होना व राग का विस्तार करना अलंकार का मुख्य उद्देश्य है। अलंकार से ही संगीत शिक्षा प्रारम्भ की जाती है।

''वाद्य'' के विद्यार्थियों को नित्य प्रति अलंकार का अभ्यास करना चाहिये, जिससे कि अंगुलियां अपने वाद्य पर विभिन्न प्रकार से घूमने योग्य हो जाती है। इससे विद्यार्थियों की रचनात्मक प्रवृति को प्रोत्साहन मिलता है। 'अलंकार अभ्यास से गायन के विद्यार्थियों का कंठ मधुर हो जाता है, गीत की रचना करने में भी सहायता मिलती है। अलंकार वर्ण, समुदाय में ही होते है। अलंकार के आरोह व अवरोह में नियमबद्धता होनी चाहिये। आरोह के स्वर के अनुसार ही अवरोह ठीक उलटा होना चाहिये अर्थात स्वर का चढ़ता क्रम

व उतरता क्रम नियमानुसार होना चाहिये। उदाहरण के लिये,

(1) आरोह : सा रे रे ग म, रे ग ग म प, ग म म प ध, म प प ध नि, प ध ध नि सां,
अवरोह : सां नि नि ध प, नि ध ध प म, ध प प म ग, प म म ग रे, म ग ग रे सा।

(2) आरोह : सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सां,
अवरोह : सां नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा।

(3) आरोह : सा रे सा ग, रे ग रे म, ग म ग प, म प म ध, प ध प नि, ध नि ध सां,
अवरोह : सां नि सां ध, नि ध नि प, ध प ध म, प म प ग, म ग म रे, ग रे ग सा।

इस प्रकार अनेक अलंकारों की रचना हो सकती है।

राग

राग ध्वनि की एक ''खास रचना'' है, जिसे स्वर और वर्ण से सुन्दरता प्राप्त होती है, जो चित्त को आनंदित करती है।

कम से कम पांच और अधिक से अधिक सात स्वरों की वह सुन्दर रचना जो कानों को मधुर लगे, राग कहलाती है। आजकल राग गायन ही प्रचार में है। अभिनव राग मंजरी में राग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

योऽयं ध्वनि– विशेषस्तु स्वर– वर्ण– विभूषितः।
रंजको जन चित्तानां स राग कथितो बुधैः।।

अर्थात स्वर और वर्ण से विभूषित ध्वनि, जो मनुष्य का मनोरजंन करे, राग कहलाता है। राग से विभिन्न रसों की अनुभूति होती है। आधुनिक समय में राग के निम्नालिखित लक्षण माने जाते हैः–

वह रचना जो कानों को अच्छी लगे, राग कहलाती है। इसलिये यह स्पष्ट है कि प्रत्येक राग में रंजकता होनी चाहिये।

(1) राग में कम से कम पांच स्वर और अधिक से अधिक सात स्वर होने चाहिये। पांच स्वरों से कम का राग नही होता।

(2) प्रत्येक राग को किसी न किसी थाट से उत्पन्न माना गया है, उदा. यमन को कल्याण थाट से माना गया है।

(3) किसी भी राग में षडज (सा) कभी वर्जित नही होता, क्योकि यह सप्तक का आधार स्वर होता है।

(4) किसी भी राग में म और प में से कोई एक स्वर अवश्य रहना चाहिये। कोई राग ऐसा नही है, जिसमें म और प दोनो एक साथ वर्ज्य होते हो।

(5) प्रत्येक राग में आरोह अवरोह पकड वादी संवादी, गायन– वादन समय आदि आवश्यक है।

राग की जाति

राग के आरोह अवरोह में लगने वाले स्वरों की संख्या से राग की जाति का बोध होता है। किसी भी राग में कम से कम पांच और अधिक से अधिक सात स्वर प्रयोग किये जा सकते है। अतः संख्या की दृष्टि से राग

के मुख्य तीन प्रकार होते हैः–

(1) पांच स्वर वाले राग

(2) छः स्वर वाले राग

(3) सात स्वर वाले राग।

दामोदर पंडित लिखित ''संगीत दर्पण'' में कहा गया हैः–

औडव : पंचभि प्रोक्ताः स्वरैः षडभिश्च षाडवा।
सम्पूर्ण सप्तभिज्ञैय एवं रागास्त्रिधा मतः।।

अर्थात पांच स्वर वाले रागों की जाति औडव छः स्वर वालें रागों की जाति षाडव सात स्वर लगने वाले रागों की जाति सम्पूर्ण। रागों की मुख्य तीन जातियों से यह पता चलता है कि किसी राग के आरोह– अवरोह में कितने स्वर प्रयुक्त होते है। अधिकांश रागों में यह देखा जाता है, कि आरोह व अवरोह में लगने वाली स्वरों की संख्या समान नही होती, जैसे राग देस के आरोह में पांच और अवरोह में सात स्वर प्रयोग किये जाते है और खमाज में आरोह में 6 स्वर तथा अवरोह में सातों स्वर प्रयोग किये जाते है इत्यादि। इस प्रकार राग की मुख्य तीन जातियों से कुल मिलाकर 9 जातियां होती है जो इस प्रकार है :–

(1) औडव – औडव
(2) औडव – षाडव
(3) औडव – सम्पूर्ण
(4) षाडव – षाडव
(5) षाडव – औडव
(6) षाडव – सम्पूर्ण
(7) सम्पूर्ण – सम्पूर्ण
(8) सम्पूर्ण – षाडव
(9) सम्पूर्ण – औडव

इकतारा वाद्य

थाट

सप्तक के बारह स्वरों में से 7 क्रमानुसार मुख्य स्वरों के उस समुदाय को थाट कहते है, जिससे राग उत्पन्न होते हो, थाट को मेल भी कहा जाता है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में 'मेल' शब्द ही प्रयोग किया जाता था।

भातखण्डे जी द्वारा लिखित 'अभिनव राग मंजरी' में कहा गया है :

'मेल स्वर– समूह : स्याद्राग व्यजन् शक्तिमान' अर्थात स्वरों के उस समूह को मेल या थाट कहते है, जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो।

थाट के निम्नलिखित लक्षण माने गये है :

(1) प्रत्येक थाट में अधिक से अधिक व कम से कम सात स्वर प्रयोग किये जाने चाहिये।

(2) थाट सम्पूर्ण होने के साथ– साथ उसके स्वर स्वाभाविक क्रम से होने चाहिये।

(3) किसी भी थाट में आरोह – अवरोह दोनो का होना आवश्यक नही है। क्योकि आरोहावरोह में कोई अन्तर नही होता।
(4) थाट गाया बजाया नही जाता। अतः उसमें मधुरता होना आवश्यक नही है।
(5) थाट में केवल राग उत्पन्न करने की क्षमता होती है।

थाटों की संख्या

हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति में दस थाट माने जाते है। इन दस थाटों से समस्त राग उत्पन्न माने गये है।आधुनिक काल में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ने थाट पद्वति से दस (10) थाटों की संख्या ग्रहण किए जो हिन्दुस्तानी संगीत पद्वति का आधार है।दस थाटों के नाम निम्नलिखित हैः–

1. बिलावल थाट – प्रत्येक स्वर शुद्व।
2. कल्याण थाट – म स्वर तीव्र तथा अन्य स्वर शुद्व।
3. खमाज थाट – नि कोमल व अन्य स्वर शुद्व।
4. आसावरी थाट – ग, ध, नि कोमल तथा अन्य स्वर शुद्व।
5. काफी थाट : ग और नि कोमल, अन्य स्वर शुद्व।
6. भैरव थाट : रे और ध कोमल, अन्य स्वर शुद्व।
7. भैरवी थाट : रे, ग, ध, नि स्वर कोमल, अन्य शुद्व।
8. मारवा थाट : रे कोमल, म तीव्र तथा अन्य शुद्व।
9. पूर्वी थाट : रे, ध कोमल, म तीव्र व अन्य शुद्व।

तोडी थाट : रे, ग, ध, कोमल, म तीव्र व अन्य शुद्व।

शहनाई वाद्य

जमजमा

यह शब्द 'फारसी' भाषा का है। यह एक प्रकार का कण है। जिसमें तर्जनी और मध्यमा दोनों उंगलियों का प्रयोग होता है। सितार में किसी भी स्वर पर तर्जनी द्वारा वाद्य के तार को दबाकर, उससे अगले पर्दे पर मध्यमा अंगुली को जोर से मारे तो जिस स्वर पर मध्यमा अंगूली पडेगी, उस स्वर की एक हल्की सी ध्वनि सुनाई देगी। इस क्रिया को 'जमजमा' कहते है। उदाहरण जब हम सा के परदे पर तर्जनी रखकर मिजराब से एक बार आघात कर दे और बिना मिजराब लगाये हुये सा के तुरन्त बाद मध्यमा अंगुली से रे के परदे पर प्रहार करे, हम अनुभव करेगे कि हल्की सी रे की ध्वनि भी सुनाई पडेगी, इस प्रकार ये सा रे होगा। हम चाहे तो रे स्वर पर 2–3 बार भी शीघ्रता से आघात कर सकते है। जिसमें मिजराब सिर्फ बजने में यह स्वर सा रे, सा रे होगा अथवा रे ग रे ग ।

मींड

जब दो या अधिक स्वर इस ढंग से गायें या बजाये कि स्वर अटूट हो, जैसे किसी तार वाद्य के स्वर पर अंगुली रखकर आघात करके उसी स्थान से आगे के स्वर को भी प्रकट कर दे तो इस क्रिया को मींड कहेगे। मींड लेते समय स्वरों का इस प्रकार स्पर्श होता है, कि वे अलग – अलग सुनाई नही पडते।
मींड भारतीय संगीत की विशेषता है, इससे गायन तथा वादन (तारवाद्य) में लोच और रंजकता आती है। यह बिलंबित लय की क्रिया होती है। जो भक्ति, शोक और शान्त जैसे स्थायी भावों को दर्शाने में सहायता

करती है, मीड निकालने के लिये स्वरों के ऊपर उल्टा अर्ध– चन्द्राकार चिन्ह का प्रयोग किया जाता है
जैसे– सां मि, रें पे, पं नि

बांसुरी वाद्य

गमक

जब आन्दोलित स्वर पर बल देकर उसको प्रयोग में लाया जाता है, तो उसको गमक कहते है। यह क्रिया गतों के तोडों में विशेष रूप से देखने को मिलती हैं संगीत रत्नाकर में गमक की परिभाषा इस प्रकार दी है **'स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृ– चित– सुखावहः''।** अर्थात स्वरों के ऐसे कम्पन्न को गमक कहते है जो सुनने वाले के चित्त को सुखदायी हो।
इस तरह प्राचीन काल में स्वरों के एक विशेष प्रकार के कंपन को, जो सुनने में अच्छे लगे, गमक कहते थे। उस समय गमक के 15 प्रकार माने जाते थे, जैसे – कंपित, आंदोलित स्फुरित, आहत, प्लावित, उल्हासित, त्रिभिन्न तिरिप, वली, हम्पित, लीन, मुद्रित, करूला, नमित, मिश्रित। गमक ही कण, मींड सूत की उत्पत्ति का कारण है। स्वरों का कम्पन ही गमक कहलाता है।

गत

जब किसी राग के स्वरों की रचना तालवद्व करके सरोद इसराज, वायलिन गिटार आदि किसी वाद्य पर बजाते है तो उसे गत कहते है, गत हर राग में होती है।

विशेषतः सितार वाद्य हेतु

राग के स्वर एवं सितार के बोलों की ताल बद्व रचना को गत कहते है। मिजराब के विभिन्न बोलो की तरह – तरह से रचना करके विभिन्न शैलियों से सितार बजाने को बाज कहते है। वादन शैलिया तीन प्रकार की है।
(1) मसीतखानी बाज
(2) अमीरखानी बाज
(3) रजाखानी बाज।

सितार वाद्य

इस वादन शैलियों में मुख्य मसीतखानी तथा रज़ाखानी में दो प्रमुख रचनायें मानी जाती है, जैसे गायन में तान, पलटें होते है, उसी प्रकार गत में, तोडा, तान, तिहाईयां और झाले इत्यादि होते है।

मसीतखानीगत

अमीर खुसरों की वंश परम्परा के मसीत खां ने इस नवीन गत का आविष्कार किया। इस गत का नामकरण इसके आविष्कार के आधार पर हुआ। मसीतखानी गते बिलंबितलय में होती है तथा खाली की 3 मात्रा बाद से अर्थात 12वी मात्रा से शुरू करते है। इसके बोल इस प्रकार होते है –
दिर/ दा दिर, दा रा/ दा रा रा दिर/दा दिर दा रा दा दा रा/ मसीतखानी गत के लिये पांच मात्रें का टुकडा तथा उपर्युक्त क्रमानुसार बोलो का होना आवश्यक है। इसमें मींड, गमक की अधिक गुजांईश रहती है। मसीत खानी गत को दिल्ली बाज भी कहते है। मसीत खां ने सितार के परदों की संख्या 23 तक बढाकर उसे अचल थाट बना दिया और एक नई वादन शैली का किया।

रज़ाखानी गत

जौनपुर के रजा खां, अमीर खां के शार्गिद थे, जिन्होने रज़ाखानी या पूरब बाज का आविष्कार किये, इसे द्रुत गत भी कहते है। रजाखानी गत, मसीतखानी गत के बिल्कुल विपरीत मध्य और द्रुत लय में बजाई जाती है। अतः मसीत खानी गत के समान गम्भीर न होकर यह चंचल प्रकृति की होती है।

रजाखानी गत में वादक अपनी तैयारी दिखाता है। रजाखानी गत को पूर्वी बाज और मसीतखानी गत को दिल्ली अथवा पश्चिमी बाज भी कहते है।

इस गत रचना में दिर, दार, दारा दा ऽ र दा, दा दिर, दिर दिर दा ऽ र दा ऽ र दा आदि बोल बजाये जाते है। इसमें गतकारी, चिकारी, तैयारी के साथ तोडे तथा लडी का काम दिखाते हुये विभिन्न प्रकार के झाले का प्रदर्शन किया जाता है। सितार वादन में मसीतखानी गत बजाने के पश्चात रजाखानी गत बजाये जाने की प्रथा है। जिस प्रकार ख्याल गायन में विलंबित (बडा) ख्याल के बाद द्रत ख्याल (छोटाख्याल) गाने की परम्परा है।

महत्वपूर्ण बिन्दू

नाद	–	संगीत उपयोगी मधुर ध्वनि
श्रुति	–	वह ध्वनि जो एक दूसरे से भिन्न तथा स्पष्ट सुनाई दे।
स्वर	–	नियमित व स्थिर आंदोलन संख्या वाली ध्वनि।
सप्तक	–	सात स्वरों का समूह
अलंकार	–	स्वरों की वह नियमित रचना जो आरोहावरोह में नियमबद्धता लिए हो।
राग	–	ध्वनि की वह विशिष्ट रचना, जिसे स्वर और वर्ण से सुन्दरता प्राप्त हो।
जमजमा	–	एक ऐसा कण जिसमें तर्जनी व मध्यमा दोनों अंगुली का प्रयोग हो।
मींड	–	किसी एक स्वर को बजाकर तथा उसी स्वर से 2–3 स्वर और प्रकट कर दिये जाये।
गत	–	वाद्य संगीत की स्वरबद्ध व तालबद्ध रचना।
मसीतखानी गत	–	वह गत जो विलंबित लय में बजाई जाये।
रज़ाखानी गत	–	वह गत जो द्रुत लय में बजाई जाये।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नाद को परिभाषित करते हुये, नाद के भेद को समझाईये।
2. नाद की तीनों विशेषताओं का वर्णन करे।
3. निम्नलिखित की टिप्पणी लिखे :
   (1) श्रुति (2) स्वर (3) सप्तक (4) अलंकार
4. राग और थाट की परिभाषा दीजिये।
5. भातखण्डे जी द्वारा रचित आधुनिक दस थाट के नाम लिखे।
6. जमजमा, गमक, और मींड को परिभाषित करे।
7. गत किसे कहते है। रजाखानी और मसीतखानी गत में क्या अंतर है। समझाईये।

इस अध्याय में विद्यार्थियों की जानकारी हेतु विभिन्न स्वर वाद्यों के चित्र दिए गए हैं न कि अध्याय की विषयवस्तु विभिन्न परिभाषाओं के।

अध्याय 2

रागों का शास्त्रीय वर्णन

राग यमन

दोहा–

शुद्व सुरन के संग जबमध्यम तीवर होय।
ग नि वादी– संवादि ते,यमन कहत सब कोय।।
तथा
सबही तीवर सुर जहॉवादी गंधार सुहाय।
अरू संवाद निखादतेईमन राग कहाय।।
–रागचन्द्रिका सार

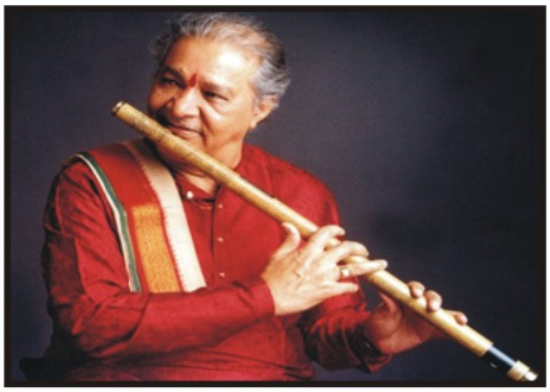

पं. हरिप्रसाद चौरसिया
बांसुरी वादक

राग का शास्त्रीय विवरण

राग यमन की रचना कल्याण थाट से मानी गई है, इसमें तीव्र मध्यम तथा अन्य स्वर शुद्व प्रयोग किये जाते है।

इस राग का वादी स्वर ग (गंधार) तथा संवादी स्वर नि (निषाद) है।

इस राग की जाति सम्पूर्ण है। इसके आरोह व अवरोह में सातों स्वर प्रयोग में आते है। इस राग के गायन–वादन का समय रात्रि का प्रथम प्रहर है।

यह कल्याण थाट का राग है, अतः इसे आश्रय राग भी कहा जाता है।

राग की विशेषताएँ :

1. कल्याण राग की विशेषता यह भी है कि इस राग के अनेंक नाम प्रचलित है जैसे – कल्याण, ईमन, एमन तथा यमन।
2. इस राग की चलन में मन्द्र नि से जैसे नि़ रे ग रे, नि़ रे ग म प आदि स्वर संगति की अधिकता रहती है।
3. यह कि अत्यन्त मधुर राग है तथा नये विद्यार्थियों के लिये सरल एवं सहज है।
4. इसमें कभी– कभी शुद्व मध्यम का प्रयोग विवादी स्वर के नाते कर दिया जाता है, तब कुछ लोग इसे यमन कल्याण कहते है।
5. यह गंभीर प्रकृति का राग है।
6. गंधार स्वर वादी होनें के कारण यह राग पूर्वांग वादी है।

आरोह – सा रे ग, म॑ प, ध, नि सां । अथवा

नि रे ग म॑, प ध, नि सां।

अवरोह – सां नि ध, प, म॑, ग, रे, सा ।

पकड़ – नि॒ रे ग रे सा, प म॑, ग, रे, सा ।

राग यमन : ताल–त्रिताल : मसीतखानी गत

9	10	11	12	13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8
–	–	–	नि॒रेगम॑	रे	सासा	नि॒ध॒	नि॒रे	ग	–	–	रेरे	ग	म॑म॑	प	म॑
–	–	–	दिरदिर	दा	दिर	दिर	दिर	दा	–	–	दिर	दा	दिर	दा	रा
ग	रे	सा	गग	रे	गग	मं	ध	नि	धध	प	पप	मं	गग	रे	रे
दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा
ध॒	नि॒	सा													
दा	दा	रा													
0				3				×			2				

अन्तरा

9	10	11	12	13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8
			पप	मं	गग	मं	ध	सां	सां	सां	निनि	रें	गंगं	रें	सां
			दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
नि	धध	प	पप	सां	रेंरें	नि	ध	नि	ध	प	पप	मं	रेरे	ग	रे
दा	दिर	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	दिर	दा	दिर	दा	रा
ध॒	नि॒	सा॒	नि॒रेगम॑												
दा	रा	दा	दिरदिर												
0				3					×			2			

राग यमन : ताल त्रिताल : द्रुत गत – स्थायी

9	10	11	12	13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8
–	ध॒	नि॒	रे	ग	–	ग	रे	गग	म॑म॑	पप	म॑म॑	ग–	गरे	–रे	सा–
–	दा	रा	दा	दा	रा	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दा
–	ध॒	नि॒	रे	ग	–	ग	रे	ग	म॑म॑	धध	निनि	ध–	धप	–प	मग
ऽ	दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
–	ध॒	नि॒	रे												
ऽ	दा	रा	दा												
0				3				×				2			

अन्तरा

13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
				ग	मंमं	प	ध	नि	निनि	सां	–	नि	रेंरें	गंगं	रेंरें
				दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर
सां	निनि	ध	प	सां	निनि	सां	–	निनि	धध	पप	मं	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दा	दाऽ	रदा	ऽदा	दा–
–	ध़	नि़	रे												
ऽ	दा	रा	दा												
3				×				2				0			

राग भैरव

राग वर्णन

दोहा– ध– रि वादी – संवादी करि रि–ध कोमल स्वर मान।
प्रातः समय नीको लागे भैरव राग महान।।

राग : भैरव
थाट : भैरव (अपने नाम वाले थाट से उत्पन्न)
जाति : सम्पूर्ण – सम्पूर्ण
वादी स्वर : धैवत (ध)
संवादी स्वर : रिषभ (रे)
गायन वादन समय : प्रातः काल
कोमल : रे और ध
प्रकृति : गम्भीर

डॉ. एन. राजम्
वायलिन वादिका

विशेषताएँ–

1.राग भैरव अत्यन्त प्राचीन और गंभीर राग है।
2.इसकी उत्पत्ति भैरव थाट से है, इसलिये ये अपने थाट का आश्रय राग कहलाता है।
3.ये प्रातः कालीन संधिप्रकाश राग है। अतः इसे प्रातः चार से सात बजे के बीच गाया बजाया जाता है।
4.इस राग की प्रकृति गंभीर होने के कारण इसमें ध्रुपद धमार, मसीतखानी एवं रज़ाखानी गत एवं ख्याल गाया बजाया जाता है।
5.इस राग में रे और ध को आंदोलित किया जाता है।
जैसे–ग म रे ऽ रे ऽ सा

ग म मध़ ऽ ध़ ऽ प।

6.अवरोह में बहुधा गंधार स्वर को वक्र कर दिया जाता है।

जैसे–म प ग म रे़ ऽ रे़ ऽ सा।

न्यास के स्वर–सा, रे प और ध

समप्राकृतिक राग –कालिंगड़ा, रामकली।

आरोह –सा रे़ ग म, प ध़ नि सां।

अवरोह –सां नि ध़ प, म ग, रे़ सा।

पकड़ –ग म ध़ ऽ ध़ ऽ प, ग (म) रे़ ऽ रे़ ऽ सा।

पं. राम नारायण
सारंगी वादक

राग– भैरव
ताल– त्रिताल
रज़ाखानी गत (द्रुत)

9	10	11	12	13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8
ध	धध़	प	ध़	म	पप	ग	म	रे़	–	ग	म	रे़	रेरे़	सा	–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
सा	रेरे़	ग	म	प	धध़	नि	सां	धध़	पप	गग	मम	गऽ	गरे़	ऽरे़	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	ऽ	दिर	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

9	10	11	12	13	14	15	16	1	2	3	4	5	6	7	8
म	पप	ग	म	ध़	–	नि	सां	सां	–	सांसां	सां–	सां	रेंरें	सां	–
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा	दा	ऽ	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
सां	रेंरें	गं	रें	सां	निनि	सां	–	सांसां	निनि	धध़	पप	ग–	मरे	–रे़	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
0				3				×				2			

राग देस

अब्दुल हलीम ज़ाफर खां
सुर बहार वादक

दोहा –

वादी रे, संवादी प, दोऊ निषाद लग जायें।
औडव संपूरण सुधर, देस राग की गायें
अथवा
औडव संपूरन राग में, दो निषाद का योग।
थाट खमाज द्वितीय रात्रि, रे प का संयोग।।

राग विवरण –यह राग खमाज थाट से उत्पन्न हुआ है। अथवा खमाज अंग का राग है।
इस राग के आरोह में ग और ध वर्जित है एवं अवरोह संपूर्ण है।
इस राग में दोनों निषाद का प्रयोग होता है, आरोह में शुद्वनि तथा अवरोह में कोमल नि।
राग का वादी स्वर रे तथा संवादी स्वर प है। इस राग के गायन वादन का समय रात्रि का द्वितीय प्रहर है।

विशेषताएँ

1. यह चंचल प्रकृति का राग है।
2. इस राग का स्वरूप सोरठ नामक राग से बहुत मिलता जुलता हैं।
3. इस राग में रज़ाखानी, छोटाख्याल, तथा ठुमरी गाई व बजाई जाती।
4. यह राग बहुत लोकप्रिय राग है।
5. इस राग में 'ध म' स्वरों की संगति बार– बार सुनाई देती है, इसलिये अवरोह में अधिकतर 'प' को अल्प कर 'ध म' स्वरों का प्रयोग किया जाता है।
   जैसे–<u>नि</u> ध प, ध म ग रे
6. यह राग अवरोह में अधिक स्पष्ट होता है।
7. इस राग के अवरोह में रे वक्र रूप से लेते है,
   जैसे म ग रे ऽ ग ऽ नि़ सा।
8. यह राग मारवाड़ तथा जयपुर की तरफ बहुत ही सुन्दरता के साथ गाया– बजाया जाता है।

न्यास के स्वर	–	सा रे और प
मिलते जुलते राग	–	सोरठ व तिलक कामोद।
आरोह	–	सा, रे, म, प, नि, सां।
अवरोह	–	सां <u>नि</u> ध प, म ग रे, ग नि ऽ सा।
पकड़	–	रे म प, <u>नि</u> ध प, प ध प म, ग रे ग, नि़ सा।

राग– देस

ताल– त्रिताल

रजाखानी गत (द्रुत)

प	निनि	सांसां	रेंरें	नि–	धध	प	ध	मम	गग	रेरे	सासा	रे	मम	प	–
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
म	मम	ग	रे	ग	गनि़	नि़	सा–	रे	मम	प	ध	निऽ	निध	ऽध	प
दा	दिर	दा	रा	दा	रदि	ऽर	दा	दा	दिर	दा	रा	दाऽ	रदा	ऽर	दा
0				3				×				2			

अन्तरा

म	मम	पप	निनि	सां	निनि	सां	सां	निनि	सांसां	रेंरें	सां–	निऽ	निध	ऽध	प–
दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
सां	निनि	सां	रें	नि	धध	प	ध	मम	गग	रेरे	सासा	रे	मम	प	प
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
0				3				×				2			

राग देशकार

दोहा–

जबहि बिलावल मेल सों,म–नि सुर दिये निकाल।
ध– ग वादि– संवादि ते,औडव देशीकार।।

राग विवरण

यह राग बिलावल थाट से उत्पन्न एक लोकप्रिय राग है। इस राग में मध्यम (म) एवं निषाद पूर्णतया वर्जित है। अतः इसकी जाति औडव– औडव है। वादी स्वर 'ध' और संवादी स्वर 'ग' है। इसका गायन वादन समय दिन का दूसरा प्रहर है। सभी स्वर शुद्व लगते है।

पं. शिव कुमार शर्मा
संतूर वादक

विशेषताएँ–

1.इसका समप्रकृति राग भूपाली है। भूपाली में भी म– नी वर्जित है। परन्तु ग्रह– अंशादो में स्वर संगति आदि के कारण दोनो राग एक दूसरे से भिन्न हो जाते है।

2.यह राग उत्तरांग प्रधान है।

3.इस राग की चलन मध्य और तार सप्तक में ही होती है।

4.राग भूपाली में पंचम में ठहरते ही वहॉ देशकार दिखने लगता है।

5.देशकार में पंचम का प्रयोग अधिक एवं तार सप्तक की ओर जाना चाहिये।

6.न्यास के स्वर —प, ध और तार सां
समप्रकृति राग —भूपाली और जैत कल्याण।
विशेष स्वर संगति —ग प, ध प ध ऽ प,
प ध सां प ध
सां, ध प ध।
आरोह —सा, रे, ग प, ध सां।
अवरोह —सां, ध, प, ग प ध प, ग रे सा।
पकड़ —सां ध, प, ग प, ध प ग रे सा।

राग– देशकार
ताल– त्रिताल
रज़ाखानी गत (द्रुत) स्थायी

ध	सांसां	ध	प	ध	धध	प	प	ग	पप	धध	पप	ग	रे	सा	–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दा	रा	दा	ऽ
सा	रे	ग	पप	रे	ग	प	धध	ध	सांसां	ध	प	सारे	गग	रेग	पप
दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर
0				3				X				2			

अन्तरा

ग	प	ध	सां	प	धध	सां	–	सां	पप	ध	सां	ध	रेंरें	सा	–
दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा
ध	ध	रें	सां	गं	रेंरें	सां	–	सांसां	धप	धध	पग	सारे	गग	रेग	पप
दा	रा	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर	दिर
0				3				X				2			

राग बागेश्री

दोहा :

तीवर रि ध कोमल ग म नि मध्यम वादी बखानी।
खरज जहां संवादी है,बागेसरी लखानी।।
– ''रागचन्द्रिका सार''

उ. असद अली खां
रुद्र वीणा वादक

राग विवरण

यह राग काफी थाट से उत्पन्न राग है। इस राग में ग और नि स्वर कोमल लगते है। इस राग का वादी स्वर मध्यम और संवादी षडज है। इस राग का

गायन– वादन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इसके आरोह में रे और प वर्ज्य है।
अवरोह में सातों स्वर का प्रयोग होता है। इस राग की जाति के विषय में मतभेद है। कुछ संगीतज्ञ इसें षाडव सम्पूर्ण और अधिकांश विद्वान इसे औडव सम्पूर्ण जाति का राग मानते है।

विशेषताएँ–

1.मध्यम, धैवत और निषाद स्वर की संगति इस राग की शोभा बढ़ाती है।
2.अवरोह में पंचम का प्रयोग वक्र रूप में होता हैं जैसे– सां नि़ ध, म प ध,
3.ग नि कोमल के साथ अन्य स्वर शुद्व ही प्रयोग में आते है।
4.कोई– कोई गुणीजन पंचम बिल्कुल वर्ज्य करते है।
5.राग– विवरण के अन्तर्गत आरोह में रे स्वर वर्ज्य माना गया है। किन्तु कभी– कभी इसका प्रयोग करते समय म तक जाकर लौट जाते है। जैसे – (1) म ग रे ग़ ऽ (2) रे ग़ म ग़ ऽ रे सा
6.यह राग ख्याल, ध्रुपद, मसीतखानी, रजाखानी तराना के उपयुक्त है।

न्यास के स्वर	–	सा, ग और प
समप्रकृति राग	–	भीमपलासी
आरोह	–	सा नि़ ध़ नि़ सा, म ग़ म ध नि़ सां
अवरोह	–	सां नि़ ध, म ग़ म ग़ रे सा
पकड़	–	सा नि़ ध़ सा, म ग़, म ध, नि़ ध, म ग़ म ग़ रे सा।

राग बागे श्री
ताल– त्रिताल
रजा़खानी गत (द्रुत)
स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
						गग	मम	ग़–	गरे	–रे	सा–	ग	मम	ध	नि़
						दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	दा	दिर	दा	रा
ध	–	–	सांसां	नि़	ध	गग	मम	ग़–	गरे	–रे	सा–	नि़	सासा	ध़	नि़
दा	ऽ	ऽ	दिर	दा	रा	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	दा	दिर	दा	रा
सा	–	–	ग़म	म	म	गग	मम								
दा	ऽ	ऽ	दिर	दा	रा	दिर	दिर								
×				2				0				3			

अन्तरा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								ग	मम	धध	निनि	सां	सांसां	सां	सां
								दा	दिर	दिर	दिर	दा	दिर	दा	रा
नि	सांसां	रेंरें	सांसां	नि–	सांध	–नि	सां–	ध	नि	सांनि	धध	म	ध	निध	म
दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ	दा	रा	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर
पध	मग	रेसा	धनि	सा	सा	गग	मम								
दिर	दिर	दिर	दिर	दा	रा	दिर	दिर								
×				2				0				3			

अभ्यासार्थ प्रश्न

लघुत्तरीय प्रश्न

प्र.1 राग बागेश्री में कौन से स्वर कोमल प्रयोग में आते हैं।

प्र. 2 जिस राग में रे और धा कोमल हो वह कौन सा राग है।

प्र. 3 राग देशकार की जाति क्या है।

प्र. 4 राग देस के आरोह में शुद्ध नि तथा अवरोह में कौनसा नि प्रयोग में आता है।

निबन्धात्मक प्रश्न

प्र. 1 राग यमन,भैरव,देस,देशकार तथा बागेश्री का शास्त्रीय परिचय मय दोहा आरोह अवरोह पकड लिखें ।

प्र. 2 पाठयक्रम से किसी राग की बिलंबित गत को ताल लिपि में बद्व करें ।

प्र. 3 पाठयक्रम से कोई दो रागों की रजाखानी गत को तालिपि में बद्व करें ।

उ. अल्लाउद्दीन खां
पं. रविशंकर एवं निखिल बनर्जी के गुरु

प्रस्तुत अध्याय में विद्यार्थियों हेतु प्रख्यात संगीतज्ञों के चित्र दिये गए है जो सांगीतिक ज्ञानवर्धन तथा प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण है।

अध्याय 3

संगीतकारों की जीवनियाँ

पंडित विष्णु नारायण भातखंडे

आकाश में सैंकड़ों तारे होते हैं मगर उजाला केवल चंद्रमा से होता है। उसी प्रकार कलाओं के विभिन्न क्षेत्र में हज़ारों व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार साधना और निर्माण करते है। संगीत के क्षेत्र में ऐसा ही स्थान पंडित विष्णुनारायण भातखंडे जी को प्राप्त है।

भातखंडे जी का जन्म 10 अगस्त 1860 को कृष्ण जन्माष्टमी के दिन बंबई में हुआ था। संगीत के प्रति रूचि उनमें बचपन से ही थी। उनकी मॉ जो भजन उन्हें सुनाती थी वे उसे उसी प्रकार सुनाकर सभी को प्रसन्न कर देते थे। संगीत की शिक्षा उन्हें अपनी मॉ से विरासत में मिली।

भातखंडे जी ने बी.ए., एल.एल.बी. की उच्च शिक्षा प्राप्त की। इसके साथ ही संगीत से प्रेम होने के कारण वे संगीत की शिक्षा भी प्राप्त करते रहे। छात्र अवस्था में ही वे सितार और बॉसुरी वादन में निपुण हो गये थे। सन् 1884 में वह उत्तेजित मंडली के सदस्य बने जहॉ एक से एक संगीताचार्य संगीत साधना में लगे हुये थे। यह संगीत संस्था बंबई के धनिकों द्वारा संचालित थी और प्रसिद्ध ध्रुपद गायक श्री राव बुवा बेलगॉवकर, ख्याल गायक अली हुसैन खॉ गणपति बुआ आदि इस संस्था की शोभा थे। इन्ही दिनों सुविख्यात संगीतकार मोहम्मद अली और उनके पुत्र मुशताक अली भी बंबई में निवास करते थे। भातखंडे जी को इन श्रेष्ठ कलाकारों के संपर्क में आने का अवसर मिला और उन्होने इनसे बड़ी संख्या में ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, तरारा आदि का ज्ञान प्राप्त किया।

सन् 1887 में उन्होने बंबई में वकालत शुरू की पर उन्होने अनुभव किया कि संगीत ही उनका वास्तविक क्षेत्र है और उन्होने वकालत को तिलाजंलि दे दी। सन् 1890 में उन्होंने देश के संगीत तीर्थों की यात्रा की और बहुत बड़े– बड़े संगीतकारों से मिले।

इस अवधि में उन्होंने प्राचीन भारतीय संगीत का गहराई से अध्ययन किया, उस्तादों की चरणरज माथे पर लगाई और संगीत के क्षेत्र में शोध और अनुसंधान का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने प्राचीन संगीत ग्रंथो की खोज की, अध्ययन किया और हिंदुस्तानी संगीत पद्धति की सभी धाराओं व उपधाराओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया। भातखंडे जी के समय में किसी संगीतकार की कला को सुरक्षित रखने के लिये आधुनिक उपकरणों का विकास नही हुआ था। उन दिनों संगीत को लिखने और छाप सकने के बारे में कोई सुविचारित रूप प्रचलित नहीं था। भातखंडे जी ने इस दिशा में पहल की और अपना सारा जीवन इसमें बिता दिया। उन्होंने सदियों से प्रचलित राग– रागिनियों को एकत्र किया। उनकी बारीकियॉ सीखीं और बडी संख्या में बंदिशें लिपिबद्ध कीं। उन्होंने विभिन्न गायकों की खास– खास चीज़ों का संकलन किया, विश्लेषण किया और मान्यताएँ स्थापित कीं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता हैं कि उन्होंने संगीत

को अपनी प्रतिभा में वैज्ञानिक रूप दिया और उसके मापदंड निश्चित किये। उन्होंने संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी में शोध– ग्रंथों की रचना की। उनके प्रमुख ग्रंथ इस प्रकार हैः

संस्कृत : 'लक्ष्य संगीत', 'अभिनव रागमंजरी', 'ताल लक्षणम्'।

हिंदीः 'हिंदुस्तानी क्रमिक पुस्तकमालिका' (भाग–6), 'लक्षणगीत संग्रह' (भाग–3), 'भातखंडे संगीत शास्त्र' (भाग–4), 'स्वरमालिका संग्रह' तथा 'गीतमालिका'।

अंग्रेजीः 'A Short Historical Survey of North Indian Music, and 'Comparative Study of Music System of 15, 16, 17 and 18th Century'.

हिंदुस्तानी संगीत पद्धति (क्रमित पुस्तकमालिका) में प्रत्येक राग का इतिहास, आलाप, स्थायी, अंतरा, आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

संगीत सम्मेलनों की शुरूआत

भातखंडे जी के ग्रंथ प्रकाशित होते ही उनकी ख्याति सारे देश में फैंल गई। उनके सफल प्रयासों के समाचार सब संगीत प्रेमी राजाओं तक पहुॅचे तब उन्होने भातखंडे जी को अपने यहॉ आमंत्रित किया। 1907 ईं. में बड़ौदा नरेश की सहायता से संगीत सम्मेलन का आयोजन हुआ। उस सम्मेलन में अखिल भारतीय संगीत एकेडमी स्थापित करने का प्रस्ताव पास हुआ। बाद में 1918 ईं. में दिल्ली में, 1919 ई. में बनारस में तथा 1925 ई. में लखनऊ में संगीत सम्मेलन हुआ। इन अवसरों पर देस के प्रमुख संगीतकार एक मंच पर एकत्रित होते थे और संगीत संबधित समस्याओं पर विचार करते थे और अपनी कला का प्रदर्शन करते थे।

भातखंडे जी ने महाराजा ग्वालियर से संगीत विद्यालय की स्थापना के बारे में विचार– विमर्श किया। उन्होंने संगीत विद्यालय का स्वरूप स्थापित किया और परीक्षा प्रणाली निर्धारित की। राज्य के संगीतकारों का चयन करके उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई, जिससे वे ठीक प्रकार से शिक्षा दे सकें। इसके लिये भातखंडे जी ने संगीत की पाठ्य– पुस्तकें तैयार कीं।

लखनऊ में आयोजित संगीत सम्मेलन के फलस्वरूप "Marris College of Hindustani Music" की स्थापना हुई थी जो आज 'भातखंडे संगीत विद्यालय' के नाम से प्रसिद्ध है। सरजू और राजगोपाल जैसे सारंगी वादक, गिरिजा और संतु जैसे तबला वादक, साधना बोस व पहाड़ी सान्याल जैसे अखिल भारतीय ख्याति के कलाकार इसी विद्यालय की देन है।

भातखंडे जी का गायन और वादन दोनों पर अच्छा अधिकार था। समस्त रागों को दस थाट के अंतर्गत वर्गीकृत करके उन्होने नवीन थाट राग पद्धति का आविष्कार किया।

भातखंडे जी व्यक्ति नहीं स्वयं में एक संस्था थे क्योंकि जो कार्य उन्होंने संगीत के उत्थान के लिये अकेले किया वह विश्व भर में अविस्मरणीय रहेगा। उन्होंने अपना सारा जीवन संगीत को उच्च शिखर पर पहुॅचाने में लगा दिया। पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी का स्वर्गवास 19 नवंबर 1936 को हुआ।

Pt. Vishnu Narayan Bhatkhande was a unique personality endowed with scholarship, creativity, poetic sensibilities, capacity for patient and hard work and devotion for the Indian musical tradition and above all humility. Bhatkhande began his work with collection of hundreds of compositions from different Gharanas, analysed them and formulated the theory of Indian music underlying an easy and expressive notation system for Hindustani Music and introduced a new method of collective education in music and wrote text books and gave music the form and

shape on academic subject. In the last we must say, "Pandit Bhatkhande's contribution to Indian Music is very great".

पंडित रवि शंकर

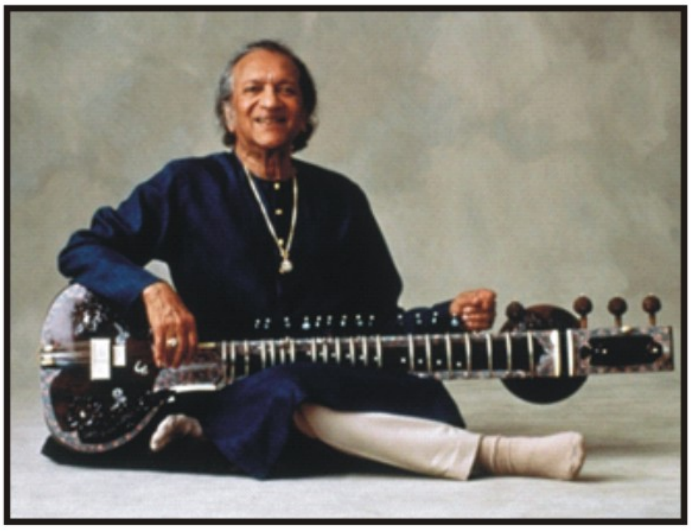

विदेशों में भारतीय संस्कृति का प्रचार करने के लिये जो स्थान महात्मा बुद्व, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि महापुरूषों को प्राप्त है, वही स्थान पंडित रविशंकर जी को विदेशों में भारतीय संगीत का प्रचार करने के लिये प्राप्त होता है । आप ऐसे रवि थे जिन्होंने शास्त्रीय संगीत की किरणों को विदेशों में पहुंचाया और
भारत का मस्तक उंचा किया । कहा जाता है कि भारतीय संगीत को विदेशों में लोकप्रिय बनाने का सबसे बड्डा श्रेय आपको ही था । आप मेहर घराने के उस्ताद अलाउद्दीन खां के प्रमुख शिष्य थे ।

जन्म तथा परिवार परिचय

अन्तर्राष्ट्रीय विख्यात कलाकार पंडित रविशंकर जी का जन्म सात अप्रेल सन् 1920 ई0 को वाराणसी में हुआ । आपके पिता का नाम डॉ0 श्याम शंकर था जो अपने समय के अच्छे विद्वान थे । उन्होंने इंग्लैंड से बेरिस्टर और जेनेवा विश्वविद्यालय से राजनीति शास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी । सुसंस्कृत वातावरण में पंडित रविशंकर जी का जन्म हुआ ।

चार भाईयों में आप सबसे छोटे और पंडित उदय शंकर जी सबसे बडे थे । आपके पिता तथा पं0 उदयशंकर जी को नृत्य में बडी रूचि थी । आपकी संगीत शिक्षा नृत्य से प्रारंभ हुई थी । कुछ वर्षो तक आप अपने बडे भाई पं0उदयशंकर जी की मंडली में नृत्य करते रहे और मण्डली के साथ विदेशों का भी भ्रमण किया । वहीं आपका परिचय उस्ताद अलाउद्दीन खां से सन 1935 में हुआ । वे कभी–कभी अवकाश के समय रविशंकर जी को गायन और सितार की शिक्षा दिया करते थे । उन्होंने पंडित जी को नृत्य को छोडकर सितार साधना की सलाह दी , किन्तु उस समय पंडित जी को ये बात जंची नहीं और नृत्य में लगे रहे । इस तरह कुछ वर्ष बीत गये किन्तु उनकी रूचि नृत्य से धीरे–धीरे कम होने लगी । सन् 1938 में आपने नृत्य छोड दिया और उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब के पास मेहर सितार सीखने के लिये जा पहुंचे ।

सन् 1938 से ही आपकी संगीत की वास्तविक शिक्षा आरंभ हुई । आपने खां साहब के चरणों में छह वर्षों तक बडी लगन, परिश्रम और श्रद्वा से संगीत की शिक्षा प्राप्त की और अलाउद्दीन खां ने भी पुत्रवत स्नेह के साथ दिल खोलकर शिक्षा दी। सोने और सुहागे का सहयोग हुआ और एक कलाकार का रत्न का जन्म हुआ ।

पंडित जी का विवाह सन् 1941 में उस्ताद अलाउद्दीन खां की पुत्री अन्नपूर्णा से हुआ जो बहुत अच्छा सुरबहार बजाती थी, जिनकी शिक्षा खुद अपने पिता खां साहब से हुई थी । वो एक कुशल संगीतज्ञ थीं ।

वादन शैली

पंडित जी के वादन में एक और सागर की गंभीरता तो दूसरी और चपलता भी दिखायी देती है । आपके स्वरों की शुद्वता लगाव और माधुर्य अद्वितीय है । स्वर के साथ लय व ताल पर पूर्ण नियंत्रण आपकी खास विशेषता थी । आपके आलाप जोड में वीना अंग की छाप स्पष्ट दिखाई पडती है । आलाप में आप जब खरज और लरज के तारों पर जब पहुंचते हैं, तब ऐसा मालूम पडता है कि अथाह सागर की अनन्त धारा प्रवाहित हो रही है । अपनी वादन शैली में आप परम्परागत नियमों का पालन करते हैं । पंडित रविशंकर पाश्चात्य संगीत ,शास्त्रीय तथा विभिन्न लोकसंगीत का भी सूक्ष्म ज्ञान रखते हैं । इन सभी का दनके वादन में समन्वय दिखाई देता है। रविशंकर जी सितार पर विभिन्न तालों जैसे त्रिताल, रूपक, पंचमसंवादी, एकताल आदि में भी शास्त्रीय वादन प्रस्तुत करते थे । इसके अलावा, 9 मात्रा, 11 मात्रा, 8 1/2मात्रा, 6मात्रा आदि में भी वादन प्रस्तुत करते थे। आपका प्रदर्शन बडा आनंददायक होता था। कण, मुर्की, जमजमा का प्रयोग से आपकी वादन शैली निखर उठती थी। झाले के विविध प्रयोग में बडा वैचित्र्य है । इस तरह आपकी वादन शैली में, कल्पना और विकास है ।

स्वभाव

पंडित जी स्वभाव के सरल, मृदुभाषी और बहुत मिलनसार थे । सभी छोटे बडों का प्रेम से स्वागत करते थे।

संगीत के क्षेत्र में योगदान और संगीत सेवा

पंडित रविशंकर जी ने भारतीय संगीत में आश्चर्यजनक उन्नति की । सन् 1949 में पंडित जी दिल्ली में ऑल इंडिया रेडियो में डायरेक्टर के पद पर नियुक्त हुये । आपने आकाशवाणी के लिये वाद्धवृन्द की रचनायें की तथा वाद्धवृन्द के प्रमुख संचालक के पद पर भी कार्य किया । आपने यूरोप के कई देशों और शहरों, इंग्लैण्ड ,जर्मनी, बेल्जियम, होलैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, नार्वे, कनाडा आदि में सितार वादन की प्रस्तुति दी । रेडियो और टेलीविजन पर संगीत संबंधी वार्तायें और कार्यक्रम दिये । पंडितू जी ने भारतीय वाद्यवृन्द के स्तर के स्वर को बहुत उंचा किया और उसे समृद्वशाली बनाया । आपने अपने वाद्धवृन्द में विदेशी वाद्धों को भी रखा, किन्तु भारतीय वाद्धो को प्रधानता दी । आपने कुछ फिल्मों में संगीत निर्देशन का काम किया जैसे काबुलीवाला, गोदान, अनुराधा आदि। आपने कई नवीन रागों की रचना की, जिसमें से रसिया का रिकार्ड बडा ही मधुर है । 1962 में किन्नर स्कूल ऑफ म्यूजिक की स्थापना की ।

पंडित रविशंकर जी ने रागों में नये प्रयोग करके नये रागों की रचना की, जैसे तिलक श्याम, नट भैरव, जन सम्मोहनी, जोगेश्वरी, कामेश्वरी, परमेश्वरी आदि । आपने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं 1.My life My music 2. राग अनुराग (बंगला में) ।

आपने दिल्ली में भारतीय कला केन्द्र की स्थापना की । सन् 1967 में भारत सरकार ने उन्हें पदमभूषण की उपाधि , सन् 1968 में केलिफोर्निया विश्वविद्धालय ने डॉक्टर ऑफ फाईन आर्ट की मानद उपाधि तथा विश्व भारती ने हॉन डाक्टरेट से सम्मानित किया । रविशंकर जी को 1990 में भारतीय संगीत की सेवा हेतु तीसरा स्पिरिट ऑफ फ्रीडम पुरूस्कार प्रदान किया गया ।

बडे दुःख के साथ कहना पड रहा है कि अंर्तराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त इस महान कलाकार का हृदय रोग के कारण 92 वर्ष की उम्र में 11 दिसम्बर 2012 को उनका देहांत हो गया । उनके निधन से संगीत जगत में बडी क्षति हुई, जिसकी भरपाई होना मुश्किल है ।

निखिल बनर्जी

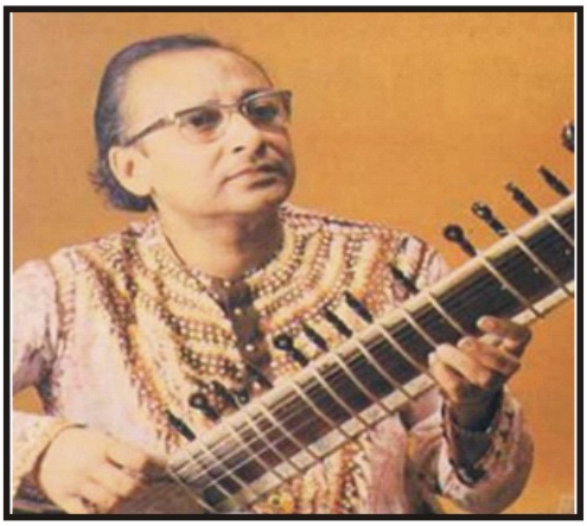

आधुनिक सितार वादकों में श्री निखिल बनर्जी का नाम अग्रणी है ।श्री निखिल बनर्जी का जन्म 14 अक्टूबर,1931 में कलकत्ता में हुआ। आपके पिता का नाम श्री जितेन्द्र नाथ बनर्जी था । ये बहुत अच्छे संगीतज्ञ और बहुत सुरीले थे। आपका व्यक्तित्व अन्य कलाकारों से भिन्न था । आपको रेडियो, अखबार में साक्षात्कार देना बिल्कुल पसंद नहीं था। वे अपनी प्रसिद्वी सितार वादन के जरिये ही चाहते थे । आप स्वभाव से जितने सरल थे उतने ही सितार वादन में क्लिष्ट काम करते थे ।

संगीत शिक्षा

आपकी प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता श्री जितेन्द्र नाथ जी से ही हुई, इसके बाद इन्होंने गौरीपुर के महाराजा से सीखा । आप महाराज के सहयोग से उस्ताद अलाउद्दीन खां के शिष्य बन गये । आपने जब कलकत्ता में अलाउद्दीन खां का सरोद सुना तभीसे निश्यच किया कि वे सितार की शिक्षा अलाउद्दीन खां से ही प्राप्त करेंगे वरना सितार बजाना छोड देंगे । आपने वीरेन्द्र राय चौधरी से ध्रुपद–धमार की गायकी सीखी । खां साहब ने भी बडी लगन व स्नेह के साथ इनको संगीत शिक्षा दी । आपने भी निष्ठा और भक्ति के साथ सितार की शिक्षा ली ।

योगदान व संगीत कार्य

आपने देश के कई अखिल भारतीय सम्मेलनों में भाग लिया और आपके सितार वादन की प्रशंसा हुई । आपने भारतीय कला मण्डल के साथ जाकर विदेशों में भी संगीत के कार्यक्रम दिये । आप अच्छे – अच्छे संगीत सम्मेलनों में आमंत्रित किये जाते रहे हैं और आप जहां भी कार्यक्रम देने हेतु गये वहां भारतीय की प्रतिष्ठता ही बढी है । आपका अधिकतर समय संगीत साधना में ही बीतता था ।

वादन शैली

निखिल बनर्जी की अपने आप में एक विशिष्ठ वादन शैली है । आपके वादन शैली में कभी–कभी सरोद की छाप भी पडती है । क्योंकि आप अलाउद्दीन खां और उनके पुत्र अली अकबर खां के शिष्य रहे हैं । आपके वादन में विलंबित लय में स्वर का आलाप, जोड, तान तोडे आदि तैयारी बडी अद्वितीय है । आपके वादन की यह विशेषता थी की आलाप से लेकर झाले तक एक समानता बनी रहती थी । राग में स्वर का लगाना , मींड का काम, तीनों सप्तकों का बराबर प्रयोग करते हुये आलाप चारी करते थे ।तानों के विभिन्न प्रकार तथा मिजरा में भी विभिन्न बोलों का प्रयोग करते थे । विभिन्न लयकारी व तिहाईयों का प्रयोग करते थे। तालों में झपताल, धमार, आडा चौताल, 9मात्रा, 11मात्रा आदि तालों में बजाने की क्षमता रखते थे । आपके द्वारा बजाये गये रागों के रिकार्डस व कैसेट्स आज भी उपलब्ध है, जो रेडियो पर भी कभी–कभी सुनाई देते हैं ।

भारतीय संगीत जगत के इस महान कलाकार का निधन 27 जनवरी 1986 को हो गया ।

इनायत खां

सितार के विकास और प्रचार में स्व0 उस्ताद इनायत खां का स्थान अद्वितीय है । सितार वादन उनके वंश में परम्परा से चली आ रही है । उनके पिता स्व0इमदाद खां एक अच्छे सितार वादक थे और पुत्र विलायत खां आधुनिक समय के श्रेष्ठ सितार वादकों में गिने जाते हैं । कलकत्ता में सितार और सुरबहार का प्रचार इनायत खां ने इतना अधिक कर दिया था कि घर–घर में सितार और सुरबहार बजाया जाने लगा । उन्होंने अनेक योग्य शिष्य तैयार किये । उल्लेखनीय नाम है–उन्हीं के पुत्र उस्ताद विलायत खां ,पं0 ध्रुव तारा जोशी और श्रीमती रेणुका साह।

इनायत खां पुरानी परम्परा के होते हुए भी रंजकता वृद्वि के लिये प्रयोगवादी दृष्टिकोण अपनाते रहे । बजाते – बजाते विवादी स्वरों का प्रयोग इतनी सुंदरतात से कर जाते थे कि श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो जाते थे । काफी में तीव्र मध्यम, भूपाली में शुद्व मध्यम और यमन में कोमल रिषभ इतनी सुन्दरता से प्रयोग करते थे कि उनके वादन में चार चांद लग जाते थे । एक बार किसी जिज्ञासु ने उनसे पूछा कि जब काफी में तीव्र मध्यम नहीं लगता है तो आप क्यों लगाते हैं उन्होंने उत्तर दिया कि जस स्वर के प्रयोग ने मुझे सात सोने के मैडल दिये हैं उसे मैं क्यों न प्रयोग करूं । इसे सुनकर प्रश्नकर्ता निरूत्तर हो गये ।

स्व0 इनायत खां का जन्म 16 जून 1895 को इटावा में हुआ । उनको सितार की शिक्षा अपने पिता स्व0 इमदाद खां से प्राप्त हुई । कुछ दिनों तक अपने भाई वहीद खां के साथ इन्दौर दरबार में रहने के बाद कलकत्ता चले गये , जहां उनको बडा सम्मान मिला ।गौरीपुर रियासत के बृजेन्द कृष्णराय चौधरी से आपका सम्पर्क हुआ। उन्होंने इनायत खां को गौरीपुर रियासत में नियुक्त कर दिया, जहां संगीत के अन्य अनन्यतम साधक थे । उल्लेखनीय नाम है सरोद वादक अमीर खां, गायक विपिन चन्द्र चटर्जी , इसराज वादक शीतल प्रसाद मुखर्जी आदि। सन 1924 से वे गौरीपुर में स्थायी रूप से रहने लगे । वहां सन 1924 में प्रसिद्व सितार वादक बिलायत खां का जन्म हुआ । वहां रहते हुये भीआप अनेक संगीत सम्मेलनों में भाग लेने जाते । आपके कई संताने हुई , किन्तु उनमें से केवल दो सन्ताने एक पुत्र और एक पुत्री जीवित रहीं । जिस समय पुत्र विलयत खां केवल 14 वर्ष के थे उस समय इनायत खां की मृत्यू हो गई । अंतिम बार वे इलाहबाद संगीत सम्मेलन में भाग लेने आये थे । वहां जाकर ज्वर से इतने पीडित हो गये कि अपना कार्यक्रम भी नहीं दे सके । शीघ्र ही अपने घर को लौट पडे । रास्ते में ही अचेत हो गये, किसी प्रकार कलकत्ता पहुंचे और दूसरे दिन 11 नवम्बर 1938 को परलोक सिधार गये ।

मसीत खां

जयपुर के उस्ताद मसीत खां अपने जमाने के निष्णात तंत्रीवादक हुए हैं । इनके पिता फिरोज खां भी माने हुए संगीतकार थे । मसीत खां ने मूल त्रितंत्री (सहतार या सितार) में चार तार और जोड कर उसे सप्ततंत्री वाद्य का नया रूप दिया । पर्दों की संख्या 23 तक बढाकर सितार को अचल ठाठ का बना दिया। उन्होंने एक नई वादन शैली का आविष्कार किया जो जयपुर घराने के प्रचलित मसीतखानी बाज को, सेनिया बाज या पश्चिमी बाज का प्रतिनिधित्व करती है । आपने ध्रुपद–धमार के आधार पर बिलंबित गत का एक नया स्वरूप इजाद किया जिसे वर्तमान काल में भमसीतखानी गत कहते हैं। इसे दिल्ली या पश्चिमी बाज भी कहा जाता है ।

मसीत खां ने दायें हाथ से बनजे वाले बोलों पर जोर दिया। यद्धपि बायें हाथ के बोलों को अधिक प्रमुखता दी। बायें हाथ से अब ख्याल की मुरकियां और कभी दो स्वरों की मीड ली जाने लगी। मसीत खां ने न

केवल सितार को आधुनिक रूप दिया वरन अपनी गतों का निर्माण किया । मसीत खां के समय से पूर्व तंत्री वाद्यों मे वीणा और गायन शैलियों में ध्रुपद की प्रधान था । सितार के जन्म के समय ख्याल , कव्वाली और तबले का जन्म हो चुका था । वीणा का आलाप अंग , सुरबहार तथा गायन अंग सितार पर प्रयुक्त होने लगा था और तभी मसीत खां ने सितार वादन शैली मसीतखानी गत का आविष्कार किया । गत की बंदिश यद्धपि मूल रूप से गान से ही प्रभावित थी किन्तु मिजराब के विशेष प्रयोगों के कारण गत की रचना गायन से भिन्न रूप मे होने लगी । इन गतों में मसीत खां ने विलंबिल ख्याल के अनुकरण से ही सितार में बजने योग्य मसीतखानी गतों की रचना की ।

उस्ताद मसीत खां के सुपुत्र बहादुर खां भी एक अच्छे संगीतकार हुए और बहादुर खां के पौत्र रहीम खां सेनिया घराने के कीर्तिमान वादक रहे । आपके समय तक सितार को एक साधारण बाजा समझाा जाता था, आपने ही इसे परिष्कृत किया ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्र. 1 विलंबित गत (मसीतखानी) के आविष्कारक कौन हैं।

अ) पं. रविशंकर ब) निखिल बनर्जी स) मसीत खां

प्र. 2 निखिल बनर्जी का जन्म हुआ

अ) कोलकता ब) वाराणसी स) मुम्बई

प्र. 3 भारतीय संगीत को विदेशों में लोकप्रिय बनाया

अ) पं. रविशंकर ब) मसीत खां स) निखिल बनर्जी

प्र. पं. विष्णु नारायण भातखण्डे का जीवन परिचय लिखते हुये संगीत के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियां तथा संगीत सेवा आदि का विस्तृत विवरण दीजिये

प्र. 2 निम्नलिखत सितार वादकों का जीवन परिचय, संगीत जगत में योगदान एवं वादन शैली आदि का विस्तृत वर्णन कीजिये ।

1. पं. रविशंकर 2. निखिल बनर्जी 3. मसीत खां 4. इनायत खां

अध्याय 4

ताल

जिस आधार पर गायन, वादन व नृत्य होता है, उसकी क्रिया नापने को ''ताल'' कहते है। ताल संगीत में गायन, वादन और नृत्य के समय को नापने का पैमाना है। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण, भवन के लिये नींव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत में ताल की आवयकता होती है। गायन– वादन व नृत्य की शोभा ताल से ही है यथा :

ताल स्तल प्रतिष्ठा यामिति घायोर्धजि स्मृति :।
गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं यत स्ताले, प्रतिष्ठतम ।।

ताल शब्द 'तल' धातु (प्रतिष्ठा, स्थिरता) से बना है। संगीत में ताल का विशेष स्थान है, क्योकि ताल ही, गीत, वाद्य और नृत्य को आधार प्रदान करता है।

ताल इस बात की एक कसौटी है कि गाना सही है या गलत/ ताल के बिना संगीत की कल्पना भी नही की जा सकती। संगीत में समय का माप मात्रा द्वारा किया जाता है, भिन्न भिन्न मात्रानुसार भिन्न भिन्न तालों की रचना की गई है।

विभिन्न मात्राओं के विविध समूहों को 'ताल' कहते है। ताल को मापने का माध्यम 'धन वाद्य' है, जैसे– तबला, परवाबज, मृदंग, ढोलक/ ताल अनेक मात्राओं के होते है, विभाग द्वारा ताल का स्वरूप बनता है और भिन्न– भिन्न तालों की रचना होती है। भारतीय शास्त्रीय, उपशास्त्रीय तथा सुगमसंगीत की निश्चित तालें है।

ताल त्रिताल अथवा तीनताल

शास्त्रीय परिचय :

ताल त्रिताल में 16 मात्रायें होती है। चार– चार मात्राओं के चार खण्ड होते है। पहली, पांचवी और तेरहवी मात्रा पर ताली होती है। नवीं मात्रा पर खाली होती है।

16 मात्रा की यह ताल बिलंबित, मध्य एवं द्रुत तीनों लयों में बजायी जाती है। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्रचलित ताल है। इस ताल का प्रयोग वाद्य संगीत में मसीतखानी व रजाखानी गत में ताल त्रिताल का प्रयोग किया जाता तथा ख्याल गायन में। संगीत के प्रारंभिक विद्यार्थियों को सर्व प्रथम इसी ताल का ज्ञान कराया जाता है। इसे ''बादशाह ताल'' भी कहते है।

ताल त्रिताल का ठेका

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धा	धीं	धीं	धा	धा	धीं	धीं	धा	धा	तीं	तीं	ता	ता	धीं	धीं	धा
चिन्ह	X				2				0				3			
दुगुन	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधीं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
	X				2				0				3			

ताल दादरा

इस ताल में छह मात्रायें होती है।

इस ताल में दो विभाग, होते है। (तीन– तीन मात्राओं के)

पहली मात्रा पर ताली होती है। चौथी मात्रा पर खाली होती है।

6 मात्राओं की यह ताल तबला, ढोलक तथा नाल पर बजाई जाती है। इस ताल को मुख्यतः सुगम–संगीत तथा ''दादरा'' नाम की उपशास्त्रीय शायन शैली के साथ बजाया जाता है।

ठेका

मात्रा	1	2	3	4	5	6
बोल	धा	धिं	ना	धा	तिं	ना
दुगुन	धाधिं	नाधा	तिंना	धाधिं	नाधा	तिंना
	X			0		

ताल कहरवा

ताल परिचय

ताल कहरवा में 8 मात्रा होती है।

इसके 2 विभाग होते है। (चार– चार मात्रा के)

पहली मात्रा पर ताली होती है। पांचवी मात्रा पर खाली होती है।

8 मात्रा की यह ताल अत्यन्त सरल, और लोकप्रिय ताल है। इसे सुगम, फिल्मी व लोक संगीत में बहुतायत में बजाया जाता है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8
बोल	धा	गे	न	ति	न	क	धि	न
चिन्ह	X				0			
दुगुन	धागे	नति	नक	धिन	धागे	नति	नक	धिन
चिन्ह	X				0			

ताल एकताल

ताल परिचय

यह ताल 12 मात्रा की है।

इसमें 6 विभाग होते है। (प्रत्येक विभाग में 2–2 मात्रायें)

इसमें ताली 1, 5, 9 तथा 11 वी मात्रा पर होती है।

इसमें खाली 3 और 7वी मात्रा पर होती है।

यह ताल तबले पर बजाई जाने वाली है तथा बिलंबित, मध्य और द्रुत तीनों लयों में बजाई जाने वाली ताल है।

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
	X		0		2		0		3		4	
दुगुन	धिंधिं	धागेतिरकिट	तू ना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना
	X		0		2		0		3		4	

ताल चारताल (चौताल)

ताल परिचय

इस ताल में 12 मात्रा होती है।

इसमें 6 विभाग होते है। (प्रत्येक में 2–2 मात्रा होती है)

ताली 1, 5, 9 तथा 11 वी मात्रा पर लगती है।

इसमें खाली 3 और 7वी मात्रा पर होती है।

यह ताल ध्रुपद गायन के साथ बजाई जाती है यह ताल खुले बोलो की तथा परवावज वाद्य पर बजाई जाने वाली ताल है। आजकल इसे तबले पर भी बजाया जाता है।

बोल	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
चिन्ह	X		0		2		0		3		4	
दुगुन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिटकत	गदिगन	धाधा	दिंता	किटधा	दिंता	तिटकत	गदिगन
चिन्ह	X		0		2		0		3		4	

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ताल को परिभाषित कीजिये।
2. निम्नलिखित तालों का परिचय व ठेका लिखे –
   (1) त्रिताल (2) दादरा (3) कहरवा (4) एकताल
3. समान मात्रा वाली दो तालों का नाम बताईये तथा उनमें क्या समानता– विभिन्नता है। विस्तार से समझाईये।
4. परवावज वाद्य पर बजाई जाने वाली ताल कौनसी है और किस गायन, शैली के प्रयोग में आती है। बताये।

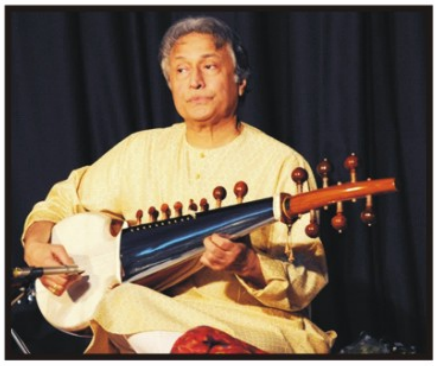

उ. अमजद अली खां
सरोद वादक

कृष्ण मोहन भट्ट
सितार वादक

अध्याय 5

वाद्य यंत्र परिचय

आदिकाल से भारत में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग होता रहा है और वाद्यों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय संगीत के विभिन्न वाद्यों का प्रमाण, रामायण, उपनिषद, आदि ग्रंथों में मिलता है। कालान्तर में गायन विद्या को समृद्ध करने के लिए विभिन्न प्रकार के वाद्यों काा निर्माण हुआ तथा इन्हें उपयोग में लाया गया। तत्पश्चात् भारतीय सभ्यता के आधार पर विधिवत् चिन्तन मनन पद्धति से मनीषियों द्वारा इन वाद्यों का चार वर्गो में वर्गीकरण किया गया।

शारंग देव द्वारा लिखित ''संगीत रत्नाकर'' में वाद्यों को मुख्य चार वर्गो में इस प्रकार विभाजित किया गया– तत, सुषिर, अवनद्ध और घन।

वाद्यों के प्रमुख चार वर्ग –

1. तत वाद्य–

जिन वाद्यों में तांत अथवा तार द्वारा स्वर उत्पन्न होते है, या तार को छेडने से स्वर की उत्पत्ति होती है, उसे ''तत वाद्य'' कहते है, जैसे सितार, तानपुरा, सांरगी वायलिन इत्यादि। ''वीणा'' तत वाद्यों की जननी मानी जाती है। ये भी दो प्रकार के होते है 1. तत 2. वितत।

2 सुषिर वाद्य –

जो वाद्य फूंक या हवा के माध्यम से वजते है वो वाद्य 'सुषिर' वाद्य की श्रेणी मे आते है। जैसे– बांसुरी हारमोनियम, शहनाई, क्लारनेट, शंख, तुरही आदि।

3 अवनद्व वाद्य–

वाद्यो का तीसरा प्रकार जिसे अवनद्व वाद्य कहते है मुख्यतः जिन्हें ताल वाद्य कहा जाता है। ये चमढ़े से मढ़े हुये होते है। इन वाद्यों के मढ़े हुये चमढ़े पर आघात करने से आवाज उत्पन्न होती है। इन वाद्यों के नाम इस प्रकार से हैः–तबला, पखावज, ढोलक, नगाड़ा, खंजरी, डमरू इत्यादि।

4 घन वाद्य–

वाधों का अन्तिम प्रकार ''घन वाद्य'' कहलाता है। इस श्रेणी के वाद्यों में किसी घातु या लकड़ी के प्रहार से स्वरों की उत्पत्ति होती है। घन वाद्य की श्रेणी में मंजीरा, झांझ जलतरंग, कांचतरंग इत्यादि आते है।

सितार

संक्षिप्त इतिहास

'सितार' तत या तंत्र वाद्य की श्रेणी में आता है। वर्तमान समय के तत वाद्यों में सितार सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य हैं। इस वाद्य के आविष्कार के विषय में विद्वानों के अनेक मत है। कुछ विद्वानों के मतानुसार सितार का आविष्कार तेरहवी, चौदहवी शताब्दी (1296–1316 ई.) में अमीर खुसरों ने, जो कि भारत के प्राचीन शासक अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में एक सुप्रसिद्व कवि और संगीतज्ञ हुये थे उन्होने एक वीणा के आधार पर सितार का आविष्कार किया। उस समय सितार पर तीन ही तार रखे गये थे तथा इसका नाम सहतार रख गया था। फारसी मे सह का अर्थ है। तीन संभवतः उसी आधार पर अमीर खुसरो ने वीणा का नामकरण सहतार कर दिया। जिसे आगे जाकर सितार के नाम से पुकारा गया और तीन तार की जगह सात तार लगाये गये।

दूसरे मतानुसार सितार पूर्णतया अभारतीय वाद्य है, और यह वाद्य परशिया से भारत में आया, एक तारा, दो तारा, सहतारा, चहतारा, पचतारा क्रमशः 1, 2, 3, 4 या 5 तार वाले वाद्य आज भी परशिया के लोकसंगीत में व्यवहत है। 14वीं शताब्दी में इस वाद्य के प्रचार में अमीर खुसरों का विशेष हाथ रहा है। इसके बाद 1719 में मुगल बादशाह मोहम्मद शाह के समय में सितार में 3 तारों की वृद्वि हुई। सितार छह तार का हो गया और कुछ समय तक इसी प्रकार चलता रहा। फिर कुछ वर्षो बाद इसमें एक तार बढ़ाकर सात तार कर दिये गये और परदों की संख्या 14 से बढ़ाकर उन्नीस और इक्कीस कर दी गई।

सितार वाद्य का सचित्र वर्णन

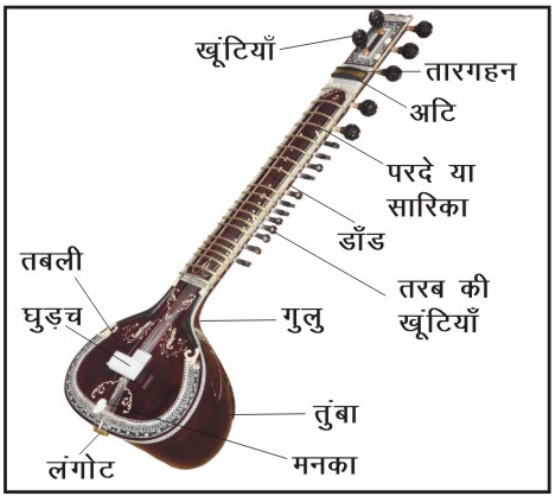

1. **तूंबा** : यह सितार के सबसे नीचे का भाग होता है। जो डांड के नीचे रहता है। यह आकार में गोल होता है और विशेष प्रकार की लौकी या कद्दू का बना होता है। यह अन्दर से खाली व हल्का होता है। जब सितार के तार बजते है तो इसी तुंबे के कारण गूंज या झंकार उत्पन्न होती है।
2. **तबली** : तूंबे के ऊपर का भाग जो कि चपटा होता है और लकड़ी का बना होता है, तथा जिस पर धुडच स्थापित करते है। उसे तबली कहते है।
3. **धुड़च** (Bridge) : इसे ब्रिज या घोडी भी कहते है। यह हाथी दांत, लकड़ी, सींग की बनी एक छोटी चौकी के आकार की पटट्री होती है। जो तबली के उपर रखी जाती है। इसी के ऊपर से होकर के तार खुंटियॉ तक जाते है।
4. **लंगोट** : तूंबे की पैंदी में लगी कील को ''लंगोट'' कहते है। इस कील से तार बांधे जाते है। इसे तारदान भी कहते है। यहीं से तार शुरू होकर खुटियों तक जाते है।
5. **डांड** : यह सितार में लकड़ी की पोली व लम्बी डंडी होती है। जो ऊपर एक तख्ती से ढकी होती है। उसे डांड कहते है, इसी भाग में सितार के पर्दे बांधे जाते है।

6. **गुलू** : डांड ओर तूंबे को जोडने वाला स्थान गुलू कहलाता है।
7. **जवारी** : धुड़च या ब्रिज की उपरी सतह को जवारी कहते है। इसी के उपर से होकर तार खुंटियों तक जाते है। वाद्य की झंकार युक्त मधुर ध्वनि इसी से नियंत्रित की जाती है।
8. **परदे** : यह सितार की डांड पर तांत से बंधे हुये पीतल, तांबा या जर्मन सिल्वर की सलाईयों की तरह अर्ध चन्द्राकार टुकडे होते है। उन्हे पर्दे कहते है। इनका दूसरा नाम सारिका अथवा सुन्दरी भी है। सितार पर इन परदों की संख्या 16 से 24 तक होती है। चल ठाठ की सितार में 22 से 24, और 16 परदे वाले सितार को अचल ठाठ का सितार कहते है।
9. **अटि** : खूंटियों की ओर डांड पर पट्टियां होती है। पहली पट्टी जिसके ऊपर से होकर तार जाते है। उसे अटि कहते है।
10. **तारगहन** : अटि से लगभग एक इन्च की दूरी पर हाथी दांत की आड़ी पट्टी होती है। इसके मध्य कई छिद्र होते है। इसे ही तार गहन कहते है।
11. **खुंटियाँ** : डांड में ऊपर की ओर लकडी की गोलाकर कुंजिया होती है। इनके द्वारा ही तार को कसना और ढीला किया जाता है। इन्हें ही खुंटिया कहते है। इनकी संख्या तारों के अनुसार होती है।
12. **तार** : सितार में लंगोट और खुंटियों के मध्य सात तार खिचें होते है। ये सात तार महत्वपूर्ण होते है। इनमें पहला, चौथा छटा और सातवां तार लोहे का और दूसरा, तीसरा व पांचवा तार पीतल अथवा तांबे का होता है।
13. **मनका** : बाज का तार जो कि प्रथम तार होता है और जो धुडच और लंगोट के मध्य एक दांत या कांच का मोती– जिसके छेद में से तार को पिरोया जाता है। उसे मनका कहते है। मनका गोल, चपटा या बतख की शक्ल का होता है। तारों को मिलाते समय सूक्ष्मतर अन्तर को इस मनके की सहायता से ठीक किया जाता है।
14. **तरबें** : सितार के परदों की संख्या के अनुसार तरब के तार भी लगाये जाते हैं। मुख्य सात तार के अलावा परदे के नीचे कुछ और अन्य पतले तार होते है। जिनकी खुंटियां चिकारी की खुंटियों के पास लगी रहती है। इन्हें तरब कहते है। इनकों रागों के लगने वाले स्वरों के अनुसार मिलाया जाता है। इनका मुख्य कार्य परदो के मुख्य स्वरों की प्रतिध्वनि उत्पन्न करना है।
15. **मिजराब** : यह पक्के लोहे के तार की अंगुठीनुमा होती है। दाहिनी हाथ की तर्जनी अंगुली मे इसको पहनकर सितार के तार को आधात करते है। तब सितार बजता है।

सितार के सात तार

1. **पहला तार**– यह लोहे (स्टील) का होता है और इसे बाज का तार या बोल तार कहते है। यह तार मन्द्र सप्तक के मध्यम स्वर में मिलाया जाता है।
2. **दूसरा और तीसरा तार**– ये दोनों तार जोड के तार कहलाते है। इन्हें मन्द्र सप्तक के षडज स्वर में मिलाते है। ये दोनो तार पीतल के होते है।
3. **चौथा तार**–ये लोहे (स्टील) का होता है। इसे पंचम का तार कहते हैं।इसे मंद्र प में मिलाते हैं ।
4. **पॉचवा तार**– यह पीतल का होता है और जोडी के तारो से लगभग दुगुना मोटा होता है। इसे अति

मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाते है। इसे लर्ज का तार भी कहते है।

5. **छटवां तार**– ये स्टील का होता है और मोटाई में चौथी तार से कुछ कम होता है। इसे मध्य सप्तक के षडज में मिलाते है। इसे चिकारी का तार भी कहते है।
6. **सातवां तार**– ये तार भी स्टील का होता है। ये तार सितार के अन्य तारों से पतला होता है और इसे तार षडज सा अथवा मन्द्र सप्तक के पंचम से मिलाते है। इसे चिकारी का तार या पपैया का तार कहते है।

अभ्यास प्रश्न

प्र. 1 सितार के इतिहास पर प्रकाश डालिये।

प्र. 2 सितार का चित्र बनाकर उसके अंगो का वर्णन करें।

प्र. 3 सितार में मुख्य तार कितने होते हैं एवं किन–किन स्वरों में मिलाये जाते हैं।

प्र. 4 सितार में परदों की संख्या कितनी होती है।

प्र. 5 वाद्य यंत्रों को कितने भागों के बांटा है वर्णन करें।

प्र. 6 रिक्त स्थान भरें।

1. सितार..... वाद्य की श्रेणी में आता है।
2. बिलंबित लय में ..... गत बजाई जाती है।
3. रज़ाखानी गत ..... में बजाई जाती है।
4. गायन तथा वादन में संगत का ताल वाद्य ..... है।
5. सितार बजानें हेतु अंगुठीनुमा ..... का प्रयोग होता है।

उ. विलायत खां
इटावा घराना

साहित्य संगीत कला विहीनः।
साक्षात् पशु–पुच्छ विषाण हीनः।।
साहित्य संगीत और कला से विहीन व्यक्ति बिना सींग और पूंछ के पशु समान है।

अध्याय 6

प.विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति

स्वरलिपिः संगीत में किसी गाने की कविता को अथवा साजों पर बजाये जाने वाली गत को स्वर और ताल के साथ जब लिखा जाता है, तब उसे स्वरलिपि (Notation) कहते है।

प्राचीन काल से भारत में संगीत की शिक्षा गुरू–शिष्य परम्परा के अनुसार होती आई है जो आज भी दृष्टि गोचर होती है। उसे समय संगीतकला विशेषतया क्रियात्मक (Practical) रूप में थी अर्थात गुरू मुख से सुनकर ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थें। उस समय लेखन–प्रणाली व मुद्रण संबंधी सुविधायें उस समय आजकल जैसी न थी।

प्राचीन समय के उस्ताद अपनी काल को अपने पुत्र अथवा विश्वसनीय शिष्यों को भी लिखकर नहीं बताते थे। बल्कि सामने बिठाकर ही सिखाना पसंद करते थें। विभिन्न रागों में सहस्त्रों गीतों को वर्षो तक कंठस्थ रखना एक कटिन साध्य कार्य था। पारम्परिक रचनाओं में भूल होने पर उनका शुद्विकरण गुरू के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता था। अतः इस आवश्यकता के देखते हुये पंडित विष्णु ना. भातखण्डे और प. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने स्वरलिपि पद्वति का आविष्कार किया ।

इन दोनों महान विभूतियों ने स्वरलिपि के प्रचार के लिये बहुत प्रयत्न किये। स्व. भातखण्डे जी ने बडे कौशल से अनेक उत्मोत्तम गीतों की स्वरलिपि बनाकर उन चीजों को उदारता पूर्वक प्रकाशित करा दिया, जिससे सर्वसाधारण उनसे खूब लाभ उठा सकें।

20वीं शताब्दी के आरंभ में संगीत जगत के ये 2 महान कलाकारों ने अपने–अपने ढंग से स्वरलिपि की रचना की। पं.वि. नारायण भातखण्डे पद्वति सरल होने के कारण अधिक प्रचलित है।

भातखण्डे स्वरलिपि प्रणाली के निम्नालिखित बिंदु :

1) जिन स्वरों के उपर नीचे कोई चिन्ह नहीं होता । ये मध्य सप्तक के शुद्व स्वर समझे जाते है। जैसे– सारे ग म प
2) जिन स्वरों के नीचे आडी रेखा खींची गई हो, उन्हें कोमल स्वर कहते है। जैसे–रेगघ नि
3) तीव्र मध्यम के पहचान के लिये, म के ऊपर एक खडी लकीर खींची होती है। जैसे–मं
4) स्वर के नीचे बिंदु लगाई गई हो वे स्वर मन्द्र सप्तक के होते है। जैसे– नि़ ध़ प़ म़।

5) स्वर के ऊपर बिंदु लगाई गई हो तो वे ''तार सप्तक'' के स्वर कहलाते है। जैसे– सां रें गं मं।

6) गाने के जिस शब्द से आये अवग्रह चिन्ह ऽऽऽ हो उस शब्द को उतनी की मात्रा बढाकर गाते है। जैसे–श्याऽऽऽ म

7) जिस स्वर के आगे आडी लकीर हो (-) हो उस स्वर को उतनी मात्रा बढाकर गाते है। जैसे रे–ग–म–।

8) कई स्वरों को एक मात्रा में गाने बजाने के लिये इस चिन्ह का प्रयोग होता है। जैसे प म ग अथवा रे ग म प।

9) स्वर के ऊपर अर्धचन्द्राकार चिन्ह को मींड कहते है। जैसे म प ध निं अर्थात यहाॅ पर म से निषाद तक मीडं ली जायेगी।

10) किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर दिया हो, तो उसे कण स्वर समझना चाहिये जैसे प नि ध प।

11) जो स्वर कोष्ठक में बंद हो उसे मुर्की से गाना होता है। जैसे (म) अर्थात प मगम

ताल पक्ष को समझने के चिन्ह

ताल में सम दिखाने का चिन्ह (निशान) (x) होता है।

खाली को दर्शाने के लिये चिन्ह (o) होता है।

सम को पहली ताली मानकर अन्य तालियों के लिये क्रमशः 2, 3, 4 आदि संख्यायें लगाये जाते है। अन्य विभाग के लिये। जैसे–

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	ति	ता	ता	धिं	धिं	धा
X				2				0				3			

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्वरलिपि क्या है। इसका परिचय देते हुये इसके आविष्कारक कौन है, नाम बताइये।
2. हमारे भारतीय संगीत में कौन–कौन सी स्वरलिपि पद्वति है।
3. पंडित भातखण्डे जी द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्वति का वर्णन करें।
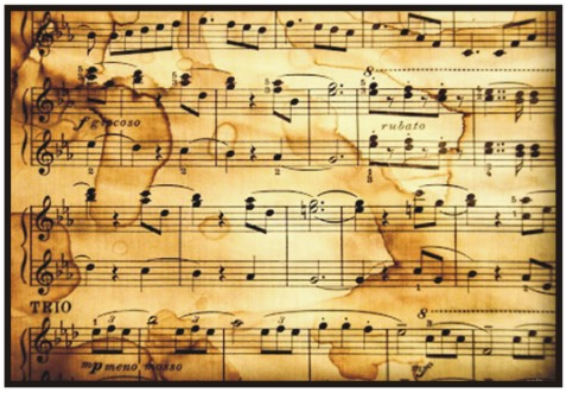
पाश्चात्य स्टाफ स्वरलिपि पद्धति

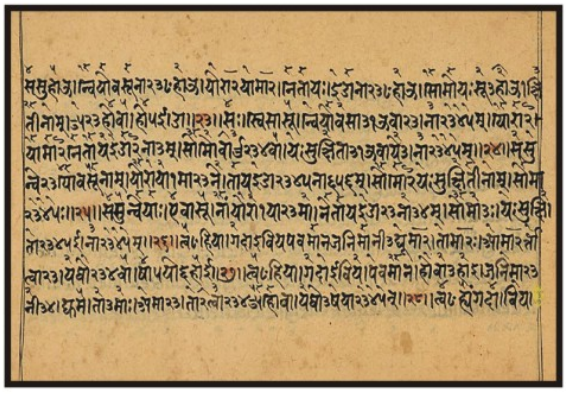

वैदिक कालीन स्वरलिपि पद्धति

ताल वाद्य संगीत

तबला / पखावज

तालेन राजति गीत ताल वादित्रं संभवः।
गरीयस्तेन वादित्तं तुच्चर्तुविद्याभिष्यते।।

स्वर गति की शोभा ताल से होती है और ताल वाद्य यंत्रों से ही संभव है अतः गीत, वाद्य, नृत्य की सिद्धि हेतु ताल वाद्ययंत्रों का महत्व है।

अध्याय 1

परिभाषाएँ

कायदा

तबला या पखावज पर बजने वाले वर्ण–समूह तालबद्ध होकर अभ्यास में आने लगे और उन्हें शास्त्रीय रीति से तबला या पखावज पर बजाया जा सके तथा ऊँगलियाँ सधी हुई और तैयार पड़े, बोल स्पष्ट निकले तो उसे कायदा कहते हैं। अर्थात जब कुछ ऐसे बोलो को, जिनका ताल के विभागों के अनुसार खाली–भरी दिखाते हुए प्रस्तार भी किया जा सके अर्थात बजाया जा सके उसे कायदा कहते हैं। कायदे के बोल बजाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि जो बोल काम में लिये जा रहे हैं वे ऐसे हो के उनकी उलट पलट कर खूब विस्तार किया जा सके।

मुखड़ा या मोहरा

किसी टुकड़े को सम से खाली या खाली से सम तक बजाने को ''मुखड़ा'' कहते हैं। ठेके के बीच में सम पर आकर मिलने के लिये जो बोल बजाये जाते हैं उन्हें ''मुखड़ा'' कहते हैं। ये प्रायः एक आवृत्ति से कम के होते हैं।

तबला–वादन में ठेका प्रारम्भ करने से पूर्व जिस रचना को बजाकर सम लाया जाये, उसे 'मोहरा' कहते हैं। यदि इन्हीं बोलों को ठेका प्रारम्भ करने के बाद बीच से बजाकर सम पकड़ेंगे तो अब यही रचना 'मुखड़ा' कहलाएगी। इस प्रकार मोहरा और मुखड़ा एक ही चीज़ हैं, जो स्थान–भेद से दो नाम के हो जाते हैं। उदाहरण के लिये यदि 'धिरधिर किटतक, धातीर, किटतक। तक्क्ड़ान् धातक् क्ड़ान्धा तक्क्ड़ान्' को बिल्कुल प्रारम्भ में बजाकर ठेका बजाना शुरू करेंगे तो इसका नाम 'मोहरा' होगा। किन्तु जब तीन ताल के ठेके की आठ मात्राऐं बजाकर अगली आठ मात्रा में इन बोलों को बजा देंगे तो अब यही रचना 'मोहरा' न कहलाकर 'मुखड़ा' कहलाएगी।

तिहाई

जब किसी टुकड़े को तीन बार बजाकर उसकी समाप्ति हो तो उसे ''तिहाई'' कहते हैं। कई लोग इसे 'मोहरा' भी कहते हैं।

परन

ताल की किसी भी मात्रा से प्रारम्भ होकर जो बोल सम पर समाप्त होता है उसको अथवा ग्रह से सम तक के बाज को 'परन' कहते हैं। 'परन' यह पखावज से संबंधित होता है। अतः इसमें खुले और जोरदार बोलों के आधार पर तबले के वर्णों से निर्मित रचना बनायी जाती है। परन कम से कम दो या तीन आवृत्ति की होती है और तिये सहित होती है।

पेशकार

तबला या पखावज पर बजने वाले सुन्दर–सुन्दर बोलों को विशेष प्रकार से बजाकर श्रोताओं के सामने पेश

करने को ''पेशकार'' कहते हैं। पेशकार के बोलों की विशेषता यह होती है के वो ताल और लय के लहरे पर हिलते हुए एवं आड़दार धक्का देते हुए चलते हैं।

लय और लयकारी

दो क्रियाओं या ताल में दो मात्राओं के बीच रहने वाली विश्रान्ति या ठहराव या पहली क्रिया का विस्तार ''लय'' कहलाता है। यह विश्रान्ति कम या अधिक होने पर लय की गति भी धीमी या तेज हो जाती है। लय मुख्य रूप से तीन प्रकार की मानी जाती है।

(1) विलंबित लय (2) मध्य लय (3) द्रुत लय

विलंबित लय

मध्य लय की ठीक दुगुनी विश्रान्तिवाली लय विलंबित कहलाती है। उदाहरण के लिए यदि मध्यलय में दो क्रियाओं का काल 1 गिनती का है तो विलंबित लय में यह 1–2 का हो जाएगा।

मध्य लय

मध्य लय में विलंबित लय की ठीक आधी विश्रान्ति रहती है।

द्रुत लय

इस लय में मध्य लय की भी ठीक आधी विश्रान्ति रह जाती है। इस प्रकार मध्य लय की ठीक आधी लय विलंबित और मध्य की ठीक दुगुनी लय द्रुत होती है। परन्तु आजकल किसी भी धीमी लय को विलंबित और प्रत्येक लय को द्रुत कह दिया जाता है। इस प्रकार लयों के नाम तो प्राचीन हैं, परन्तु अब उनमें पारस्परिक संबंध नहीं रहा।

यही नहीं, बल्कि आजकल लय की धारण और प्रयोग–विधि, दोनों बदल गए हैं। आजकल जब हमसे किसी ताल की दुगुन करने को कहा जाता है तो हम दो क्रियाओं के बीच में जो विश्रान्ति है, उसे आधा कर देते हैं और ताल की एक आवृत्ति में ठेके को दो बार बजा देते हैं। इसे और अधिक स्पष्ट इस प्रकार समझा जा सकते हैं कि जब हमसे पूछा जाता है कि एक मील लम्बी सड़क का दुगुना कितना ?या एक रूपये के दुगुने कितने रूपये ? तो हम झट उन्हें दूना करके बता देते हैं। परन्तु जब किसी ताल की दुगुन या चौगुन पूछी जाती है तो एक आवृत्ति में ही पूरे ठेके को दो बार या चार बार बजा दते हैं या बोल देते हैं। अब देखा जाए तो यहाँ विश्रान्ति सचमुच दुगुनी या चौगुनी न होकर आधी या चौथाई रह जाती हे। इसीलिये हमने ऊपर कहा है कि आजकल लय की धारण और प्रयोग–विधि दोनों बदल गए हैं।

अतिविलंबित लय

जब लय बहुत कम कर दी जाती है, तो ''अतिविलंबित लय'' कहलाती है।

दुगुन, तिगुन और चौगुन आदि

जब किसी ताल के बोल एक आवृत्ति के काल में ही दो बार बजा दिये जाएँ तो वह दुगुन, तीन बार बजा देने पर तिगुन और चार बार बजा देने पर चौगुन कहलाती है। इसी प्रकार पंचगुन तथा छहगुन आदि समझनी चाहिये।

गत

बाज के अनुसार मुलायम बोलों की ऐसी रचना को, जिसमें बोलों का विस्तार न किया जा सके, 'गत' कहते हैं। जिस प्रकार दिल्ली–बाज में गतें बजाई जाती हैं। कुछ लोग इन गतों में खाली–भरी का भी प्रयोग

करते हैं। अर्थात् बोल एक बार 'धा' से बजाते हैं तो दूसरी बार उसे 'ता' से बजाकर आवृत्ति पूरी करते हैं, जबकि पूरब–बाज की गतों में अनेक प्रकार की लयें पायी जाती हैं। गतों में प्रायः तिहाइयाँ नहीं होतीं। इनमें स्याही तथा चाँटी, दोनों पर बजने वाले बोलों का प्रयोग होता है। उदाहरण रूप में उस्ताद मोदू खाँ की एक गत दे रहे हैं। यह गत बारह मात्राओं के बोलों से बनी है। इसमें पहले दो बार मात्राएँ ज्यों–की–त्यों बजा दी जाती हैं। फिर उनमें एक बार 'धा' के स्थान पर 'ता' का प्रयोग होता है। अन्त में फिर बारह मात्राएँ ज्यों–की–त्यों बजा दी गई हैं। देखिये –

'धीकृ धीना तिरकिट धीना। ऽतिर किटतक तीना ऽतिर किटतक तातिर किटतक तीना।' इसे ज्यों–की–त्यों दुबारा बजाकर तीसरी बार 'धा' के स्थान पर 'ता' करके, अर्थात् तीकृ तीना तिरकिट तीना। ऽतिर किटतक तीना ऽतिर। किटतक तातिर किटतक तीना' बजाकर, पुनः एक बार पहली 'धा' वाली बारह मात्राएँ बजा डालिये। इस प्रकार यह गत तीन आवृत्तियों में पूरी होगी।

गत–कायदा

जब गत में इस प्रकार के बोल आएँ कि उन बोलों के आधार से उनका उचित विस्तार हो सके, तो इस प्रकार की गतों को 'गत–कायदा' कहते हैं। जैसे –

1.) धिन्ना धाकृ कता धिन्ना। धातृ कता धिना तूना। किन्ना तातृ कता किन्ना। धातृ कता धिना तूना।

2.) तात्र कता धिना धात्र। कधी नक धिना तूना। तात्र कता किना तात्र। कधी नक धिना तूना।

3.) धिना तूना धत्रा कधा। धिना धिना तधा तूना। तिना तूना तात्र कता। धिना धिना तधा तूना।

रेला

रेला और कायदा प्रायः एक प्रकार के ही होते हैं। इन दोनों में एक विशेष अंतर यह होता है कि कायदे दुगुन और चौगुन में ही बजाये जाते हैं, जबकि रेला प्रायः अठगुन और चौगुन में ही बजाया जाता है। रेले में प्रायः एक प्रकार के ही बोल होते हैं और उन्हीं बोलों को बार–बार ठहरते हुए बजाने से रेले की सुन्दरता बढ़ती है; जैसे – धातिर किटतक धातिर किटतक। तुन्ना किड़नग धातिर किटतक। तातिर किटतक तातिर किटतक। तुन्ना किड़नग धातिर किटतक।

कायदा–रेला

कुछ रेले ऐसे होते हैं कि उनका प्रयोग कायदे ओर रेले, दोनों की भाँति किया जा सकता है। उन रेलों को 'कायदा–रेला' कहते हैं; जैसे – धातिर किटघिड़ नगतिर किटतक। तातिर किटघिड़ नगधिर किटतक।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) 'कायदा' से क्या तात्पर्य है ?

(2) 'मुखड़ा' कब बजाया जाता है ?

(3) 'तिहाई' से क्या तात्पर्य है ?

(4) 'परन' किसे कहते हैं ?

(5) 'पेशकार' में क्या पेश करते हैं ?

(6) 'लय' से क्या तात्पर्य है ?

(7) 'लयकारी' मुख्यतः कितने प्रकार की होती है ?
(8) 'गत' किसे कहते हैं ?
(9) 'दुगुन' से क्या तात्पर्य है ?
(10) 'ताल' क्या है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) 'कायदा' और 'मुखड़ा' में क्या अन्तर है ?
(2) 'तिहाई' में एक ही बोल को कितनी बार बजाया जाता है ?
(3) 'त्रिताल' में कोई एक 'परण' लिखिये ?
(4) 'एकताल' में कोई एक 'गत' लिखिये ?
(5) 'चौताल' तथा 'एकताल' में क्या समानता है ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) 'पेशकार' को परिभाषित करते हुए अपने पाठ्यक्रम में से किसी एक ताल का पेशकार लिखिये ?
(2) 'लयकारी' को विस्तृत रूप से समझाइये ?
(3) 'एकताल' और 'चौताल' के बोलों में क्या अन्तर है ?

पं. किशन महाराज
तबला वादक

अध्याय 2

ताल के दस प्राण

संगीत को कालबद्धकरने के लिये ताल की ज़रूरत होती है। ताल को अनन्त असीम ''काल'' के द्वारा ही नापा जा सकता है। इसे नापने के लिये समय के अंग बनाने आवश्यक होते हैं। यह समय घंटा, मिनट, सेकण्ड में नापा जा सकता है।

जब ताल बन जाती है तो यह गीत को किस स्थान से ग्रहण करती है, उस स्थान को ''ग्रह'' कहते हैं। तालों को छोटा–बड़ा करने के लिये कुछ जातियाँ भी बनाई जाती है। ताल में ''लय'' का भी बड़ा स्थान होता है। एक मात्रा से दूसरी मात्रा तक जाने में जो समय लगता है उसे ''लय'' कहते हैं और यहीं लय ताल की गति निर्धारित करती है। ताल में एक–एक मात्रा के छोटे से छोटे अंश या ''कलाएँ'' क्या होती है उन्हें ताल में जानना भी ज़रूरी होता है। हमें यह जानना भी ज़रूरी होता है कि ताल में बोलों को किस ''गति'' से या किस ''यति'' या ''नियम'' या ''सिद्वांत'' से रखा जाय और फिर उनका ''प्रसार'' कैसे करें। यही ताल के दस प्राण होते हैं । क्रमानुसार ताल के दस प्राणों की व्याख्या निम्नानुसार प्रस्तुत है –

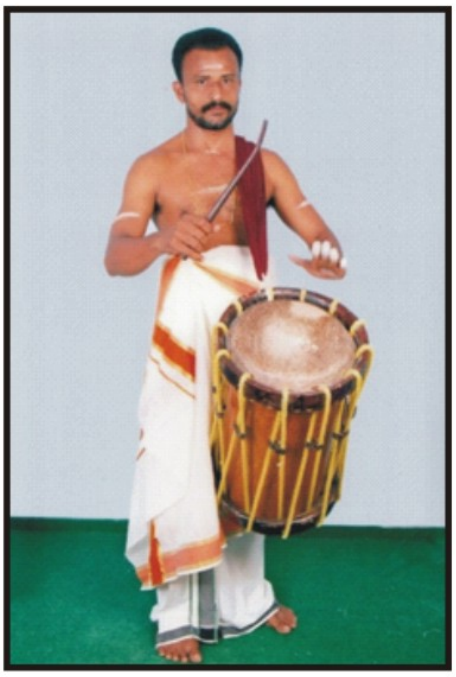

दक्षिणी ताल वाद्य – चेंड़ा

1. काल

समय का दूसरा नाम है ''काल''। काल के अनुसार ही मात्राओं की और ताल की रचना बनी है और इसी से ताल बनती है।

2. क्रिया

किसी भी ताल में मात्राओं को गिनने को क्रिया कहते हैं। ''खाली'' ''भरी'' दिखाना, हाथ से ताली लगाना, मात्राओं को गिनना इन सबको ''क्रिया'' कहते हैं। क्रिया से ही पता चलता है कि जो ताल बजायी जा रही है या जो ताल हाथों से लगा रहे हैं उस ताल में कौन–कौन से अंग हैं और वह कौनसी ताल है। क्रिया के दो प्रकार माने गये हैं – सशब्द क्रिया एवं निशब्द क्रिया । सशब्द क्रिया को पात भी कहते हैं और निशब्द क्रिया को खाली भी कहते हैं।

सशब्द (पात) क्रिया

सशब्द क्रिया वह क्रिया है जिसमें ताल की मात्रा या समय को गिनने के लिये आवाज़ उत्पन्न हो अर्थात ताली लगाकर मात्राएँ गीनी जायें।

निशब्द (खाली) क्रिया

ताल की मात्राओं को जब मन ही मन या ऊंगलियों पर गिना जाये जिसमें कोई ध्वनि उत्पन्न नहीं हो तो उसे निशब्द क्रिया कहते हैं।

3. कला

अक्षर काल को सूक्ष्म बांटना या विभाजित करने को कला कहते हैं। इस प्रकार या इसी आधार पर मात्रा के हिस्सों में बांटा जाता है। जैसे आधी मात्रा(½), पौन मात्रा (¾), चौथाई मात्रा (¼), मात्रा आदि और इसी को कला कहते हैं।

4. मार्ग

निश्चित काल से युक्त कलाओं के समूह को मार्ग कहा जाता है। विद्वानों ने मार्ग के चार प्रकार बतायें हैं अथवा वर्णित किये हैं। (1.) ध्रुव (2.) चतुरा (3.) दक्षिणा (4.) वृत्तिका। कला के अनुसार इन्हें अलग–अलग प्रकार से बांटा जाता था लेकिन इनका मूल स्वरूप क्या था इसका पता नहीं चलता था।

5. अंग

ताल के समय में जो अलग–अलग भाग होते हैं। उन्हें अंग कहा जाता है। अक्षर काल को स्पष्ट करने वाले चिन्हों को अंग कहा जाता है। अंग के 6 प्रकार होते हैं। (1.) अनुद्रुत (2.) द्रुत (3.) लघु (4.) गुरू (5.) प्लुत (6.) काक पद इनमें जो मात्राओं का समय माना गया है वो इस प्रकार है। ''अनुद्रुत'' : 1 मात्रा, ''द्रुत'':2 मात्रा, ''लघु'' : 4 मात्रा, ''गुरू'' : 8 मात्रा, ''प्लुत'' : 12 मात्रा, ''काकपद'' : 16 मात्रा ।

6. यति

लय के चाल क्रम को यति कहते हैं। प्राचीन विद्वानों ने शास्त्रों में पांच प्रकार के ''यति'' माने हैं।

(1) समा

गायन, वादन में लय के अन्तर्गत आरम्भ में, बीच में और अन्त में सभी स्थानों पर एक ही गति अर्थात समान गति की लय ही ''समा यति'' कहलाती है।

(2) स्त्रोतोगता

जिस संगीत में प्रारम्भ में विलंबित लय हो, बीच में मध्य लय हो और अन्त में द्रुत लय हो उसे ''स्त्रोतोगता'' यति कहते हैं।

(3) मृदंगा

जिसके आरम्भ में और अन्त में द्रुत लय हो तथा बीच में मध्य लय याविलंबित लय हो उसे ''मृदंगा'' यति कहते हैं।

(4) पिपीलिका

जिसके आदि और अन्त में विलंबित या मध्य लय हो और बीच में द्रुत लय हो उसे ''पिपीलिका'' यति कहते हैं।

(5) गोपुच्छा

जो यति द्रुत लय से शुरू होकर क्रमशः मध्य और फिर विलंबित लय में प्रवेश करे उसे ''गोपुच्छा'' यति कहते हैं।

7. प्रस्तार

जिस तरह सात स्वरों के फैलाव से 5040 तानें बन सकती है उसी प्रकार 1 मात्रा से लेकर 13 मात्राओं तक

के प्रस्तार अलग–अलग तालों की उत्पत्ति होकर उनकी संख्या 65535 हो सकती है। इस प्रकार भिन्न–भिन्न रूपों में की जाने वाली अंग–कल्पना को ''प्रस्तार'' कहते हैं।

8. जाति

जितने–जितने अक्षरों से जाति के बोलों की रचना हुई है उसी के अनुसार 5 जातियों की रचना की गई है या कायम की गई है जो इस प्रकार है –

(1.) त्रयश्र जाति	–	3	मात्राओं के लिये	तकिट
(2.) चतस्त्र जाति	–	4	मात्राओं के लिये	तक धिन
(3.) खंड जाति	–	5	मात्राओं के लिये	तकिट किट
(4.) मिश्र जाति	–	7	मात्राओं के लिये	तक धिन तकिट
(5.) संकीर्ण जाति	–	9	मात्राओं के लिये	तक धिन तक तकिट

9. ग्रह

ताल गति को किस स्थान से ग्रहण करना है इसको जानने के लिये 4 ग्रह बनाये गये हैं।

(1.) सम (2.) विषम (3.) अतीत (4.) अनागत

(1.) सम ग्रह : जब गीत और ताल एक ही स्थान से प्रारम्भ हो तो सम ग्रह कहते हैं।

(2.) विषम ग्रह : जब सम निकलने के बाद गायन, वादन प्रारम्भ किया जाये तो विषम ग्रह कहलायेगा।

(3.) अतीत : ताल के सम का अन्त होने पर जब गायन, वादन प्रारम्भ किया जाये तो उस स्थान को अतीत ग्रह कहते हैं।

(4.) अनागत ग्रह : जब पहले गायन, वादन शुरू हो जाये और बाद में ताल शुरू हो तो उसे अनागत ग्रह कहते हैं।

10. लय

एक मात्रा से दूसरी मात्रा और क्रमशः इसी प्रकार अन्य मात्राओं तक बजाने में जो समय लगता है उसे ही लय कहते हैं। जिस प्रकार चलते समय एक ही गति से चलते हैं, हमारा हृदय एक लय में धड़कता है, पृथ्वी की गति एक सी रहती है उसी प्रकार दो क्रियाओं के बीच लिया गया समय ही लय कहलाता है। मुख्य रूप से तीन प्रकार की लय मानी गई है –

(1.) मध्य लय

(2.) विलंबित लय और

(3.) द्रुत लय

इसके अलावा भी कई प्रकार की लय होती है। जैसे अति विलंबित लय, अति द्रुत लय, दोगुन, तिगुन, चौगुन, अठगुन, आड़ी, कुआड़ी, बिआड़ी आदि आदि –उदाहरणार्थ यहाँ एक गीत की लाईन प्रस्तुत है जो अलग–अलग लय में दर्शायी गयी है –

मध्य लय – तीन ताल

हम मान लेते हैं कि तीन ताल में 16 मात्राएं होती है और मध्य लय में 16 मात्राओं को बजाने में 16 सैकण्ड

	ह	र	ह	र	ह	र	ह	र	ज	य	शि	व	शं	ऽ	क	र
बोल	ज	य	ति	ज	य	ति	ज	य	र	घु	प	ति	म	न	ह	र
सैकण्ड	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ताल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
चिन्ह	X				2				0				3			

विलंबित लय – तीन ताल

अगर इसी बोल को विलंबित लय में गायेंगे तो दो मात्रा अर्थात दो सैकण्ड में एक शब्द गाया जायेगा अर्थात 2 × 16 = 32 सेकण्ड लगेंगे।

	ह	ऽ	र	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ
बोल	ज	ऽ	य	ऽ	ति	ऽ	ज	ऽ	य	ऽ	ति	ऽ	ज	ऽ	य	ऽ
सैकण्ड	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ताल	धा	–	धिं	–	धिं	–	धा	–	धा	–	धिं	–	धिं	–	धा	–
चिन्ह	X				2				0				3			

बोल	र	ऽ	घु	ऽ	प	ऽ	ति	ऽ	म	ऽ	न	ऽ	ह	ऽ	र	ऽ
सैकण्ड	17	18	19	20	21	22	23	24	25	26	27	28	29	30	31	32
ताल	धा	–	तिं	–	तिं	–	ता	–	ता	–	धिं	–	धिं	–	धा	–
चिन्ह	X				2				0				3			

अति विलंबित लय में 4 सेकंड में एक स्वर गाया जायेगा अर्थात पूरी लाईन को गाने में 4 × 16 = 64 सेकंड लगेंगे। इसी प्रकार अब लय को और भी आधी कर देंगे तो एक लाइन को गाने में 8 × 16 = 128 सेकंड लगेंगे। यह हुआ मध्य लय से विलंबित लय की तरफ जाने का नियम।

अब अगर मध्य लय से दुगुन लय में जाना अर्थात गायन, वादन करना है तो 1 सेकंड में दो शब्दों को गाना बजाना होगा अर्थात पूरी लाइन को गाने में 16 के स्थान पर 8 मात्रा ही लगेगी। 16÷2 = 8 मात्रा

(दुगुन)

	हर	हर	हर	हर	जय	शिव	शंऽ	कर
बोल	जय	तिज	यति	जय	रघु	पति	मन	हर
सैकण्ड	1	2	3	4	5	6	7	8
ताल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा
चिन्ह	X				2			

अब अगर तिगुन लय करनी है तो 1 मात्रा में तीन शब्द गाने बजाने होंगे तो मध्य लय की अपेक्षा एक तिहाई समय लगेगा। पूरी लाईन को गाने में 5 सेकंड लगेगा और एक शब्द र बच जायेगा जो अगली मात्रा में जायेगा।

(तिगुन)

जयति	जयति	जयर	घुपति	मनह
धा	धिं	धिं	धा	धा
1	2	3	4	
X				2

अब अगर 1 मात्रा में 4 शब्द गाये जाये तो यह चौगुन लय हो जायेगी अर्थात 16 शब्दों को गाने में $16 \div 4 = 4$ सेकंड लगेंगे।

(चौगुन)

जयतिज	यतिजय	रघुपति	मनहर	
धा	धिं	धिं	धा	
1	2	3	4	
X				2

इसी प्रकार अठगुन लय में 1 मात्रा अथवा 1 सेकंड में 8 शब्द गाये जायेंगे तो गति अठगुन हो जायेगी और $16 \div \mathbf{8} = 2$ मात्रा में 2 सेकंड लगेंगे।

(अठगुन)

जयतिजयतिजय	रघुपतिमनहर	–	–	
धा	धिं	धिं	धा	
1	2	3	4	
X				2

दक्षिणी ताल वाद्य – मृदंगम्

घटम् वाद्य

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) ताल को किससे नापा जा सकता है ?
(2) 'ग्रह' क्या है ?
(3) ताल में 'लय' का क्या स्थान है ?
(4) ताल की रचना किससे बनती है ?
(5) 'खाली' से क्या तात्पर्य है ?
(6) 'भरी' किसे कहते हैं ?
(7) 'सशब्द' क्रिया क्या है ?
(8) 'निशब्द' क्रिया क्या है ?
(9) 'अंग' कितने प्रकार के होते हैं ?
(10) 'ग्रह' कितने प्रकार के हैं ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) ताल के दस प्राण कौनसे हैं ?
(2) ताल में 'खाली' 'भरी' से क्या अभिप्राय है ?
(3) ताल की जाति से क्या तात्पर्य है ?
(4) 'लय' कितने प्रकार की होती है ?
(5) 'दुगुन' 'चौगुन' लय से क्या तात्पर्य है ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) ताल के दस प्राणों की व्याख्या कीजिये ?
(2) 'लय' की विस्तृत व्याख्या कीजिये ?

पं. पुरुषोत्तम दास पखावज़ी

अध्याय 3

तबला एवं पखावज की रचना

तबला

तबला की उत्पत्ति के बारें में यह मशहूर है कि अमीर खुसरों ने पखावज के दो हिस्से करके तबले का रूप दे दिया। पखावज से काटे गये इस वाद्य को ''तब्ल'' या ''तबला'' कहा गया जिसका फ़ारसी भाषा में शाब्दिक अर्थ है – जिसका मुँह ऊपर की ओर हो और उसका ऊपरी भाग सपाट हो। शायद इसीलिये इस वाद्य का नाम ''तबला'' प्रचलित हुआ।

कहते हैं कि अमीर खुसरों ने इसका आविष्कार 13वीं शताब्दी में किया परन्तु 13वी शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक किसी तबला वादक का नाम उल्लेखित नहीं प्रतीत होता है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि 16वीं शताब्दी के आसपास पखावज के दो भाग करके इसका नाम तबला रखा गया और इसमें उचित संशोधन 18वीं शताब्दी के सिद्वार खां द्वारा किया और तभी से गायन, वादन एवं नृत्य में तबले का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

तबला और उसके अंग

तबले के अंग

तबले के मुख्य दो अंग होते हैं। ''बांया'' और ''डग्गा'' या मांडिया भी कहते हैं, जिसे बांये हाथ से बजाते हैं और दांया जिसे दाहिने हाथ से बजाया जाता है। कई कलाकार बांये को दांये हाथ से और दांये को बांये हाथ से भी बजाते हैं।

तबला

यह लकड़ी का बना होता है। आम, खेर, शीशम,

चंदन, बबूल, कटहल तथा बिजैसार में से किसी भी लकड़ी का बना होता है। इसके नीचे का भाग साढ़े 8 इंच, ऊपर की 7 इंच तथा ऊँचाई लगभग 1 फुट के करीब होती है। दांये तबले को नीचे स्वर अथवा तार सप्तक के स्वर में मिलाने के लिये इसके आकार में परिवर्तन भी होता है। जितनी भारी लकड़ी होगी उतनी ही गूंज अधिक उत्पन्न होगी।

बांया या डग्गा

पुराने ज़माने में बांया अक्सर मिट्टी का बना होता था परन्तु वर्तमान में बांया पीतल या तांबे का बनाया जाता है। कुछ लोग बांये तबले के पैंदे में सीसा या जस्ता डालकर भारी बनाते हैं जिससे गूंज अधिक रहे।

पुड़ी

तबले पर खाल लगी रहती है जिस पर उंगलियों से चोट करके बजाया जाता है। यह अधिकतर बकरे की खाल की बनायी जाती है। दांये तबले की पूड़ी कुछ पतले और बांये डग्गे की पूड़ी कुछ मोटे चमड़े की बनी होती है। पुड़ी को काम में लेने से पहले चूने के पानी में डूबोया जाता है फिर ही पुड़ी बनाई जाती है।

दाहिने तबले पर स्याही

स्याही बनाने के लिये लोहे की जली हुई राख को नीला थोथा में मिली हुई लेई में मिलाकर तैयार करते हैं। तबले के पुड़ी के बीच में स्याही लगाने वाली जगह को किसी धारदार चीज़ से खुरच कर उस जगह स्याही को लगाते हैं। एक तह लगाकर छोड़ देते हैं फिर सूखने पर कसौटी के पत्थर से खूब रगड़ते हैं। फिर इसके सूखने पर थोड़े से कम घेरे में पुनः स्याही को लगाकर वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। इस प्रकार हर बार स्याही की तह को छोटा करके अन्त में लगभग आधा इंच व्यास की स्याही रखकर पूरी स्याही की घुटाई करते हैं। पतली स्याही के कारण तबले का स्वर ऊपर बोलता है और ज्यादा स्याही लगाने से तबले का स्वर नीचा बोलता है। जितनी अधिक घुटाई होगी तबला उतना ही अच्छा बोलेगा।

बांये डग्गे पर स्याही

बांये डग्गे पर स्याही लगाने का तरीका भी तबले के अनुसार ही होता है मगर तबले में स्याही पुड़ी के बीच में लगाई जाती है मगर बांये डग्गे में स्याही पुड़ी के बीच में नहीं लगाकर थोड़ा किनारे की और लगाई जाती है।

द्वाल और गजरा

पुड़ी को चमड़े की पट्टीयों से बने हुए सिंगार या गजरे में गूंथ देते हैं। इस गजरे में 16 घर होते हैं और इन 16 घरों के बीच से चमड़े की बद्दी या द्वाल डाल देते हैं। यह द्वाल या बद्दी भैंस के कच्चे चमड़े से भी बनाई जाती है और पके चमड़े से भी बनाई जाती है।

गट्टे तथा गुड़री

तबले के नीचे एक गोल चमड़े का पहिया सा होता है। द्वाल के ऊपर गजरे में होकर नीचे इस गुड़री में होकर पूड़ी को कस देते हैं। बद्दी या द्वाल को कसा या ढीला किया जाता है। गट्टे तीन इंच लम्बे और एक इंच मोटे होते हैं। इन गट्टों को ऊपर–नीचे करने से बद्दी ढ़ीली या टाईट होती है जिससे तबले का सुर ऊपर–नीचे मिलाया जाता है।

किनारी या चांटी और लव या मैदान

पुड़ी पर गजरे से ऊपर चारों ओर लगभग आधा इंच चौड़ी एक चमड़े की गोट लगी रहती है जिसे किनारी

या चांट कहते हैं। इस किनारी तथा स्याही के बीच करीब 1 इंच चौड़ा पूड़ी का भाग रहता है जिसे लव या मैदान कहते हैं।

इंडोरी

यह मूंज या कपड़े की बनी गोल पहिया जैसा होता है जिस पर तबला और बांया (डग्गा) रखा जाता है। जिससे गूंज भी बढ़ती है और तबला फिसलता भी नहीं है।

मृदंग, खोल या पखावज

यह माना जाता है के पखावज भगवान गणेश का प्रिय वाद्य है। पखावज कई नामों से जाना जाता है –पुष्कर, मृदंग, मृदल आदि आदि। पौराणिक पखावज वाद्य ध्रवपद, धमार गायकी एवं वीणा वादन के साथ ताल–वाद्य के रूप में बजाया जाता है। पखावज की आवाज़ बहुत ही धीर गंभीर होती है। तबला वादन से पखावज वादन की वादन विधि अलग होती है। पखावज पर जो ताल बजाई जाती है उनके बोल खुले रूप में होते हैं।

'पखावज', 'मुरज' और 'मर्दल', ये नाम भी 'मृदंग' के ही हैं। इस प्रकार के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। 'मृदंग' का विशेष प्रचार दक्षिण–भारत में रहा जिसे वहाँ 'मृदंगम्' कहा जाता है। कुछ समय बाद उत्तर भारत के संगीतज्ञों ने 'मृदंग' से मिलता–जुलता प्रकार बनाकर उसका नाम 'पखावज' (पक्ष वाद्य) रख लिया। 'पखावज' पर अनेक कठिन तालों का प्रयोग हुआ करता था। चौताल, धमार, ब्रह्म, रूद्र, विष्णु, लक्ष्मी, सवारी इत्यादि तालें इस पर बजाई जाती थीं। किन्तु जब से तबले का आविष्कार हुआ, मृदंग का प्रचार बहुत कम हो गया। अब तो मृदंग के दर्शन प्रायः मन्दिरों या कीर्तन–मंडलियों में ही होते हैं। बंगाल की ओर 'मृदंग' को 'खोल' कहते हैं।

प्रसिद्ध पखावजियों में ला. भवानीप्रसाद सिंह को भातखंडे जी ने अप्रतिम पखावजी कहकर संबोधित किया है। प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह इन्हीं के शिश्य थे। अवध के नवाब द्वारा उन्हें 'कुँवरदास' की पदवी प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एक बार वाजिदअली शाह की एक महफ़िल में कुदऊसिंह व जोधसिंह पखावजी को राजा ने दस हज़ार रूपये की थैली उनकी कला पर प्रसन्न होकर पुरस्कार में दी थी। इनके पश्चात् ताज ख़ाँ (डेरेदार), भवानीसिंह, ख़लीफा नासिर खाँ इत्यादि पखावजी प्रसिद्ध हुए।

इनके अलावा पखावज (मृदंग) के मुख्य कलाकारों में नाना, पानसे, मक्खन जी, घनश्याम जी, पर्वतसिंह, गुरूदेव पटवर्द्धन, गोविन्द राव बुरहानपुरकर, अम्बादासपन्त आगले, अयोध्याप्रसाद, सखाराम,

पुरुषोत्तमदास और राजा छत्रपति सिंह, रामशंकर 'पागलदास', अर्जुन सेजवाल तथा गोपालदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पखावज की बनावट

पखावज का बाह्य रूप इसका शरीर कहलाता है, जो आकार में इस प्रकार होता है – इसके दो मुँह होते हैं, दाहिना और बाँया। दाहिना मुँह छोटा होता है जिसका व्यास 7 से 8 इंच होता हैं। बाँया मुँह थोड़ा बड़ा होता है जिसको व्यास 9 से 10 इंच होता है। पखावज की पूरी लम्बाई 2¼ से 2½ फीट होती है। मुख्यतः इसके आठ अंग होते हैं। यथा –

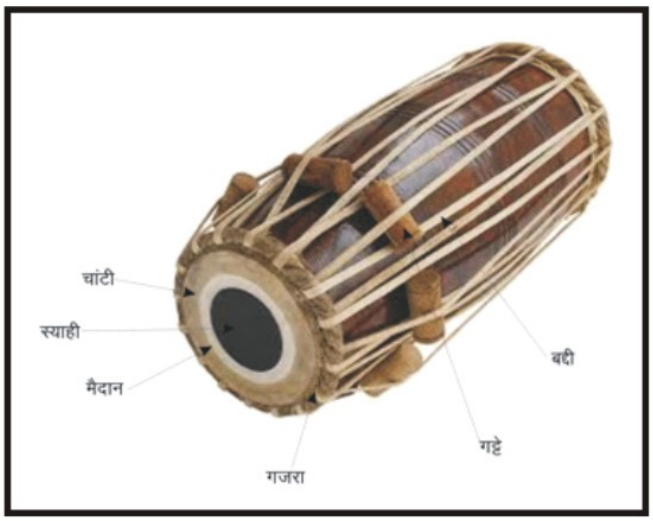

(1) शरीर

इसका शरीर एक ही लकड़ी का बना होता है। लकड़ी काथे या विजय साल की अच्छी मानी जाती है। आम और सुपारी की लकड़ी का उपयोग भी पाया जाता है। पखावज के निर्माण में जो लकड़ियाँ काम में लाई जाती है, वे प्रायः बड़ौदा, पूना, नासिक, अहमदाबाद के क्षेत्र की होती है।

(2) पुड़ी

पखावज के दोनों मुँह (दायाँ–बाँया) बकरे की खाल से मढ़े जाते हैं। यह चर्माच्छादन 'पुड़ी' के नाम से जाना जाता है। 'पुड़ी' शब्द संस्कृत के 'पुट' शब्द से निकला है।

(3) स्याही

मृदंग के दाहिने मुख पर जो गोल आकार में काला मसाला लगा होता है, वह करीब 3 इंच व्यास में होता है। उसे स्याही कहते हैं। यह स्याही ज्वालामुखी पहाड़ के पत्थर से बनती है और सीसा से भारी होती है। स्याही का उपयोग पखावज के कतिपय बोलों की स्पष्ट ध्वनि के लिये होता है। ढोलक आदि वाद्यों पर यह स्याही नहीं होती। पखावज के बायें भाग पर मढ़े हुए चमड़े की भीतर की ओर किसी प्रकार के मसाले का लेप नहीं किया जाता है। बाँयी पुड़ी पर गेहूँ के आटे का लेप (लुगदी) लगाया जाता है और इसे कम–ज्यादा करके नाद (स्वर) उत्पन्न किया जाता है।

(4) किनार

पुड़ी के ऊपर चारों तरफ लगी पट्टी किनार कहलाती है। इसे 'चाँटी' भी कहा जाता है।

(5) बद्दी

दोनों पुड़ियों को कसने के लिये जिस चर्म–रज्जू का उपयोग किया जाता है, वह 'बद्दी' कहलाती है। बद्दी भैंस के चमड़े की होती है। यह इतनी मजबूत होती है कि गट्टे के तनाव को सहकर टूटती नहीं है। बद्दी को 'दुआल' भी कहा जाता है।

(6) गजरा (गोट)

पुड़ी के चारों ओर जो गूंथा हुआ चमड़ा लगा रहता है, उसे गजरा या गोट कहते हैं। गोट में से होकर

चमड़े की बद्दियाँ निकलती हैं, जो पुड़ियों को एक–दूसरे से सम्बद्ध रखती है।

(7) लव या मैदान

पखावज की पुड़ी के जिस भाग पर स्याही और पट्टी (चाँटी) लगी रहती है, उसके बीच का हिस्सा लव या मैदान कहा जाता है।

(8) गट्टे

चर्म–रज्जू या बद्दी के नीचे छोटे–छोटे लकड़ी के गोल (बेलन के आकार में) जो टुकड़े लगे रहते हैं, वे गट्टे कहलाते हैं। इन गट्टों की सहायता से पखावज को वांछित स्वर में मिलाया जाता है। गट्टे लकड़ी के बने होते हैं।

पखावज की इस सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया को पखावज का 'मढ़ना' कहा जाता है। पखावज के निर्माण में एक और इस विशेषता पर भी हमारा ध्यान जाता है कि ऐसे कुछ पारंपरिक भारतीय वाद्य हैं, जिनका निर्माण लकड़ी से होता रहा, लेकिन आज उनकी रचना लोहे के पतरे से होने लगी है। तबला, ढोलक आदि इसके उदाहरण है। किन्तु पखावज या मृदंगम् की रचना में आज भी इन्हीं पारंपरिक लकड़ियों का उपयोग अनिवार्यतः होता है, कोई अन्य धातु या पदार्थ उनकी जगह नहीं ले सका है।

पखावज ढोलक के समान होती है परन्तु उसका एक मुँह छोटा और दूसरा मुँह बड़ा होता है। बजाते वक्त बड़ा मुँह का हिस्सा बाँये हाथ से और छोटे मुँह के हिस्से को दाँये हाथ से बजाया जाता है। दोनों मुँह पर चमड़े की पुड़ी लगी होती है। पखावज में छोटे वाले मुँह के हिस्से में चमड़ा मढ़ा होता है और उस पर स्याही लगी होती है। दूसरे बड़े वाले मुँह की तरफ चमड़े पर आटा लगाया जाता है। दानों पुड़ीयों को कसने के लिये गजरा होता है और इस गजरे में से चमड़े की बद्दी (रस्सी) लगी होती है। अगर दायाँ तबला और बायाँ डग्गा, दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिए जाएँ, तो पखावज जैसा रूप ही बन जाता है। तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दायाँ और बायाँ अलग–अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूंज अधिक पायी जाती है क्योंकि एक तरफ़ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है। दूसरा भेद तबला और पखावज में यह है कि तबले के बोल बजाने में अँगुलियों का काम अधिक होता है तथा थाप का प्रयोग कम होता है किन्तु पखावज में थाप का प्रयोग अधिक होता है। पखावज में बायीं ओर गीला आटा लगाया जाता है, जब स्वर नीचा करना होता है तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं, ऊँचा स्वर करने के लिये आटा कम कर देते हैं।

पखावज की संरचना

पखावज दक्षिण भारत के प्राचीन वाद्य 'मृदंगम का परिवर्तित एवं संस्कारित रूप है। वाद्यवृन्द में इसका महत्त्व बताते हुए सुप्रसिद्ध पखावज वादक पागलदासजी ने लिखा है कि पखावज सर्वाधिक सजीव वाद्य है और सभी ताल वाद्यों का जनक है। पखावज के बोलों व बंदिशों में ध्रुपद की गायन शैली की लयकारियाँ परिलक्षित होती है। नृत्य की संगत में भी इसका प्रयोग होता है। यह एकल व संगत दोनों में उपयोगी वाद्य है।

नटराज – मुक्तेश्वर के मंदिर

इसकी संरचना का एक सुदीर्घ इतिहास है, जो वैदिक युग के मृदंगम् से चलकर वर्तमान युग के पखावज वाद्य तक आता है। इस वाद्य का दक्षिण भारतीय मूल नाम मृदंगम् है। यही मृदंगम जब भारत के अन्य प्रान्तों में अपनी लोकप्रियता के कारण व्यापक रूप में फैला तो अनेक नामों से जाना जाने लगा। इस वाद्य में न केवल नाम बदले बल्कि इसके रूप–स्वरूप में भी कई परिवर्तन–परिवर्धन हुए। तदनुसार दक्षिण भारत को छोड़कर देश के अन्य प्रान्तों में जहाँ मृदंगम का अविकल रूप स्वीकृत हुआ, वहाँ इसे मृदंग कहा जाने लगा। इसी 'मृदंग' को सामान्यतः पखावज भी कहा जाता है। इसके अन्य नाम हैं – मुरज, मर्दल, खोल। इस वाद्य की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद (5/33/6) से मिलता है। इसका मूल रूप भगवान शिव का डमरू माना जाता है। प्राचीन समय में यह 'पुष्कर' नाम से भी जाना जाता था। इसके पुरातन रूप थे – हरीतकी, जवाकृति और गोपुच्छाकृति। हरड़ के आकार वाला मृदंग हरीतकी, जव के आकार वाला यवाकृति अथा जवाकृति एवं गाय की पूँछ के आकार वाला गोपुच्छाकृति होता था। इस वाद्य का शरीर मृद् (मिट्टी) से बना होने के कारण इसे मृदंग (मृद–अंग) कहा जाता था।

पखावज वाद्य मृदंगम् के समान ही है, किन्तु मृदंगम् के आकार से यह वाद्य कुछ बड़ा होता है। मृदंगम् को पखावज के रूप में नाम देने का श्रेय मुसलमान संगीतकारों को दिया जाता है। माना जाता है कि आगे चलकर इसी पखावज वाद्य के बीच में से दो टुकड़े कर दिये गये, जो तबला के रूप में आज हमारे सामने हैं और तबले के दाँए–बाएँ कहलाते हैं। किन्तु तबला के उद्भव की यह मान्यता कितनी सही है, कहा नहीं जा सकता। कारण कि तबला वाद्य के मौलिक रूप का पता हमारे यहाँ बहुत प्राचीन समय (छठी शताब्दी) से चलता है। इस संबंध में हमें भुवनेश्वर स्थित श्री भुवनेश्वर के मन्दिर में सुविराजित नटराज की अष्टभुज मूर्ति तथा मुम्बई के बादामी मंदिर की नटराज की षड़–भुज प्रतिमा अध्ययनीय हैं। इन मूर्तियों को लेकर जो विवरण हमारे सामने आया है, वह इस प्रकार है–

भुवनेश्वर में श्री मुक्तेश्वर के मंदिर में एक नटराज की अष्टभुजी मूर्ति प्राप्त होती है। इसमें नटराज के विभिन्न हाथों को नृत्य की भिन्न–भिन्न मुद्राओं में दिखाया गया है। इसके पूर्व की ओर गणपति भी नृत्य में सहायक के रूप में वंशी बजाते हुए दिखाये गये हैं। इसी मूर्ति के बाँयी ओर चार पायों की चौकी पर एक पुरुष बैठा है, जो अपने हाथों से दो पुष्कर (ढोल) जैसे वाद्यों को बजाकर नटराज के नृत्य में लय तथा ताल को प्रदर्शित कर रहा प्रतीत होता है।

इस प्रकार नटराज की मूर्ति मुम्बई के बादामी के मंदिर में (छठी शताब्दी की) पाई जाती है। इस मूर्ति के छह हाथ हैं और प्रत्येक हाथ शास्त्रानुकूल शुद्ध नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया है। इनमें सीधे लय की ओर के एक हाथ में त्रिशूल भी है। भगवान गणेश वंशी जैसा सुषिर वाद्य बजाते हुए मूर्ति के पार्श्व में खड़े दिखाये गये हैं। गणेशजी के समीप ही एक व्यक्ति झुकी मुद्रा में हाथों से एक ढोल बजा रहा है और एक ढोल उसे सामने रखा है। इन ढोलों को 'पुष्कर' कहते हैं। दोनों ढोल जो कि आकार में एक समान ही हैं और बादामी तथा मुक्तेश्वर के मंदिर में दिखाये गये हैं, वे ही आधुनिक दायाँ तबला और बाँये डग्गे के पूर्वज

प्रतीत होते है, जिनके विषय में यह झूठ प्रचार में आ गया है कि यवन काल में अमीर खुसरों ने मृदंग के दो भाग करके तबला वाद्य को जन्म दिया।

यह तो स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि मन्द्र ध्वनि में जितना मृदंगम् उपयोगी है, उससे किंचित् अधिक पखावज है। पखावज के ही दो और छोटे स्वरूप मिलते हैं, जो 'ढोलक' और 'नाळ' नाम से जाने जाते हैं। मृदंगम् वाद्य ज्यों–ज्यों छोटा होता गया, उत्तरोत्तर उसकी ध्वनि की गंभीरता में कमी आती गई। पखावज या मृदंगम् की तुलना में तबला वाद्य की ध्वनिगत विशेषता पर टिप्पणी करते हुए कहा गया है कि तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दाँया और बाँया अलग–अलग न होकर दोनों का आकार (खोल) एक ही है, और इस कारण तबले की अपेक्षा पखावज में गूँज अधिक पायी जाती है। पखावज पर एक तरफ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है, जबकि तबला के वादन में ऐसा नहीं होता।

पखावज के बोल

प्रत्येक वाद्य के बोल अपने नाद की प्रकृति के अनुरूप होते हैं। पखावज पर दोनों पाटों (पुड़ियों) से निकाले जाने वाले 16 बोल होते हैं, जिन्हें पाट वर्ण अथवा पाटाक्षर कहा जाता है। संगीत रत्नाकर में इनका इस प्रकार वर्णन है –

डवर्जितः कवर्गश्च टतवर्गो रलावपि ।
इति षोड़श वर्णाः स्युरूभयोः पाटसंज्ञकाः।।

क–ख–ग–घ–ट–ठ–ड–ढ–त–थ–द–थ–न–म–र–ल यह 16 पाट वर्ण या पाटाक्षर होते हैं किन्तु ये 16 पाटाक्षर मुख्यतः मृदंग के हैं, जबकि पखावज के 13 बोल ही माने जाते हैं। यथा – ता–त–दी–धु–ना–धा–ड–हये–दी–ग–खिर्र–झें–म । ये 13 बोल मुख्य बोल माने गए हैं। आश्रित बोल 12 बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं – रॉ–क–ग–ण–धु–धी–ला–थेई–ड़ा–की–टी–थई ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) 'तबला' किसका बना होता है ?

(2) तबले में स्याही का प्रयोग कहाँ होता है ?

(3) तबले की पुड़ी को किससे कसा जाता है ?

(4) तबले की पुड़ी में मैदान कहाँ होता है ?

(5) तबले के गट्टों की क्या उपयोगिता है ?

(6) पखावज कौनसी गायन–वादन शैली के साथ बजायी जाती है ?

(7) पखावज की पुड़ी पर आटा किस भाग पर लगाया जाता है?

(8) पखावज पर बजाये जाने वाले बोल किस तरह के होते हैं ?

(9) पखावज की उत्पत्ति किस काल की मानी जाती है ?

(10) उत्तर भारत में पखावज का चलन अधिक है या तबले का ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) तबले में दायें–बांये से क्या तात्पर्य है ?

(2) तबले पर कौनसी ताल बजायी जाती है ?

(3) तबले की बनावट में पुड़ी किस स्थान पर होती है ?

(4) पखावज के दोनों मुँह कैसे होते हैं ?

(5) पखावज और तबले पे बजाये जाने वाले बोलों में क्या अन्तर है ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) तबले का सचित्र वर्णन कीजिये ?

(2) पखावज का सचित्र वर्णन कीजिये ?

(3) तबले व पखावज में क्या अन्तर है ?

प्रसिद्ध तबला वादक उ. ज़ाकिर हुसैन

पखावज वादक पं. भवानी शंकर

ताल वाद्य नगाड़ा

अध्याय 4

संगीतज्ञों की जीवनियाँ एवं पूर्ण परिचय

उ.अल्लारखा खाँ

अंतराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त तबला–वादक अल्लारखा खाँ के नाम से प्रायः सभी तबला–प्रेमी परिचित हैं। आपका जन्म सन 1851 ई. में पंजाब के रतनगढ़ (गुरदासपुर) में हुआ। इनके पिता का नाम हाशिमअली था, जो खेतीबाड़ी का काम करते थे।

वैसे तो बाल्यकाल से ही अल्लारखा को संगीत से लगाव था; किन्तु पन्द्रह–सोलह वर्ष की आयु में आपने पठानकोट की एक नाटक कंपनी में नौकरी कर ली। वहाँ आप उस्ताद कादिरबख्श के शिष्य खाँ साहब लालमुहम्मद के सम्पर्क में आए और उन्हीं से तबले की शिक्षा लेना प्रारंभ कर दिया। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें अपने चचा के साथ लाहौर जाने का सुयोग प्राप्त हुआ, वहाँ आपने उस्ताद कादिरबख्श से तबले की उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की।

लाहौर और दिल्ली के आकाशवाणी–केन्द्रों से कुछ दिनों तक तबला–वादन प्रसारित करने के बाद 1937 ई. में अल्लारखा बम्बई चले गए। वहाँ भी आपने आकाशवाणी–केन्द्र में नौकरी कर ली। चार–पाँच वर्ष के पश्चात् आप फिल्म–क्षेत्र के संपर्क में आ गए और कुछ फिल्मों में संगीत–निर्देशन का कार्य भी किया।

अल्लारखा खाँ का तबला–वादन पंजाब–घराने की विशेशताओं से ओत–प्रोत है। बेमिसाल तैयारी और सफाई आपकी वादन–शैली के विशेश गुण हैं। तंत्रकार तथा गायकों की संगति करने में आपको विशेश महत्त्व प्राप्त है। आपके सुपुत्र ज़ाकिर हुसैन खाँ ने भी तबला–वादन के क्षेत्र में बहुत यश प्राप्त किया है।

पं. कंठे महाराज

तबला–सम्राट पं. रामसहाय मिश्र के घराने से सम्बद्ध पं. कंठे महाराज भारतवर्ष के श्रेष्ठतम तबला–वादकों में गिने जाते थे। कंठे महाराज का जन्म सन् 1880 ई. के आस–पास बनारस में हुआ था। बाल्यकाल से ही आपकी शिक्षा पं. बल्देवसहाय मिश्र के द्वारा सम्पन्न हुई। तीन वर्ष शिक्षा देने के बाद बल्देवसहाय जी नेपाल चले गए। शिष्य से गुरू का वियोग सहन न हो सका, फलतः कंठे महाराज को भी नेपाल पहुँचना पड़ा और वहाँ जाकर पुनः चार वर्षों तक गुरू के सानिन्ध्य में कंठे महाराज ने तबले की उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की।

भारतवर्ष का प्रत्येक संगीत–प्रेमी पं. कंठे महाराज की तबला–वादन–कला से प्रभावित था। आपने देश में

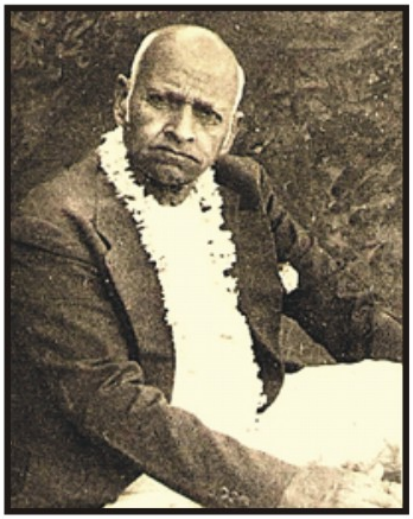

होने वाले विशाल संगीत –सम्मेलनों, आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों एवं समय–समय पर होने वाले अन्य सांस्कृतिक सम्मेलनों में तबला–वादन द्वारा जितनी ख्याति अर्जित की थी, उतनी ख्याति भारत के किसी विरले ही तबला–वादक ने प्राप्त की होगी।

बुजुर्ग और घरानेदार महारथी संगीतकारों के साथ वादन करने के लिए आपको ही आमंत्रित किया जाता था। दोनों तबलों को गिरफ्त में लेकर जब वे वीरासन की मुद्रा में बैठते थे तो देखते ही बनता था। बाएँ तबला पर आपका अद्‌भुत आधिपत्य था। कठिन ताल, विविध छंद, बनारस अंग की गत, परन और स्तुतियों का प्रदर्शन करने में आपका कोई जोड़ नहीं था। यदि कहा जाय कि कंठे महाराज बनारस परम्परा के साक्षात् प्रतीक थे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

1 अगस्त 1968 को वाराणसी में ही आपका स्वर्गवास हो गया। पं. कंठे महाराज के प्रमुख शिष्यों में उनके पुत्र पं. किशन महाराज का नाम भारतवर्ष के श्रेष्ठ तबला–वादकों में गिना जाता है।

सामता प्रसाद (गुदई महाराज)

बनारस के तबला–सम्राट 'प्रतप्पू महाराज' के घराने के तबला–वादकों में गुदई महाराज अपने समय के प्रसिद्ध तबला–वादक रहे है। आपका जन्म 18 जुलाई सन् 1920 ई. को काशी में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही आपके पिता पं. वाचाप्रसाद मिश्र के द्वारा प्रारम्भ हुई। पं. बाचाप्रसाद मिश्र स्वयं तबले के कलाकार थे, अतः 7 वर्ष की आयु तक इनके द्वारा गुदई महाराज को व्यवस्थित ढंग से शिक्षा मिलती रही। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् आपकी तालीम पं. बिक्कू जी मिश्र के द्वारा आगे बढ़ती रही। अत्यन्त रियाज और अथक परिश्रम द्वारा आपने इसमें अच्छी सफलता प्राप्त कर ली। सन् 1980 ई. में आपको भारत सरकार ने 'पद्मश्री' से विभूषित किया था।

आपके दो पुत्र हुए, कुमार और कैलाश। देश–विदेश में तो गुदई महाराज ने अपने वादन द्वारा तबला को सम्मान दिलाया ही, साथ ही फिल्म–क्षेत्र में भी आपने अच्छी ख्याति अर्जित की है। आपके उल्लेखनीय शिष्यों में – पं. सत्यनारायण वशिष्ठ (शैक्षणिक क्षेत्र) तथा पुत्र कुमारलाल (क्रियात्मक क्षेत्र) का नाम प्रमुख है।

नाना पानसे (पखावज वादक)

ये इन्दौर के निवासी थे। किशोरावस्था में एक बार इन्हें कीर्तन–मण्डली में अपने पिताजी के साथ काशी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वहाँ इनकी भेंट एक राजपूत ब्राह्मण से हुई, जिसका नाम जोधसिंह था। देवालयों में रामचरितमानस का पाठ, भजन–कीर्तन आदि इस ब्राह्मण के जीविकोपार्जन के साधन थे। शेष

समय एकांत में पखावज–वादन में व्यतीत होता था। नाना साहब इस ब्राह्मण के पखावज–वादन को सुनकर बड़े प्रभावित हुए और उनके हृदय में इस कला को सीखने की प्रबल उत्कंठा जाग्रत हो गई। अपने पिताजी से विशेश आग्रह करके पानसे ने इस ब्राह्मण से पखावज–वादन की शिक्षा पाने की स्वीकृति प्राप्त कर ली और समस्त शक्तियों को केन्द्रित करके कला की आराधना में जुट गए। मौखिक शिक्षा के अतिरिक्त लगभग छह घंटे तक आप दैनिक क्रियात्मक अभ्यास किया करते थे। काशी में नाना साहब का यह क्रम लगभग बारह वर्ष तक अविरल गति से चला। तपस्या फलीभूत हुई और नाना साहब पानसे पखावज–वादन में पूणरूपेण दक्ष होकर अपने निवास–स्थान को लौट पड़े।

इन्दौर आने पर नाना साहब ने प्राप्त विद्या में अपनी बुद्धि के अनुसार अनेक आवश्यक संशोधन किए। गणित की दृश्टि से जिन परन और बोलों में कुछ न्यूनता रह गई थी, उन्हें शास्त्र–मर्यादानुसार शुद्ध किया। स्वयं भी बहुत से नवीन ठेकों, बोलों, टुकड़ों, परनों आदि की रचना की और उन्हें अपने शिष्य–वर्ग को सिखाया। नाना साहब उद्‌भट और अद्वितीय वादक होने के साथ–साथ उच्च कोटि के शिक्षक भी थे। इनका शिक्षा देने का ढ़ंग बड़ा सरल और सुबोध था, इसीलिए पानसे का शिष्य–सम्प्रदाय विशाल तथा विस्तृत है। पखावज के अतिरिक्त तबला–वादन और नृत्य–कला में भी प्रवीण थे। अपने कुछ शिष्यों को इन्होंने नृत्य की शिक्षा भी दी। निज़ाम–सरकार की इच्छानुसार वामनराव चांदवड़कर को आपने तबला की शिक्षा देकर प्रवीण कर दिया। अपने एक पुत्र तथा लड़की के पुत्र को भी आपने अपनी कला में पारंगत कर दिया था।

नाना साहब निरभिमानी और सरल स्वभाव के व्यक्ति होने के साथ–साथ बड़े संताषी जीव थे। आपको इन्दौर का राज्याश्रय प्राप्त था। योग्यतानुसार राज्यकोश से आपको बहुत कम वेतन मिलता था, इस पर भी उन्हें असंतोष न था। एक बार ग्वालियर–नरेश महाराज जयाजीराव इन्दौर आए। उन्होंने नाना साहब का पखावज–वादन सुना और अत्यंत प्रभावित हुए। इन्दौर–नरेश श्री तुकोजीराव होल्कर से उन्होंने नाना साहब को ग्वालियर ले जाने की मांग की। इन्दौर–नरेश ने यह प्रश्न नाना साहब की मर्ज़ी पर छोड़ दिया, परन्तु नाना साहब ने अधिकाधिक आर्थिक प्रलोभन होते हुए भी ग्वालियर जाने के लिए अपनी स्वीकृति नहीं दी। इस घटना से आपकी संतोषी प्रवृत्ति का प्रमाण मिलता है।

तत्कालीन विद्वजनों के मतानुसार नाना साहब पानसे–जैसा ताल–मर्मज्ञ, मधुर और तैयार वादक एवं ताल–शास्त्री कोई दूसरा नहीं हुआ। आपको ताल–शास्त्र का नायक कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। आपका 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन्दौर नगर में ही निधन हो गया।

कुदऊसिंह पखावजी

पखावज–वादकों में कुदऊसिंह का नाम आज भी बड़े सम्मान और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। यह निर्विवाद सत्य है कि आप अपने समय के अद्वितीय पखावज–वादक हो गए हैं। आपका जन्म सन् 1815 ईस्वी के लगभग बांदा (उत्तर–प्रदेश) में हुआ था। पिता का नाम गप्पे या गुप्ते था। भवानी उर्फ श्री दास जी से आपने मृदंग की शिक्षा ग्रहण की थी।

उन दिनों उत्तर–भारत का प्रमुख नगर लखनऊ तथा मध्य भारत का प्रमुख नगर ग्वालियर संगीत के केन्द्र बने हुए थे। लखनऊ के शासक नवाब वाजिदअली शाह और ग्वालियर के महाराज जयाजीराब, दोनों ही

संगीत कला के अनन्य प्रेमी थे; इसी कारण उक्त दोनों नगरों में भारतीय संगीत भली–भांति फल–फूल रहा था। एक बार वाजिदअली साहब के दरबार में पखावज–वादन के संबंध में कुछ प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई। इस प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करने वाले को नवाब की ओर से एक हजार रुपए के पुरस्कार की घोषणा कर दी गई। कुदऊसिंह ने इस प्रतियोगिता में जोधसिंह नामक पखावजी को परास्त कर कीर्ति और संपत्ति, दोनों ही प्राप्त कीं। नवाब ने इन्हें 'कुंवरदास' की उपाधि से विभूषित किया।

निःसंदेह कुदऊसिंह का मृदंग–वादन इतना कोमल और गंभीर होता था कि स्वर का आविर्भाव होते ही गायक, वादक और श्रोता सभी तन्मय हो जाते थे। आपके विषय में अनेक किंवदंतियां प्रसिद्ध हैं कहते हैं कि नवाब रामपुर के यहां सुर–सिंगार–वादक हुसैन खां और कुदऊसिंह में अविस्मरणीय प्रतियोगिता हुई। द्रूतलय में प्रायः बारह घड़ी तक बजाते–बजाते जब हुसैन खां की अंगुलियां थककर विश्राम करने को विवश हुई तो नवाब ने एक साथ दोनों वाद्यों पर एक एक हाथ रख दिया। कुदऊसिंह शेष रातभर दुगुनी लय में मृदंग बजाते रहे। तानसेन के वंशज प्रसिद्ध सितार–वादक अमृतसेन से भी उनका मुकाबला हुआ था।

तत्पश्चात् श्री कुदऊसिंह ग्वालियर–दरबार में पहुंचे। वहां पहुचकर आपने बड़े गर्व के साथ महाराज के सम्मुख अपने सर्वश्रेष्ठ पखावज–वादक होने की घोषणा की और अपने लिए अविजित पत्र मांगा। परंतु दैव का नियम है कि घमंड एक–न–एक दिन अवश्य चूर होता है। परीक्षा के लिए ग्वालियर–दरबार के वृद्ध ध्रुवपद–गायक नारायण शास्त्री की संगति के लिए कुदऊसिंह बिठाए गए। ध्रुवपद शुरू हुआ, कई बार प्रयत्न करने पर भी कुदऊसिंह ठीक–ठीक सम की पहचान नहीं कर सके और इस प्रकार भरे दरबार में इनका गर्व चूर हो गया। तत्पश्चात महाराज जयाजीराव ने इनका वादन सुना। मीठा और असीमित तैयार हाथ, स्पष्ट और नियमबद्ध बाज सुनकर महाराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कुदऊसिंह को अपने दरबार में रख लिया।

कहते हैं कि सन् 1857 ई. के विद्रोह के समय आप दतिया चले गए थे। दतिया उस समय विद्रोहियों का आश्रय – स्थल था। कुदऊसिंह अंतिम दिनों तक दतिया में ही रहे। वहां उन्हें प्रतिदिन सात राजाशाही (चांदी का रुपया) दी जाती थीं। वे दानी भी थे। प्रसिद्ध है कि आप अपने शिष्यों के साथ तीन मोमबत्तियां जलाकर साधना किया करते थे। उन्होंने प्रायः एक हजार परणों का आविष्कार किया था।

कुदऊसिंह के बारे में एक किंवदंती भी चली आती है कि इनकी 'गजपरन' के परीक्षार्थ एक बार इनके ऊपर हाथी भी छोड़ा गया और परन बजाते ही वह हाथी भयभीत होकर भाग गया। इस कहावत से यही तथ्य प्राप्त होता है कि आप उस समय के बहुत श्रेष्ठ तथा प्रभावशाली वादक थे। ऐसा सामर्थ्यवान पखावज वादक भारतीय संगीत के इतिहास में कोई विरला ही निकलेगा। इनकी शिष्य–परंपरा सुदृढ़ और विशाल थी। कुदऊसिंह का व्यक्तित्व बेहद रोबीला था। वे ऊँचे पूरे गौर वर्ण के व्यक्ति थे। उनकी भुजाएं भी कुछ लंबी थीं। पीले रंग का अलफा, तहमद, बाघ–चर्म की टोपी, माथे पर सिंदूर के तीन आड़े तिलक, दाहिने हाथ पर लँगड़ी बुलबुल तथा दाहिने पैर में बंधी जंजीर उनके व्यक्तित्व की विशिष्टताएं थीं। आपका देहावसान 95 वर्ष की आयु में हुआ माना जाता है। आपकी शिष्य परंपरा में मऊ (आजमगढ़) के अद्वितीय मृदंग–वादक मदनमोहन 'सितारे–हिंद' और टीकमगढ़ के हरचरनलाल झल्ली का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) नाना पानसे किस विधा के संगीतकार थे ?
(2) कण्ठे महाराज कौनसा वाद्य बजाते थे ?
(3) सामता प्रसाद का उपनाम क्या था ?
(4) अल्लारक्खा खाँ किस घराने के थे ?
(5) कुदऊ सिंह कौनसा वाद्य बजाते थे ?
(6) कण्ठे महाराज किस वाद्य को बजाते थे ?
(7) सामता प्रसाद का जन्म स्थान क्या है ?
(8) अल्लारक्खा खाँ किस वाद्य को बजाते थे ?
(9) नाना पानसे का जन्म स्थान कहाँ है ?
(10) कुदऊ सिंह का जन्म स्थान कहाँ है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) अल्लारक्खा खाँ ने तबला वादन किससे सीखा ?
(2) कण्ठे महाराज के प्रमुख शिष्य कौन हैं ?
(3) नाना पानसे पखावज के अलावा और कौनसी संगीत विधा जानते थे ?
(4) कुदऊ सिंह के गुरू कौन थे ?
(5) कुदऊ सिंह की वादन शैली की प्रमुखता क्या थी ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) पाठ्यक्रम में सम्मिलित कलाकारों का जीवन परिचय दीजिये ?
(2) पाठ्यक्रम में सम्मिलित कलाकारों की वादन शैली का वर्णन कीजिये ?
(3) पाठ्यक्रम में सम्मिलित कलाकारों की शिष्य परंपरा का वर्णन कीजिये ?

रूद्रवीणा

अध्याय 5

प्रचलित तालें

परिचय

झप ताल (मात्राएँ 10, भाग 4)

झपताल तबले पर बजायी जानेवाली ताल है। झपताल में 10 मात्राएँ एवं 4 भाग होते हैं। पहली मात्रा पर पहली ताली तीसरी मात्रा पर दूसरी ताली, छठी मात्रा पर खाली और आठवीं मात्रा पर तीसरी ताली होती है। यह ताल बड़े ख्याल, छोटे ख्याल तथा सुगम संगीत के साथ भी कभी–कभी बजायी जाती है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धिं	ना	धिं	धिं	ना	तिं	ना	धिं	धिं	ना
X		2			0		3		

चौताल या चार ताल (मात्राएँ 12, भाग 6)

चौताली पखावज/मृदंग पर बजायी जानेवाली ताल है। इसके बोल खुले होते हैं। चौताल में 12 मात्राएँ और 6 भाग होते हैं। पहली मात्रा पर ताली, तीसरी मात्रा पर खाली, पांचवी मात्रा पर दूसरी ताली, सातवीं मात्रा पर खाली एवं नवमीं और ग्याहरवीं मात्रा पर तीसरी और चौथी ताली लगती है। यह ताल ध्रुपद के साथ पखावज पर बजायी जाती है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धा	धा	दिं	तां	किट	धा	दिं	ता	तिट	कट	गदि	गन
X		0		2		0		3		4	

त्रिताल (मात्राएँ 16, भाग 4)

तबले पर बजायी जानेवाली त्रिताल ताल में 16 मात्राएँ एवं 4 भाग होते हैं। पहली मात्रा पर पहली ताली, पांचवीं मात्रा पर दूसरी ताली, नवमीं मात्रा पर खाली और तेहरवीं मात्रा पर तीसरी ताली लगती है। यह ताल बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल आदि गायन वादन के साथ बजायी जाती है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धि	धिं	धा
X				2				0				3			

एकताल (मात्राएँ 12, भाग 6)

तबले पर बजायी जाने वाली एक ताल में 12 मात्राएं एवं 6 भाग होते हैं। पहली मात्रा पर सम यानि पहली

ताली, तीसरी मात्रा पर खाली, पांचवी मात्रा पर दूसरी ताली तथा सातवीं मात्रा पर खाली होकर नवमीं और ग्याहरवीं मात्रा पर तीसरी और चौथी ताली लगाते हैं। यह बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल आदि गायन–वादन शैली के साथ बजायी जाती है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
X		0		2		0		3		4	

धमार (मात्राएँ 14, भाग 4)

धमार ताल धमार गायकी के साथ पखावज पर बजायी जाती है। इस ताल में 14 मात्राऐं तथा चार भाग होते हैं। खुले बोल बजाये जाते हैं तथा पहली मात्रा पर सम यानि ताली, छठी मात्रा पर दूसरी ताली, आठवीं मात्रापर खाली पर ग्याहरवी मात्रा पर तीसरी ताली लगाई जाती है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
X					2		0			3			

सूलताल (मात्राएँ 10, भाग 5)

सूल ताल भी पखावज पर बजायी जाती है। इसके भी खुले बोल होते हैं। इस ताल में दस मात्रा और 4 भाग होते हैं। पहली मात्रा पर ताली, तीसरी मात्रा पर खाली, पांचवी मात्रा पर दूसरी ताली, सातवी मात्रा पर तीसरी ताली तथा नवमी मात्रा पर खाली बजायी जाती है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
X		0		2		3		0	

तालों की लयकारी

ताल– त्रिताल – (मात्रा 16, भाग 4)

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धि	धिं	धा
चिन्ह	X				2				0				3			

दुगुन

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातीं	तिंता	ताधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातीं	तिंता	ताधिं	धिंधा
ताली	X				2				0				3			

चौगुन

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंतां	ताधिंधिंधा
चिन्ह	X				2				0				3			

ताल–झपताल – (मात्रा 10, भाग 4)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धिं	ना	धिं	धिं	ना	तिं	ना	धिं	धिं	ना
X		2			0		3		

दुगुन (झपताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धिं	ना	धिं	धिं	ना	धींना	धींधीं	नातिं	नाधीं	धींना
X		2			0		3		

चौगुन (झपताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धिं	ना	धिं	धिं	ना	तिं	ना	ऽऽधींना	धींधींनाति	नाधींधींना
X		2			0		3		

ताल– एकताल – (मात्रा 12, भाग 6)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
X		0		2		0		3		4	

दुगुन (एकताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	धिंधिं	धागेतिरिकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना
X		0		2		0		3		4	

चौगुन (एकताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकत्ता	धागेतिरकिटधिंना
X		0		2		0		3		4	

सूलताल (मात्राएँ 10, भाग 5)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	कत	गदि	गन
X		0		2		3		0	

दुगुन (सूलताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धा	दिं	ता	किट	धाधा	दिंता	किटधा	तिटकत	गदिगन
X		0		2		3		0	

चौगुन (सूलताल)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	तिट	ऽऽधाधा	दिंताकिटधा	तिटकतगदिगन
X		0		2		3		0	

धमार (मात्राएँ 14, भाग 4)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धि	ट	धि	ट	धा	ऽ	ग	ति	ट	ति	ट	ता	ऽ
X					2		0			3			

दुगुन (धमार)

1	2	3	4	5	6	7
कधि	टधि	टधा	ऽग	तिट	तिट	ताऽ
X					2	

चौगुन (धमार)

1	2	3	4	5	6	7
कधिटधि	टधाऽग	तिटतिट	ताऽकधि	टधिटधा	ऽगतिट	तिटताऽ
X					2	

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) त्रिताल में कितनी मात्रा होती है ?

(2) एकताल में कितनी मात्रा होती है?

(3) चौताल में कितनी मात्रा होती है ?

(4) धमार में कितनी मात्रा होती है ?

(5) झपताल में कितनी मात्रा होती है ?

(6) सूलताल में कितनी मात्रा होती है ?
(7) चौताल के बोल कैसे होते हैं ?
(8) एकताल में कितने खण्ड होते हैं ?
(9) सूलताल में कितने खण्ड होते हैं ?
(10) एकताल और चौताल में क्या फ़र्क होता है ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) एकताल का विवरण दीजिये ?
(2) त्रिताल का सम्पूर्ण विवरण दीजिये ?
(3) चौताल तथा धमार को लिखिये ?
(4) सूलताल को लिखिये ?
(5) झपताल का विवरण दीजिये ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) पाठ्यक्रम में आयी कौन–कौनसी तालें पखावज पर बजायी जाती है ? उनका सम्पूर्ण विवरण दीजिये?
(2) पाठ्यक्रम में आयी सभी तालों की दुगुन–चौगुन लिखिये ?
(3) पाठ्यक्रम में आयी समान मात्राओं वाली तालों का तुलनात्मक वर्णन कीजिये ?

प्राचीन ताल वाद्य – डमरू

इल्मे–मोसिकी, इल्मे–सीना है, इल्मे सफ़ीन नही।

संगीत विद्या दिल पर लिखने योग्य है, पृष्ठों (कागज़ों) पर लिखने योग्य नहीं। – उ. बिस्मिल्लाह खां

परिशिष्ठ

त्रिताल (मात्राएँ 16, भाग 4)

मुखड़ा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	तिरकिट	धातिर	किटधा	तिरकिट
X				2				0				3			
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	धाऽ	तिरकिट	धाऽ	तिरकिट
X				2				0				3			

कायदा

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धा	ति	ट	धा	धा	ती	ना	ता	ता	ति	ट	धा	धा	ती	ना
X				2				0				3			

पलटा

धाधा	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तीना	ताता	तिट	ताता	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तीना
धाधा	धाधा	धाधा	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तीना	ताता	ताता	ताता	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तीना
तिट	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तीना	तिट	तिट	ताता	तिट	धाधा	तिट	धाधा	तीना
धाति	टधा	तिट	धाधा	धाति	टधा	धाधा	तिना	ताति	टता	तिट	ताता	धाति	टधा	धाधा	तीना
X				2				0				3			

पेशकार

धींक्डधिंना	तित्धाघेना	धातिधाति	धाधातिना	तकधिड़ाऽनधा	तूनातिरकिट	धातिरकिटधिं	धाधातीना
X				2			
किटतकतिऽक्ड	तिंनाधिंना	तिनगिनतिनताके	त्रकतिनतिनागिना	तकधिड़ाऽनधाऽ	तूनाक्ड़धान	धातूनाक्ड़धा	ऽनधातूना
0				3			

उ. अहमद जान थिरकवा
तबला वादक

पं. अनोखेलाल मिश्रा
तबला वादक

डॉ. आबान–ई–मिस्त्री
तबला वादिका

राजस्थान के लोक वाद्य

कमायचा

रावण हत्था

गोपीचन्द

तन्दूरा / वीणै

ढोलक

ताशा

ढोल

डफ / चंग

घेरा

राजस्थान के लोक वाद्य

अलगोजा

पूंगी / बीन

मारचग

बांकिया

मुरला

खड़ताल

झांझ

घुंघरु

कथक नृत्य

यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो, दृष्टिस्ततो मनः ।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः ।।

अर्थात जहाँ हाथ जाए वहाँ दृष्टि साथ जानी चाहिये, जहाँ दृष्टि जाती है वहाँ मन केन्द्रित होना चाहिये, जहाँ मन केन्द्रित होगा वहाँ भाव उत्पन्न होगा तथा जहाँ भाव होगा वहाँ रस की सृष्टि होती है।

अध्याय 1

संगीत व नृत्य संबंधी पारिभाषिक शब्द

लय

ततः कला काल कृतो लय कृत्यभि संज्ञित : ।
त्रयो लायस्तु विज्ञेया द्रुत मध्य विलम्बिताः ।। – नाट्य शास्त्र

अर्थात काल में कलाओं के मध्य स्थित विश्रांति को लय की संज्ञा दी गई है जिसके द्रुत, मध्य व विलंबित तीन भेद हैं।

''क्रियानन्तर विश्रान्ति लयः'' – संगीत रत्नाकर

अर्थात क्रिया के मध्य विश्रांति को लय माना है। लय का संबंध गति से है। एक समान गति में कोई क्रिया लय युक्त या लयबद्ध होती है। इस क्रिया में समय की एक समान–चाल या अखंड गति, लय कहलाती है। संगीत के संदर्भ में– ताल में क्रिया का विस्तार या दो क्रियाओं के बीच की दूरी लय है।

उदाहरण 1. घड़ी

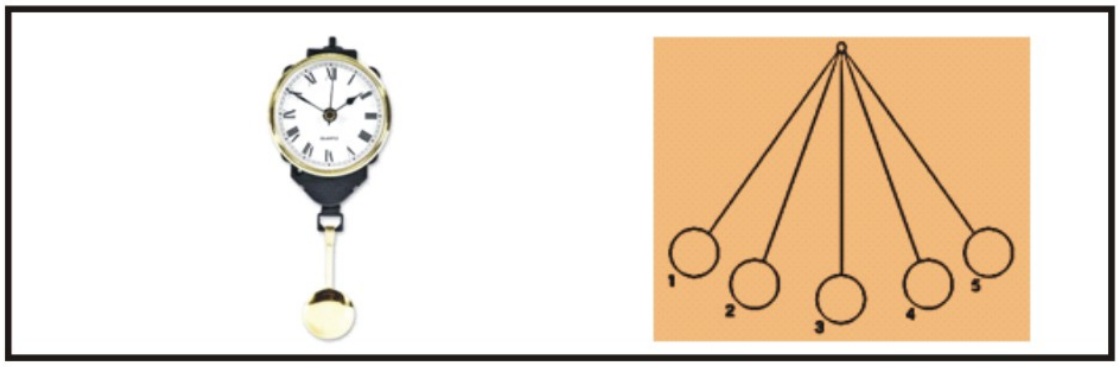

घड़ी में पेंडुलम (लोलक) अथवा सैकंड की सुई एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमती है। इस क्रिया में पहले व दूसरे स्थान के मध्य की समान दूरी लय है।

उदाहरण 2. अंक

- अंक के इस क्रम में 1 2 3 4 आदि अंक तो ताल कहलाएँगे ।
- अंकों का विस्तार अथवा 1 व 2 आदि संख्याओं के बीच की दूरी लय है।

सांगीतिक संदर्भ में यहाँ अंको के मध्य का क्षेत्र या एक से दूसरे अंक बोलने के दौरान की दूरी लय कहलाएगी। लय में क्रिया की गति एक समान कायम रहती है। प्रकृति के समस्त कार्य लयबद्ध है। ब्रह्मांड

में पृथ्वी व अन्य ग्रहों का घूमना, ऋतु चक्र, श्वसन क्रिया आदि समस्त कार्य संतुलन, निश्चित गति व लय से ही सम्पन्न हो सकते हैं। संगीत कला, लय व ताल के बिना निष्प्राण है। मुख्य रूप से लय तीन प्रकार की होती है। – विलंबित लय, मध्य लय, द्रुत लय ।

विलंबित लय

अर्थात विलंब से, देरी से। जिस क्रिया में गति/लय/चाल सामान्य से धीमी हो, उसे विलंबित लय कहते हैं। यह मध्य लय की आधी होती है।

मध्य लय

अर्थात सामान्य चाल में। विलंबित लय से तेज व द्रुत लय से धीमी क्रिया मध्य लय कहलाती है।**ज**

अर्थात तेजी से। मध्य लय से दुगुनी गति में की गई क्रिया द्रुत लय में होगी।

लय के तीनों प्रकारों को घड़ी में सैकंड की सुई से भी समझा जा सकता है –

घड़ी की सुई का चलना	:	1	2	3	4	
दो सैकंड में 1 नंबर बोलना	:	1	–	2	–	विलंबित लय
सैकंड की सुई के साथ बोलना	:	1	2	3	4	मध्य लय
1 सैंकड में दो नंबर बोलना	:	1,2	1,2	1,2	1,2	द्रुत लय

ताल

''ताल काल क्रिया मानम्'' – नाट्यशास्त्र

अर्थात समय नापने का साधन ताल है।

तकारः शंकर प्रोक्तो लकारः पार्वती स्मृताः।
शिव शक्ति समायोगात् ताल इत्यभिधीयते।।

शास्त्रों में शिव व शक्ति का संयोग (तांडव व लास्य) ताल कहलाता है। संगीत को कालबद्ध प्रतिष्ठित करने के लिये ताल की ज़रूरत होती है। ताल को अनन्त असीम ''काल'' के द्वारा ही नापा जा सकता है। गायन, वादन, नृत्य आदि क्रियाओं को विशिष्ट बोल समूहों के माध्यम से समय में बांधना/स्थापित करना/प्रतिष्ठित करना ताल है। इसे नापने के लिये समय के अंग बनाने आवश्यक होते हैं।

समय का किसी नियमित गति से भ्रमण करना लय है। लय को समान खंडों में विभक्त करना मात्रा है तथा विभिन्न संख्या के मात्रा समूहों को विशिष्ट बोलों से युक्त करना ताल है। ताल की संरचना में मात्रा,विभाग,ताली,खाली,आदि तत्व दिखाई देते हैं। गहन अध्ययन हेतु विधार्थी इसी पुस्तक में अन्यत्र ताल के दस प्राण का अध्ययन अवश्य करें। विभिन्न मात्राओं के समूह को एक विशिष्ट ताल का नाम दिया जाता है। जैसे – 8 मात्रा का समूह कहरवा, 10 मात्रा का समूह झपताल, 12 मात्रा का समूह इकताल, 16 मात्रा का समूह त्रिताल आदि।

उदाहरण –झपताल (10 मात्रा, 4 भाग)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धीं	ना	धीं	धीं	ना	तीं	ना	धीं	धीं	ना
×		2			0		3		

यह 10 मात्रा के ताल चक्र का एक उदाहरण है।

आवर्तन

अर्थात आवृत्ति। ताल में पहली मात्रा (सम) से अंतिम मात्रा तक के पूरे एक भाग को गिनकर पुनः पहली मात्रा (सम) तक आने की प्रक्रिया को एक आवृत्ति, आवर्तन या चक्र नामों से जानते हैं। वस्तुतः गायन, वादन, नृत्य कलाओं में ताल के (समय बद्ध) चक्रों की आवृत्ति निरन्तर चलती रहती है। इसके सहारे ही संगीत की विभिन्न क्रियाएँ की जाती हैं।

ठेका

ताल वाद्यों पर बजाए जाने वाले बोलों की एक विशिष्ट रचना अथवा बोलों के समूह को उसके मूल स्वरूप में बजाना ठेका कहलाता है। जैसे – ताल कहरवा

1	2	3	4	5	6	7	8
धा	गे	न	ति	न	क	धी	न
X				0			

तत्कार

कथक नृत्य की प्रारंभिक शिक्षा में तत्कार का विशेष महत्त्व है। तत्कार अंग कथक की अपनी निजी विशेषता है। यह सिर्फ कथक नृत्य शैली में ही दृष्टव्य है। तत्कार में ताल के बोलों को पैर से निकालने का अभ्यास किया जाता है। जिस प्रकार तबला वादन में ताल के अंतर्गत कायदा व उसके पलटे सिखाये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार कथक नृत्य में ताल के विभिन्न बोलों पर ततकार व उसके पलटों का अभ्यास होता है इससे तैयारी में उतरोत्तर निखार आता है। नृत्य के दौरान तत्कार से द्रुत लय में पदाघात व घुंघरू की ध्वनि से चमत्कार दिखाये जाते हैं।

उदाहरण–त्रिताल ठेका

X	2	0	3
धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
तत्कार के बोल			
ता थेई थेई तत्	आ थेई थेई तत्	ता थेई थेई तत्	आ थेई थेई तत्
पैर (दांया–बांया)			
दां बां दां बां	बां दां बां दां	दां बां दां बां	बां दां बां दां

इसमें लय के विविध भेदों से विचित्रता दिखाते हुए ''लय बांट'' तथा बोल में विभिन्न बदलाव दर्शाते हुए ''बोल बांट'' प्रदर्शित करते हैं

ठाठ

थाट, ठाठ, ठाट शब्द गायन, वादन व नृत्य में विभिन्न अर्थभेदों से प्रचलित हैं। कथक नृत्य के आरंभ में अथवा किसी भी तोडे आदि के बाद किसी आकर्षक भंगिमा में खड़े होने को ठाठ कहते हैं। लखनऊ घराने में ठाठ मुद्रा में बांये पैर पर खड़े होकर बांये हाथ को बांयी ओर फैलाते हैं। जयपुर घराने में इसके विपरीत दायें हाथ पैर का कार्य करते हुए कलाई व गर्दन का आकर्षक संचालन होता रहता है।

गायन, वादन शब्दावली में राग की उत्पत्ति का कारक ठाठ है। उत्तर भारतीय परंपरा में 10 थाट – बिलावल, कल्याण, खमाज, काफी, आसावरी, भैरवी, तोड़ी, भैरव, पूर्वी, मारवा मान्य हैं वहीं कर्नाटक संगीत में 72 मेल/थाट व्यवस्था है।

आमद

आमद का अर्थ होता है 'आगमन'या प्रवेश। आमद में नृत्य का आरंभ एक खास अंदाज में नृत्य के बोलों पर विलंबित लय में आगे व तिरछे बढ़ते हुए करते हैं, फिर दायें हाथ को सिर से स्पर्श करते हुए बांये हाथ को फैलाकर भावपूर्ण मुद्रा में खड़े होते हैं।

सलामी (नमस्कार)

नृत्य में जब किसी तोड़े के बाद नृत्यकार सभा को सलाम करता है, यह विशेष अंग सलामी कहलाता है। सलामी का प्रचार मुगल दरबारों से प्रचार में आया। धीरे–धीरे सलामी कथक की एक विशेष अदा व पहचान बन गई। वर्तमान में पुष्पांजलि व रंग प्रवेश पूजा भी समान रूप से प्रचलित है। लखनऊ घराने में सलामी तथा जयपुर घराने में प्रणाम/नमस्कार का चलन है।

भाग–ब

असंयुक्त हस्त मुद्रा अथवा विन्यास

नंदिकेश्वर के 'अभिनय दर्पण' के अुनसार नर्तक को गीत अवश्य गाना चाहिये। गीत के अर्थ को हाथों व अंगुलियों द्वारा व्यक्त करना चाहिए। गीत के अंतर्भाव को आँखों द्वारा व्यक्त करना चाहिये तथा गीत में निहित ताल को पाँवों द्वारा व्यक्त करना चाहिये। इस संदर्भ में अभिनय दर्पण का वक्तव्य –

यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो, दृष्टिस्ततो मनः ।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः ।।

अर्थात जहाँ हाथ जाए वहाँ दृष्टि साथ जानी चाहिये, जहाँ दृष्टि जाती है वहाँ मन केन्द्रित होना चाहिये, जहाँ मन केन्द्रित होगा वहाँ भाव उत्पन्न होगा तथा जहाँ भाव होगा वहाँ रस की सृष्टि होती है।

इस प्रकार नृत्य के अन्तर्गत हस्तमुद्राओं की अपनी एक अलग भाषा है जिसके द्वारा नर्तक, नृत्य की गहराई को सुगमता से प्रस्तुत कर पाता है, जागरूक व रूचिवान श्रोता इस गहराई को ग्रहण कर आनंदित होता है।

व्यावहारिक जीवन में भी हम अपने विचारों व भावों की अभिव्यक्ति के लिये संकेतों का प्रयोग करते हैं। मूक–बधिर व्यक्ति तो संपूर्ण जीवन केवल संकेतों के माध्यम से ही व्यतीत कर पाते हैं। पशु–पक्षियों में भी संकेत के स्वरूप दिखाई देते हैं। हाथ, पाँव, आँख, गर्दन व मुख की विविध मुद्रा अथवा विन्यास, हम सभी दैनिक जीवन में प्रयुक्त करते हैं। इन्हीं विन्यास अथवा मुद्राओं का शास्त्रोक्त निर्धारित स्वरूप नृत्य में प्रयुक्त होता है, जिसके अधिकांश विन्यास प्रकृति से ही ग्रहण किए गये हैं।इसमें हाथों व ऊँगलियों की भिन्न–भिन्न विशेष स्थिति होती है, शास्त्रोक्त दो प्रकार की मुद्राएँ है – असंयुक्त तथा संयुक्त

(असंयुक्त हस्त मुद्रा)

(मुद्रा प्रयोग हेतु उंगलियों के नाम)

(संयुक्त हस्तमुद्रा)

एक हाथ द्वारा की जाने वाली मुद्रा असंयुक्त तथा दोनों हाथों की मुद्रा संयुक्त मुद्रा मानी जाती है।भरत के 'नाट्यशास्त्र', शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' तथा नंदीकेश्वर कृत 'अभिनय दर्पण' आदि प्रामाणिक ग्रंथों में सभी अंगों से बत्तीस प्रकार के अंगहार, 108 करण तथा मंडलों का उल्लेख है जो नृत्य तथा अभिनय के गहन अध्ययन तथा उच्च कक्षाओं हेतु विषय वस्तु हैं।

असंयुक्त हस्तमुद्रा

(एक हाथ से किया जाने वाला विन्यास)

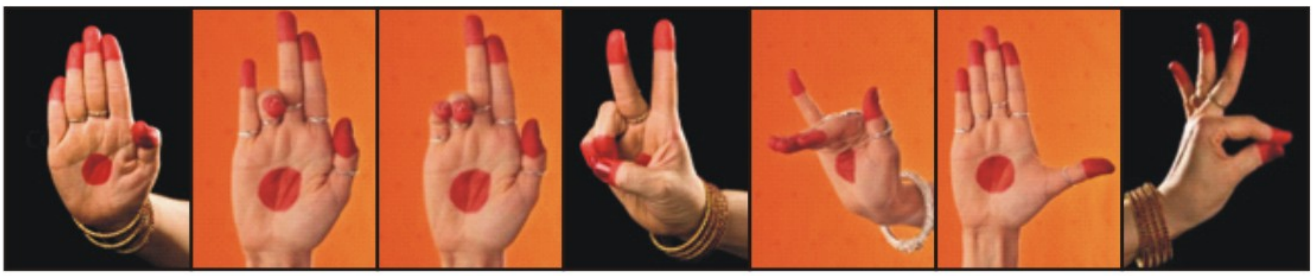

पताका त्रिपताका अर्ध पताका कर्तरीमुख मृगशीर्ष अर्द्धचन्द्र हंसस्य

शुकतुंड मुष्ठि सूची चन्द्रकला शिखर कपित्थ कटकामुख

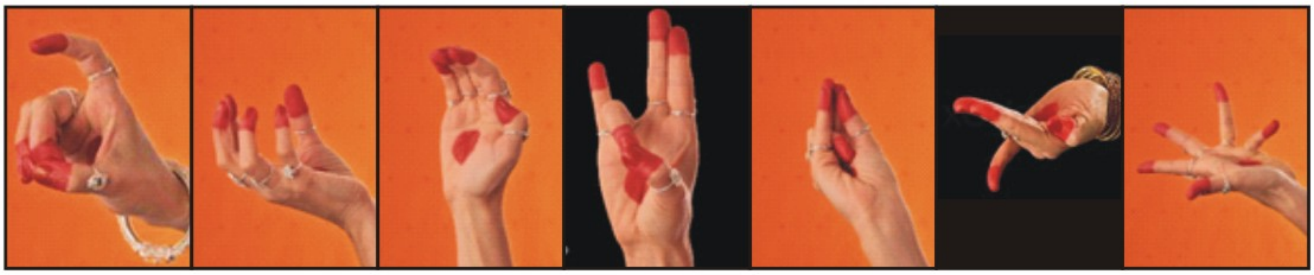

ताम्रचूड पद्मकोष सर्पशीर्ष मयूर कांगुल हंसपक्ष अलपद्म

चतुर भ्रमर अराल सिंहमुखा त्रिशूल मुकुल सन्दश

असंयुक्त हस्तमुद्रा तालिका (एक हाथ से किया जाने वाला विन्यास)

मुद्रा नाम	अर्थ	मुद्रा नाम	अर्थ	मुद्रा नाम	अर्थ
पताका	ध्वजा	त्रिपताका	ध्वज के तीन भाग	अर्ध पताका	अर्ध ध्वज
कर्तरीमुख	कैंची	मयूर	मोर	अर्द्ध चन्द्र	आधा चन्द्रमा
अराल	पर्वत का शिखर	शुकतुंड	तोते की चोंच	मुष्ठि	बंद हाथ, मुट्ठी
शिखर	श्रेष्ठ	कपित्थ	सौभाग्य लक्ष्मी	कटकामुख	कैंकड़ा
सूची	सुई	चन्द्रकला	चन्द्रमा की एक स्थिति	पद्मकोष	कमलदल
सर्पशीर्ष	सांप का फन	मृग शीर्ष	हिरण का सिर	सिंहमुखा	शेर का मुख
कांगुल	जलीय पुष्प	अलपद्म	खिलता हुआ कमल	चतुर	होशियार
भ्रमर	भंवरा	हंसस्य	हंस का सिर	हंसपक्ष	हंस के पंख
मुकुल	पुष्प कली	सन्दश	उठती आग, बलिदान	ताम्रचूड	मुर्गा
त्रिशूल	शिव प्रतीक				

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- समय का नियमित, समान या अखंड गति से भ्रमण करना लय है। ताल में दो क्रियाओं के बीच की विश्रान्ति लय कहलाती है।
- लय तीन प्रकार की है – विलंबित, मध्य व द्रुत
- गायन, वादन, नृत्य आदि क्रियाओं को समय के किसी चक्र में स्थापित करना ताल है। जैसे–कहरवा, दादरा।
- आवर्तन – आवृत्ति । गायन, वादन, नृत्य में ताल कीएक चक्रिक पूर्णता, आवृत्ति/आवर्तन कहलाता है।
- ताल वाद्यों की मूल रचना 'ठेका' है।
- तत्कार, कथक नृत्य का अंग है जिसमें धुंघरू व पदाघातों से तैयारी व प्रदर्शन किया जाता है।
- नृत्य के दौरान ताल के सम स्थान पर किसी प्रभावी शारीरिक मुद्रा की प्रस्तुति ठाठ है।
- गायन–वादन में स्वरों का ढांचा जो राग उत्पत्ति का कारक है, ठाठ कहलाता है।
- आमद – आगमन, एक खास अंदाज एवं भावपूर्ण मुद्रा में उपस्थित होना।
- किसी तोड़े के बाद सभा को सलाम करना 'सलामी' कहलाता है। जयपुर घराने में इस हेतु नमस्कार का चलन है।
- एक हाथ द्वारा की जाने वाली मुद्रा असंयुक्त तथा दोनों हाथों की मुद्रा संयुक्त मुद्रा मानी जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. लय का संबंध किससे है ?
   (अ) स्वर (ब) गति (स) वेशभूषा (द) अलंकार
2. कहरवा ताल में कितनी मात्रा होती है ?
   (अ) सात (ब) आठ (स) दस (द) बारह
3. मुख्यतः लय कितने प्रकार की होती है ?
   (अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पाँच
4. कथक नृत्य में तत्कार का प्रदर्शन किया जाता है ?
   (अ) आँखों से (ब) वेशभूषा से (स) पाँवों से (द) वाद्य से
5. कथक नृत्य में 'ठाठ' का अर्थ है ?
   (अ) खड़े होने की विशेष मुद्रा (ब) राग का जनक (स) तोड़ा–टुकड़ा (द) तिहाई लगाना

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लय की परिभाषा देकर इसके प्रकार बताइये ?
2. ताल किसे कहते हैं ?
3. तत्कार का उदाहरण लिखिए ?
4. 'आमद' को परिभाषित कीजिए ?
5. गायन, वादन व नृत्य में ठाठ की भूमिका समझाइये ?

मुद्रा पहचानकर नाम लिखिए।

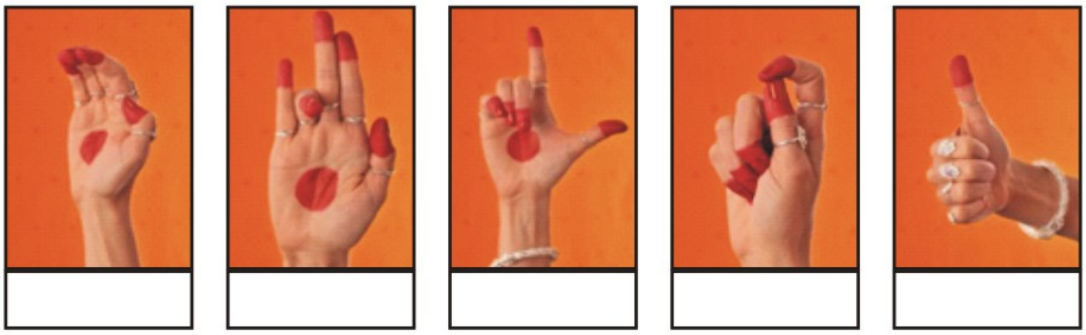

उत्तर–1–ब, 2–ब, 3–ब, 4–स, 5–अ

शिक्षकों हेतु अनुदेश :

- परिभाषाओं को प्रायोगिक तौर पर उदाहरण सहित समझाया जाए।
- मुद्राओं का प्रदर्शन, कम से कक्षा में तथा मंच पर करवावें तथा इनके व्यावहारिक प्रयोग को भी समझावें।

अध्याय 2

कथक नृत्य के घराने

घराना

घराना शब्द से अभिप्राय, किसी शैली, परंपरा, पंथ अथवा शाखा से है। आंग्ल भाषा में इसे 'स्कूल' तथा दक्षिण में 'संप्रदाय' कहा जाता है। किसी एक घराने में अन्य घराने से कुछ भिन्न तत्व अवश्य होते हैं। इन्हीं भिन्न तत्वों के प्रति निष्ठा घराने की जीवंतता बन जाती है। संगीत की प्रत्येक शैली में घराने उपलब्ध हैं।

ख्याल गायन में – ग्वालियर, आगरा, किराना, पटियाला.....

ध्रुपद में बाणियां– गोबरहार, खंडार, डागुर, नोहार

ठुमरी में – पूरब अंग, पंजाब अंग

तबला में – अजराड़ा, फर्रूखाबाद, पंजाब....

कथक में – जयपुर, लखनऊ, बनारस, रायगढ़ घराने आदि

कला के किसी एक विषय अथवा शैली में, उसके सौंदर्य के विभिन्न आयामों में से किसी एक या कुछ आयामों पर कोई व्यक्ति इतना अधिक कार्य करें, कि उसका वह पक्ष अन्य से अलग तथा मूल कला अथवा शैली के प्रभाव में अभिवृद्धि करे साथ ही उसके शिष्य–प्रशिष्य भी उसका अनुसरण करे तो वह घराना कहलाएगा।

विद्यार्थी इसे यूं भी समझ सकते हैं– एक कस्बे/शहर में कुछ विद्यालय हैं, सभी में समान पाठ्यक्रम, समान पुस्तकें, अच्छे अध्यापक व श्रेष्ठ अनुशासन, परिणाम आदि समान विशेषताएँ हैं। लेकिन एक

विद्यालय सांस्कृतिक गतिविधि में श्रेष्ठ है, दूसरा खेलकूद में, तीसरा प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी में, चौथा सामाजिक सहभागिता में । शिक्षा की गुणवत्ता कायम रखते हुए किसी एक अन्य गतिविधि का उत्कृष्ट प्रदर्शन उस विद्यालय की निजी विशेषता व अन्य से अपने आप को अलग बनाती है और समाज में सभी को आकर्षित करती है।

संगीत के घरानों में भी कला के उच्च प्रतिमानों को कायम रखते हुए किसी एक अंग की प्रबलता उसे अन्य से भिन्न बनाती है। कथक के जयपुर घराने में वीर रस की प्रधानता व भक्तिभाव से ओत–प्रोत स्वरूप वहीं लखनऊ घराने में नज़ाकत व नफासत तथा श्रृंगारिक ठुमरियों का प्रयोग एक नृत्य शैली होते हुए भी आंतरिक विशेषताओं में भिन्नता अथवा प्रबलता के कारण अलग घराने का अस्तित्व निर्माण करती है।

जयपुर घराना

''हिन्दु राज दरबारों में कथक के जिस स्वरूप का विकास हुआ उस शैली को जयपुर घराने का नाम दिया गया है।''

–डॉ. गीता रघुवीर, कथक नृत्य शास्त्र

शर्मिला शर्मा एवं पं. राजेन्द्र गंगानी

राजपूतकाल में जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, टोंक, बूंदी आदि समस्त दरबारों में संगीत व नृत्य को प्राश्रय मिला तथा उच्च श्रेणी के गुणी संगीतकार व नृत्यकार दरबारों में नियुक्त किए गए। जयपुर का गुणीजन खाना इन सबका केन्द्र रहा। अतः संगीत व नृत्य की इस शैली को 'जयपुर घराना' के नाम से जाना गया, जिसको आश्रय व विकास महाराजा सवाई जयसिंह, सवाई रामसिंह द्वितीय, माधोसिंह द्वितीय के काल में प्राप्त हुआ।

कथक के जयपुर घराने के प्रवर्तक भानुजी थे तथा तांडव शैली के अधिपति थे। इनके पौत्र कानूजी ने लास्य अंग भी ग्रहण किया। इस परंपरा में हनुमान प्रसाद जी, हरिप्रसाद जी, चिरंजीलाल जी तथा दूसरी शाखा में चुन्नीलाल जी, जयलाल जी, सुंदर प्रसाद जी कुंदनलाल गंगानी जैसे महान कथकाचार्य हुए। हनुमान प्रसाद व हरिप्रसाद को 'देवपरि की जोड़ी' नाम से जाना जाता था। जयपुर घराने की अनेक शाखाऐं हैं। कक्षा 11 के स्तर पर यहां निम्न शाखाओं का विवरण प्रस्तुत है।

(1) परंपरा –

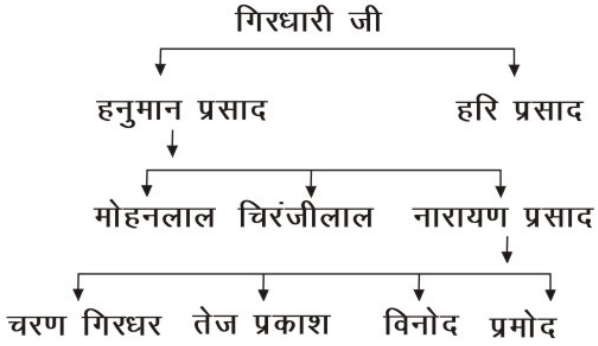

(2) परंपरा –

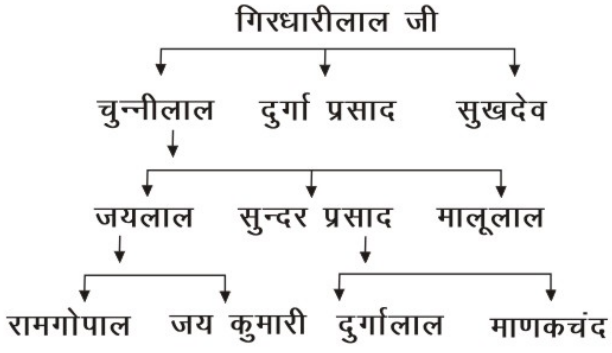

(3) परंपरा –

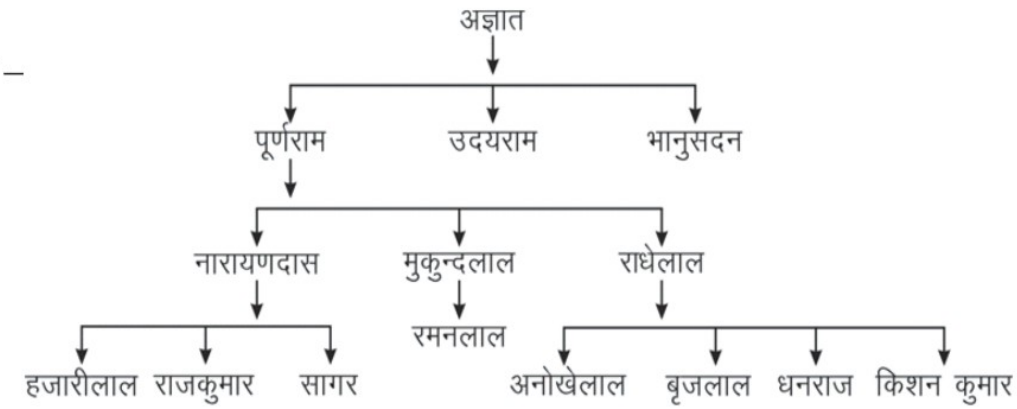

जयपुर घराने की विशेषता

1. भक्ति व श्रृंगार रस भाव युक्त
2. लय के चमत्कारी स्वरूप का प्रदर्शन
3. राजपूताने का ओजपूर्ण प्रभाव
4. कवित्त, भ्रमरी व तकनीक में क्लिष्टता का समावेश
5. चमत्कार प्रदर्शन

लखनऊ घराना

''मुगल शासकों के दरबार में कथक नृत्य के जिस स्वरूप का विकास हुआ, सामान्य तौर पर उसी स्वरूप को लखनऊ घराने के नाम से जाता जाता है।''

–डॉ. गीता रघुवीर, कथक नृत्य शास्त्र

इस वक्तव्य का केन्द्र 'नवाब वाज़िद अली शाह' तथा लखनऊ की हवा में तैरती लखनवी नज़ाकत, तहजीब व नफ़ासत को माना जा सकता है ।ईश्वरी प्रसाद जी इस परंपरा के मूल पुरूष माने जाते हैं। इने प्रपौत्र ठाकुर प्रसाद जी, नवाब वाज़िद अली शाह के गुरू थे। इन्होंने ही कथक को नटवरी नृत्य नाम दिया था। ठाकुर प्रसाद जी के पुत्र बिंदादीन महाराज कृष्ण भक्त, अद्भुत नृत्याचार्य तथा रचनाकार थे। इनकी परंपरा में अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज, कृष्ण मोहन, राम मोहन तथा एक विशाल शिष्य परंपरा है। लखनऊ परंपरा के संवाहक व घराने के प्रतिष्ठित कलाकार पं. बिरजु महाराज हैं।

लखनऊ घराने की विशेषताऐं

1. ठुमरी प्रधान प्रदर्शन
2. लख्नवी नज़ाकत की अदायगी

3. सलामी की प्रस्तुति
4. शृंगारिकता (लास्य) का महत्त्व
5. नटवरी बोलों का प्रयोग व छोटी–छोटी बंदिश

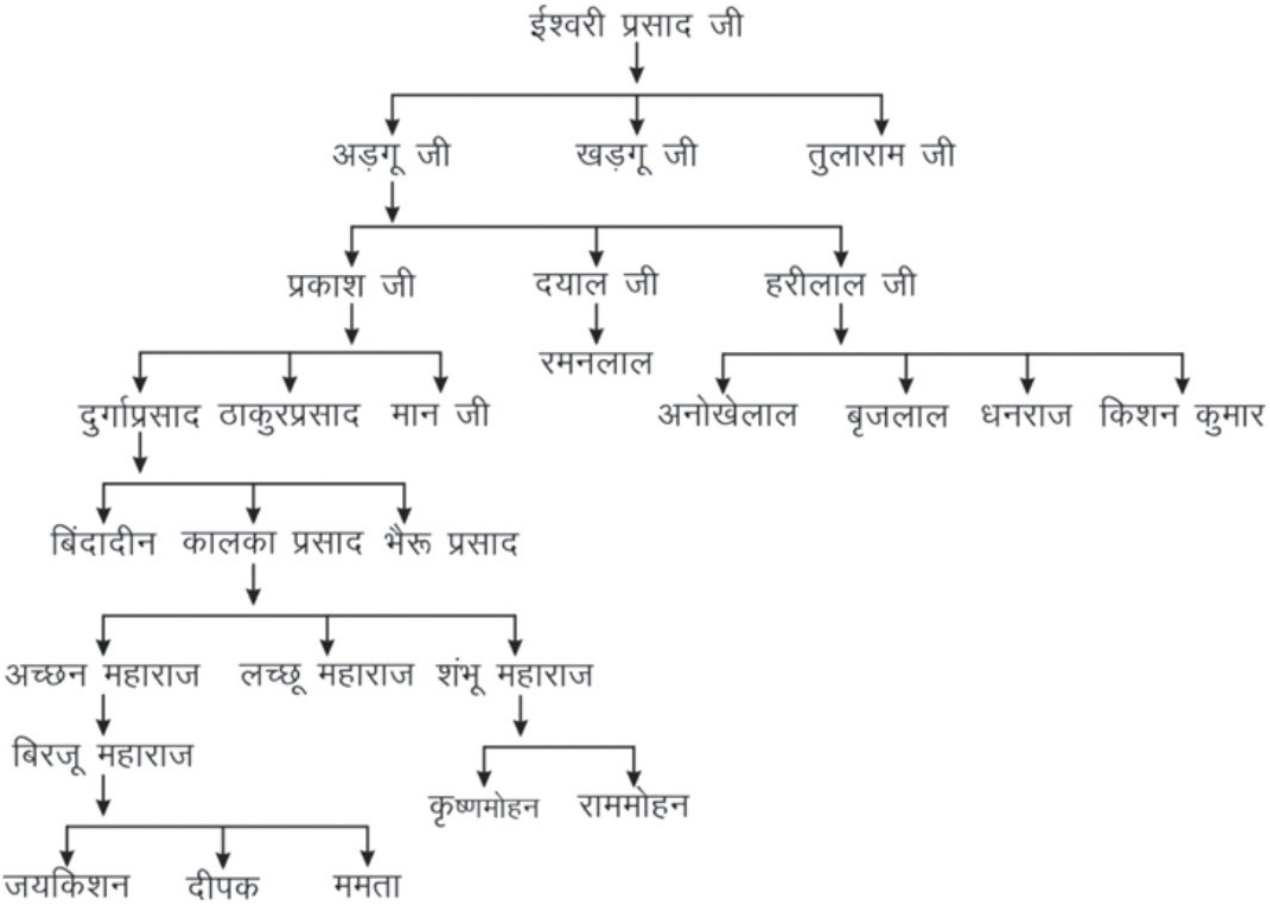

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- घराने से अभिप्राय परंपरा, पंथ, शैली, संप्रदाय से है।
- कथक नृत्य में मुख्यतः जयपुर, लखनऊ, बनारस प्रमुख घराने हैं।
- घरानों में अपनी–अपनी शैलीगत विशेषताओं का संरक्षण कायम रहता है।
- जयपुर घराना ओज, भक्ति, लय चमत्कार, भ्रमरी आदि के कारण विशिष्ट है।
- हनुमान प्रसाद जी, हरिप्रसाद जी, चिरंजीलाल जी, जयलाल जी, सुंदरप्रसाद जी, नारायणप्रसादजी, आदि जयपुर घराने के महान कथकाचार्य हुए हैं।
- बिंदादीन महाराज, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज आदि लखनऊ घराने के श्रेष्ठ नृत्य आचार्य हुए हैं। बिरजू महाराज लखनऊ परंपरा के वर्तमान प्रतिनिधि हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. दक्षिण भारत में घराने को क्या कहा जाता है ?
   (अ) स्कूल (ब) संप्रदाय (स) बानी (द) पंथ
2. जयपुर घराने की विशेष पहचान है ?
   (अ) भ्रमरी (ब) नजाकत (स) सलामी (द) नटवरी
3. नवाब वाजिद अली शाह के नृत्य गुरू कौन थे ?
   (अ) बिंदादीन महाराज (ब) पंडित जयलाल (स) ठाकुर प्रसाद जी (द) अच्छन महाराज
4. अच्छन महाराज के पुत्र का क्या नाम है ?
   (अ) लच्छू महाराज (ब) शंभू महाराज (स) बिरजू महाराज (द) दीपक महाराज
5. विख्यात नृत्यांगना 'जयकुमारी' के गुरू कौन थे ?
   (अ) चुन्नीलाल जी (ब) जयलाल जी (स) अनोखेलाल जी (द) चिरंजीलाल जी

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. 'घराने' से अभिप्राय समझाइये ?
2. जयपुर घराने की विशेषताऐं बताइये ?
3. लखनऊ घराने की विशेषताऐं लिखिये ?
4. लखनऊ घराने की वंशावली लिखिये ?
5. जयपुर घराने की वंशावली लिखिये ?
6. जयपुर एवं लखनऊ घराने के किन्हीं दो दो कलाकारों के नाम लिखिए।

उत्तर–1–ब, 2–अ, 3–स, 4–स, 5–ब

शिक्षकों हेतु अनुदेश

- कलाकारों के वीडियो दिखाकर तुलनात्मक रुप से घरानों की विशेषताऐं स्पष्ट करनी चाहिए।
- घरानेदार प्रसिद्ध कलाकारों के कुछ संस्मरण, रोचक व प्रेरणादायक प्रसंग द्वारा वंश परंपरा आदि का ज्ञान करवाया जा सकता है।
- घरानेदार संगीत समारोह, कार्यक्रम आदि में विद्यार्थी की उपस्थिति सुनिश्चित करावें।

अध्याय 3

नृत्यकारों की जीवनियाँ

बिंदादीन महाराज (1838–1918) :

कथक की लखनऊ शैली के प्रमुख स्तंभ, महान नृत्यकार व रचनाकार बिंदादीन महाराज का जन्म 1838 में हांडिया तहसील, जिला इलाहाबाद में हुआ। इनके पिता पं. दुर्गा प्रसाद जी थे। अपने भाई कालका प्रसाद के साथ इन्होंने गहन शोध, चिंतन, मनन व साधना से लखनऊ नृत्य घराने की शैलीगत विशेषताओं को और अधिक सुगठित किया। 1857 की क्रांति के दौरान ये अपने पिता के साथ लखनऊ आ गए। इसके पश्चात् नेपाल, भोपाल आदि अनेक स्थानों पर गए, जहाँ इनका भव्य स्वागत, सम्मान व धन प्राप्ति हुई।

बिंदादीन महाराज कृष्ण के अनन्य उपासक थे। नित्य प्रति कृष्ण भक्ति तथा कोई न कोई रचना लिखना यही उनका क्रम था। बिंदादीन महाराज ने लगभग 5000 ठुमरी, भजन, होरी, दादरा, पद, झूला आदि की रचना की थीं। जिनमें राग व ताल की गहराइयों के साथ शृंगार रस का विशद वर्णन है। 'बिंदा कहत' नाम से इनकी ठुमरियाँ संगीत जगत की अमरनिधि है। पं. बिरजू महाराज के सम्पादन में रस–गुन्जन नामक पुस्तक में इनकी कुछ रचनाओं का संग्रह उपलब्ध है।

उदाहरण –बिंदा कहत ठुमरी

काह करूं देखो गारि देत कन्हाई रे।
मैं तो लाखन बार समझाई रे ।।
मटकी पकड़ मोरी झटकी पटकी
बिन्दा कहत, सगरे लोगन में, मोरी पत गंवाई रे ।।

प्रसिद्ध पखावज वादक कुदऊ सिंह के साथ एक नृत्य प्रदर्शन में तत्कार की गति इतनी द्रुत हो गई मानो पांव धरती से ऊपर, अधर में ही चल रहे हों, समस्त दरबार मंत्रमुग्ध था। नृत्य के दौरान वे सुंदर अचकन, चूड़ीदार पायजामा व दुपल्ली टोपी पहनते थे। हाथ में एक दुपट्टा लेकर सखी, यशोदा, माँ, नायिका आदि रूपों को साकार कर देते थे। कृष्ण के अभिनय में तो साक्षात् कृष्ण की उपस्थिति ही प्रतीत होती थी।

पं. बिंदादीन महाराज के कोई संतान नहीं थी, संपूर्ण जीवन अपने छोटे भाई कालका प्रसाद के साथ नृत्य की शैलीगत स्थापना, प्रदर्शन, प्रशिक्षण, गीत रचना व कृष्ण सेवा में अर्पित किया। तीनों भतीजों – अच्छन महाराज, लच्छू महाराज व शंभू महाराज को निरंतर प्रशिक्षण देने में बिंदादीन महाराज का योग अधिक मानते हैं। बिंदादीन महाराज सदैव नृत्य, महफ़िल व नर्तकियों में व्यस्त रहते हुए भी शुद्ध सात्विक व

नियमित पूजा पाठी व्यक्तित्व के थे। सन् 1918 में इनकी मृत्यु हुई । कथक नृत्य शैली के विकास व संवर्द्धन में इनके अतुलनीय योगदान हेतु संगीत जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

सितारा देवी (1920–2014)

नेपाल दरबार के दरबारी संगीतज्ञ व कालका बिंदादीन महाराज के दूर के रिश्ते के भाई प. सुखदेव प्रसाद की तीन पुत्रियाँ – अलकनंदा, तारा व धनलक्ष्मी (सितारा) में ये सर्वाधिक यश व प्रसिद्धि सितारा देवी को प्राप्त हुई। इनका जन्म 8 नवंबर 1920 को कलकत्ता में हुआ। धनतेरस के दिन जन्म होने से धनलक्ष्मी नाम रखा गया। एक विद्यालयी प्रस्तुति में सावित्री सत्यवान नृत्य नाटिका में धनलक्ष्मी ने दर्शकों का मन मोह लिया, अगले दिन समाचार पत्र में इतनी तारीफ पढ़कर इन्हें ''सितारा'' कहा गया जो इनकी पहचान बन गया।

प्रारंभिक शिक्षा पिता पं. सुखदेव मिश्र के कुशल निर्देशन में हुई तत्पश्चात् पं. लच्छू महाराज व शंभू महाराज से तालीम ग्रहण की। सितारा देवी के नृत्य में लखनऊ व बनारस दोनों घरानों की विशेषताऐं थी तथा तांडव व लास्य दोनों अंगों की अप्रतिम तैयारी भी। कथक के अलावा सितारा देवी ने भरतनाट्यम व मणिपुरी नृत्य की तालीम भी प्राप्त की। फिल्म जगत में भी अभिनेत्री के तौर पर अपार सफलता प्राप्त कीं । कथक की शास्त्रीय प्रस्तुति हेतु इन्होंने सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण किया।

सितारा देवी ने नृत्य व अभिनय के क्षेत्र में ऐसे समय में प्रवेश किया था जब कुलीन घरों में इसे सम्मानजनक नहीं माना जाता था। लेकिन पिता की निरंतर प्रेरणा व परिवार की सांगीतिक पृष्ठभूमि से इसमें मदद प्राप्त हुई। लेकिन उस समय सितारा देवी के प्रयासों को एक क्रांतिकारी प्रयास ही कहा जाएगा। अपने भाई चौबेजी की दो पुत्रियों – जयंती माला व प्रिय माला को गोद लेकर अत्यंत मनोयोग से उन्होंने नृत्य शिक्षा दी। इनके पुत्र रंजीत बारोठ फिल्म संगीत में सक्रिय हैं।मधुबाला, रेखा, माला सिन्हा, काजोल जैसी नायिकाओं को इन्होंने प्रशिक्षण दिया।

अनेक उपाधियों व अलंकरणों से सम्मानित सितारा जी को सबसे पहले व अप्रतिम सम्मान गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर से मात्र 16 वर्ष की आयु में ''**क्वीन ऑफ कथक**'' की उपाधि के रुप में हुआ।

संगीत नाटक अकादमी सम्मान (1969), पद्मश्री (1973), कालिदास सम्मान (1995), गुरू लच्छू महाराज के साथ ही खैरागढ़ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की मानद उपाधि प्राप्त हुई। कथक नृत्याकाश पर सितारा देवी का नाम सदैव जगमगाता रहेगा। फिल्मी नृत्य निर्देशन को इन्होंने एक नई दिशा प्रदान की। सितारा जी ने कथक के प्रचार–प्रसार, सतत् प्रयोग व रचना धर्मिता के साथ एक लंबे युग तक नृत्य साधना व सेवा की। 25 नवंबर 2014 को मुंबई में आपका निधन हुआ। उनके प्रयास सदैव वंदनीय रहेंगे।

पं. सुंदरप्रसाद

जयपुर घराने के यशस्वी नृत्याचार्य पं. सुंदरप्रसाद जी की नृत्य शिक्षा अपने पिता पं.चुन्नीलाल तथा बड़े भ्राता पं. जयलाल से हुई तत्पश्चात लखनऊ घराने के पं. बिन्दादीन महाराज से शिक्षा प्राप्त की। पं.

सुंदरप्रसाद ने अपने चाचा पं. दुर्गाप्रसाद जी से भी नृत्य के गूढ़ तत्वों को ग्रहण किया। गुरूओं के प्रतिसच्ची श्रद्धा व निष्ठा इनके व्यक्तित्व की विशेषता थी। इनकी गुरूभक्ति के अनेक किस्से भी सुने सुनाएं जाते हैं जो इनके व्यक्तित्व को आदरणीय व नई पीढ़ी को प्रेरणा प्रदान करते हैं।

सुंदरप्रसादजी के नृत्य में लखनऊ व जयपुर दोनों शैलियों का समावेश था। कठिन लयकारियों में तत्कार का प्रदर्शन, दोनों हाथों से अलग–अलग ताल की प्रस्तुति, गुलाल बिछाकर नृत्य करते हुए सुंदर आकृतियां बनाना, भावपक्ष की अद्भूत प्रस्तुति, उच्च श्रेणी के नर्तक व प्रशिक्षक थे। आपने अनेक गीतों की रचना की थी। रायगढ़ दरबार में आपको विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। राजा चक्रधर सिंह आपके नृत्य में चमत्कार व भावपक्ष के संयोग से अत्यंत प्रभावित थे।

आपने मुंबई में कथक नृत्य विद्यालय द्वारा लंबे समय तक नृत्य शिक्षा प्रदान की । 1958 में दिल्ली आकर नृत्य प्रशिक्षण प्रारंभ किया। 1964 में कथक केन्द्र नई दिल्ली में कथकाचार्य पद पर नियुक्त किए गए।

अनेक सम्मानों, पुरस्कारों व उपाधियों से विभूषित पं. सुंदरप्रसाद को 1959 में संगीत नाटक अकादमी सम्मान, 1960 में राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त हुए।

आपकी शिष्य परंपरा में पं. मोहनराव कल्याणपुरकर, देवीलाल, सोहनलाल, दुर्गालाल, प्रियापंवार, रोशनकुमारी, मैडम मेनका, शीफ़ी वजीफदार, माणक चन्द जोधपुरी आदि प्रमुख नाम हैं।

30 मई 1970 को आपका स्वर्गवास हुआ। जयपुर घराने के अप्रतिम कथकाचार्य, गुरू भक्त, आदर्श शिक्षक के रूप में आप सदैव वंदनीय व प्रेरणादायी रहेंगे।

पं. बिरजु महाराज

लखनऊ घराने के प्रतिष्ठित कलाकार व कालका बिंदादीन जी की महान परंपरा के संवाहक, नृत्य शिरोमणि पं. बिरजु महाराज (मूल नाम–बृजमोहन मिश्रा) का जन्म 4 फरवरी 1938 को वाराणसी में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा पिता अच्छन महाराज (जगन्नाथ महाराज) से हुई । लेकिन अल्पायु में ही पिता की मृत्यु के पश्चात् चाचा शंभू महाराज व लच्छू महाराज से भी शिक्षा प्राप्त की । सात वर्ष की अवस्था में बिरजु महाराज ने अपनी पहली प्रस्तुति दी तथा 13 वर्ष की अवस्था से नृत्य प्रशिक्षण भी देने लगे। बिरजु महाराज का सम्पूर्ण व्यक्तित्व नृत्यमयी है। बातचीत, हावभाव, चाल–ढाल यानि रग–रग में नृत्य अवस्थित है। इन्होंने संगीत भारती, भारतीय कला केन्द्र नई दिल्ली, कथक केन्द्र नई दिल्ली, में नृत्य गुरू के रूप में दीर्घ काल तक शिक्षा देने के बाद दिल्ली में स्वयं की संस्था ''कलाश्रम'' स्थापित की। कथक केन्द्र नई दिल्ली के प्रधान नृत्य आचार्य पद को आपने सुशोभित किया। पं. बिरजू महाराज शास्त्रीय गायन व वादन के भी श्रेष्ठ कलाकार हैं।

पं. बिरजू महाराज ने कई फिल्मों में भी नृत्य निर्देशन किया है जिनमें – देवदास, उमराव जान, डेढ़

इश्किया, बाजीराव मस्ताना आदि प्रमुख है। आपने कथक नृत्य में अनेक अभिनव प्रयोग व नृत्य नाटिकाओं की रचना की हैं– इनमें कुमार संभव, मालती माधव, गोवर्द्धन लीला आदि विश्व प्रसिद्ध हैं।

पं. बिरजू महाराज को ''पदम् विभूषण'' (1986), कालिदास सम्मान, नृत्य चूड़ामणि, संगीत नाटक अकादमी सम्मान, भरत मुनि सम्मान, लता मंगेशकर सम्मान (2002) तथा श्रेष्ठ नृत्य निर्देशन हेतु राष्ट्रीय फिल्म अवार्ड (2012) प्राप्त हैं। बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय व खैरागढ़ विश्वविद्यालय ने इन्हें डाक्टरेट की मानद उपाधि प्रदान की है।

इनके दो पुत्र पं. दीपक महाराज व पं. जयकिशन महाराज तथा पुत्री ममता महाराज इनकी परंपरा को आगे बढा रहे हैं। पं. बिरजू महाराज की विशाल शिष्य परंपरा में अनेकों अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिनाम कलाकार हैं, जिनमें सास्वती सेन, शोभना नारायण, प्रेरणा श्रीमाली, वेरोनिक अज़ान, दक्षा सेठ, राम मोहन, कृष्ण मोहन, विजय शंकर, प्रभा मराठे, काजल शर्मा, दुर्गा आर्या, प्रताप पंवार, शुभा व दर्शिनी बहनें आदि प्रमुख हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दू

- बिंदादीन महाराज लखनऊ घराने के स्तंभ, महान रचनाकार व कृष्ण भक्त थे।
- बाल्यकाल में ही प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह के साथ बिंदादीन महाराज ने अद्भुत नृत्य प्रस्तुत किया।
- वर्तमान में कथक नृत्य के श्रेष्ठतम आचार्यों में पं. बिरजू महाराज का नाम है।
- पं. बिरजू महाराज कथक केन्द्र, नई दिल्ली के प्रधान आचार्य तथा ''कलाश्रम'' के संस्थापक हैं।
- श्रेष्ठ नृत्यांगना व अभिनेत्री के तौर पर सितारा देवी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।
- गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगार ने सितारा देवी को ''क्वीन ऑफ कथक'' की उपाधि से नवाज़ा था।
- पं. बिंदादीन महाराज (जन्म – 1838, मृत्यु –1918), पं. सुन्दर प्रसाद (मृत्यु –1970), सितारा देवी (जन्म–1920, मृत्यु –2014), पं. बिरजू महाराज (जन्म–1938)
- कठिन लयकारियों के प्रदर्शन, दोनों हाथों से अलग अलग ताल की प्रस्तुति, भाव पक्ष के साथ चमत्कार प्रदर्शन पं. सुंदरप्रसाद के नृत्य के विशेष गुण थे।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. ''बिंदा कहत'' नाम से नृत्य रचनाओं के रचनाकार थे।
   (अ) वाजिद अली शाह (ब)पं. सुंदर प्रसाद जी
   (स) बिंदादीन महाराज (द) सितारा देवी
2. ''कलाश्रम'' संस्था के संस्थापक हैं ?
   (अ) पं. उदयशंकर (ब) पं. बिरजू महाराज
   (स) राजा चक्रधर सिंह (द) सोनल मानसिंह
3. पं. सुंदर प्रसाद जी किस घराने के नृत्यकार थे ?

(अ) जयपुर घराना (ब) रायगढ़ घराना
(स) बनारस घराना (द) लखनऊ घराना

4. पं. बिरजू महाराज को 'पद्म विभूषण' किस वर्ष प्राप्त हुआ था ?
(अ) 1980 (ब) 1986 (स) 1995 (द) 2012

5. सितारा देवी के पिता का नाम क्या था ?
(अ) पं. सुखदेव मिश्र (ब) पं. छन्नूलाल मिश्र
(स) राजन–साजन मिश्र (द) पं. कालका प्रसाद

6. सितारा देवी को ''क्वीन ऑफ कथक'' की उपाधि किसने प्रदान की ?
(अ) भारत सरकार (ब) महात्मा गाँधी
(स) रविन्द्र नाथ टैगोर (द) जवाहरलाल नेहरू

7. सितारा देवी का मूल नाम क्या था ?
(अ) अलकनंदा (ब) तारा देवी
(स) धनलक्ष्मी (द) अमला शंकर

8. ''रस गुंजन'' नामक पुस्तक में किनकी रचनाओं का संग्रह है ?
(अ) बिंदादीन महाराज (ब) बिरजू महाराज
(स) अच्छन महाराज (द) सितारा देवी

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1 बिंदादीन महाराज किस प्रकार की वेशभूषा पहनते थे?
2 बिंदादीन महाराज की कोई रचना लिखिए?
3 सितारा देवी ने नृत्यकीशिक्षा कैसे प्राप्त की?
4 पं. बिरजू महाराज को प्राप्त सम्मान व पुरस्कारों का उल्लेख कीजिए?
5 पं. सुंदर प्रसाद जी का परिचय लिखिए?

चित्र पहचानकर नाम लिखिए–

उत्तर–(1) स (2) ब (3) अ (4) ब (5) अ (6) स (7) स (8)अ

शिक्षकों हेतु अनुदेश

- निम्न कलाकारों के चित्र संग्रहित करके संगीत कक्ष में लगवावें।
- इनके जीवन चित्रण संबधी प्रोजेक्ट कार्य करवावें।

अध्याय 4

शास्त्रीय नृत्य शैलियों का परिचय

भारतीय शास्त्रीय नृत्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन व परिष्कृत है। धर्म व आध्यात्मिकता इसकी विषय वस्तु तथा भारतीय संस्कृति इनकी प्रेरणा है। भारतीय नृत्यों का विकास आध्यात्मिक व पौराणिक कथानकों के सहारे मंदिरों के प्रांगणों में देखा जाता है।

यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैरत्यन्तभक्तितः ।
स निर्दयति पापानि जन्मान्तरशतैरपि ।। – द्वारिका महात्म्य

अर्थात– जो प्रसन्नचित्त से श्रद्धा व भक्तिपूर्वक भावों सहित नृत्य करता है, वह जन्म–जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है।

प्राचीनकाल से मनुष्य की आंतरिक वृत्तियों को पल्लवित व अभिव्यक्त करने का माध्यम नृत्य भी रहा है। 2500ई.पू. मोहनजोदड़ो से प्राप्त नृत्य मुद्रा युक्त कांस्य प्रतिमा, नृत्य की प्राचीनता व अभिव्यक्ति का साक्ष्य है।

सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में संगीत व नृत्य का विस्तृत वर्णन है, सामवेद तो पूरा ही संगीतमय है, उस काल में चारण, कुशीलव, सूत्रधार , नट, शैलूष आदि वर्ग नृत्य कार्य में संलग्न था। इस वर्ग द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से मंदिरों में तथा यज्ञादि कार्यों में नृत्य, गीत प्रस्तुति एवं मनोरंजन हेतु जीवन के सामान्य अवसरों पर गीत, संगीत, नृत्य प्रस्तुति, उक्त दोनों स्वरूपों का वर्णन मिलता है। कालिदास की समस्त रचनाओं में प्रकृति, गीत व नृत्य के वर्णन हैं। प्राचीन मंदिरों में अंकित मूर्तियां भी महत्वपूर्ण साक्ष्य है।

यवन संस्कृति में राजदरबारों में नृत्य कला का और अधिक पल्लवन दिखाई देता है। वर्तमान में शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा ग्लोबलाईजेशन के दौर में अनेक देशी–विदेशी नृत्य तथा उनका मिश्रण यत्र–तत्र दिखाई देता रहता है, लेकिन विशुद्ध भारतीय शास्त्रीय नृत्य कला का मूल्य भी अधिक बढ़ा है। राजकीय

प्राचीन मंदिरों में अंकित नृत्यरत प्रस्तर शिल्प

समारोहों, सांस्कृतिक विदेश यात्राओं, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय उत्सवों व शिक्षण–प्रशिक्षण में सर्वत्र शास्त्रीय नृत्य अभिजात वर्ग का प्रतीक बन गए हैं।

भारत के विविध प्रदेशों की लोक संस्कृति ने जब शास्त्रीय तत्वों को ग्रहण कर अपनी स्थानीय विशेषताओं के साथ शास्त्रोक्त विधाओं को रचा तो उनमें शास्त्रीय नृत्य भी समक्ष आए। तमिलनाडु से भरतनाट्यम, मणिपुर से मणिपुरी, उड़ीसा से ओडिसी, आंन्ध्रप्रदेश से कुचिपुड़ी, केरल से कथकलि, आसाम से सत्रिया तथा कथक में उत्तर भारतीय राधा कृष्ण रास व दरबारों का प्रभाव आदि. . . . निश्चित तौर पर वेशभूषा, भाषा, वाद्यप्रयोग, संगति, मुद्रा व प्रस्तुतिकरण में स्थानीय प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। दक्षिण भारतीय नृत्यों में तमिल, तेलगु, कन्नड संस्कृति का प्रभाव तथा मृदंग, नागस्वरम्, वीणा आदि की संगति, मणिपुरी नृत्य में पहाड़ी प्रदेश की कमनीयता तथा खोल वाद्य का प्रयोग, कथक में राधा–कृष्ण के पदों का प्रयोग, ब्रज व अवधी भाषा का प्रयोग, लखनऊ की नजाकत आदि स्पष्टतः स्थानीय प्रभावों के व्यापक उपयोग को दर्शाता है। इसके बावजूद भी इन शास्त्रीय नृत्यों में स्थानीय प्रभावों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है – नृत्य की सर्वग्राह्यता, व्यापकता, व उच्च कलात्मक तत्वों के साथ प्रस्तुति व प्रचार–प्रसार । जिसने स्थानीय विशेष की सीमाओं को तोड़कर संपूर्ण विश्व के कलाप्रेमियों को आकर्षित किया है तथा इन्हें भारत की गौरवशाली विरासत का भाग बना दिया। उपासना से ओत–प्रोत ये शास्त्रीय नृत्य, चरित्र उत्थान, आध्यात्मिक भावों के विकास, पाशविक वृत्तियों के शमन व राष्ट्र की वैश्विक पहचान में सहायक हैं। आज न केवल भारत के, अपितु विदेशों से हजारों विद्यार्थी अपना संपूर्ण जीवन भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के शिक्षण–प्रशिक्षण में व्यतीत कर रहे हैं।

वर्तमान में कुल 8 शास्त्रीय नृत्य शैलियाँ मान्य हैं जिनका मूल क्षेत्र / प्रदेश यहाँ उल्लिखित हैं –

नृत्य शैली : भरतनाट्यम
मूल प्रदेश : तमिलनाडु

नृत्य शैली : ओडिसी
मूल प्रदेश : उडिसा

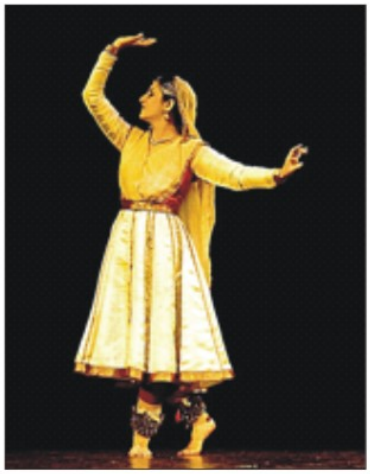

नृत्य शैली : कथक/कत्थक
मूल प्रदेश : उत्तर भारत

नृत्य शैली : मणिपुरी
मूल प्रदेश : मणिपुर

नृत्य शैली : कुचिपुड़ी
मूल प्रदेश : आन्ध्र प्रदेश

नृत्य शैली : कथकली
मूल प्रदेश : केरल

नृत्य शैली : मोहिनी अट्टम
मूल प्रदेश : केरल

नृत्य शैली : सत्रिया
मूल प्रदेश : आसाम

भारत सरकार के सांस्कृतिक प्रतिष्ठान सी.सी.आर.टी. द्वारा उक्त नृत्यों का प्रकाशन शास्त्रीय शैली के क्रम में किया गया है। यक्षगान तथा छऊ, उक्त दो नृत्य शैलियाँ भी शास्त्रीय तत्वों व विशेषताओं से पूर्ण हैं तथा अनेक पुस्तकों में इनका उल्लेख भी शास्त्रीय नृत्य शैलियों के रूप में ही प्राप्त होता है।

नृत्य शैली : यक्षज्ञान
मूल प्रदेश : कर्नाटक

नृत्य शैली : छउ
मूल प्रदेश : बंगाल, उड़ीसा

भाव व रस

भरत कृत नाट्य शास्त्र में कहा गया है– विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः अर्थात विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी (संचारी) भावों से स्थायी भाव व्यक्त होते हैं और रस में परिणीत होकर आनंद की सृष्टि करते हैं। भरत ने इनकी संख्या 8 मानी है, शान्त रस का समावेश परवर्ती काल में किया गया। इस

प्रकार इनकी संख्या 9 मानी जाती है।

स्थायी भाव : रति
रस : श्रंगार

स्थायी भाव : हास
रस : हास्य

स्थायी भाव : भय
रस : भयानक

स्थायी भाव : जुगुप्सा
रस : वीभत्स

स्थायी भाव : निर्वेद
रस : शांत

स्थायी भाव : विस्मय
रस : अद्‌भुद

स्थायी भाव : शोक
रस : करुण

स्थायी भाव : क्रोध
रस : रौद्र

स्थायी भाव : उत्साह
रस : वीर

अभिनय दर्पण' के अनुसार – **यतो हस्तस्ततो दृष्टिर्यतो दृष्टिस्ततो मनः ।**
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः ।।

अर्थात जिस ओर हाथ जाते हैं वहाँ दृष्टि जानी चाहिये, जहाँ दृष्टि जाती है वहीं मन भी साथ होना चाहिये, जहाँ मन होता है, वहाँ भाव उत्पन्न होता है तथा जहाँ भाव होगा वहीं रस की सृष्टि होती है। नृत्य की सफलता में इस प्रक्रिया अथवा भाव व रस की सार्थक सृष्टि का ही महत्त्व है।

भरतनाट्यम

परिचय –शाब्दिक व्याख्यानुसार – भ = भाव, र = राग, त = ताल, नाट्य = अभिनय, भरतनाट्यम नाम मात्र ही नाट्यशास्त्र के उद्देश्य–भावम–रागम–तालम व नाट्यम की संयुक्त व्याख्या करता है। मूलतः तमिलनाडु प्रदेश के मंदिरों से प्रचलित इस नृत्य शैली का विकास तंजावुर (तंजौर) में हुआ। दक्षिण भारतीय मंदिरों में देव आराधना हेतु नियुक्त देवदासियों द्वारा ''देवदासीअट्टम'' नृत्य किया जाता था, जिसमें नृत्य व अभिनय की प्रधानता थी। कालांतर में इसका परिवर्तित व शैलीबद्ध शास्त्रीय स्वरूप भरतनाट्यम के रूप में समक्ष आया। प्राचीन काल में केवल महिलाऐं ही नृत्य प्रस्तुति देती थी। वर्तमान में ऐसी कोई सीमा रेखा नहीं है। नृत्य की सम्पूर्ण विषय वस्तु भक्त व ईश्वर की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में भक्ति व शृंगार के संयुक्त प्रभावयुक्त है। राग, ताल, लय, भाव, शब्द का श्रेष्ठ समन्वय इस नृत्य में है। भरतनाट्यम नृत्य शुद्धता, कलात्मकता, आकर्षण, भाव सौंदर्य व मूर्तिवत मुद्राओं हेतु प्रसिद्ध है। भगवान शिव नटराज मुद्रा में इसके अधिष्ठाता माने जाते हैं।

मराठा राज्य (1798 – 1824) में तंजावुर के पिल्लई बंधुओं – चिन्नया पिल्लई, पोन्निह पिल्लई, शिवानंदम पिल्लई व वादिवेलु पिल्लई ने इसकी

शैलीगत संरचना हेतु महत्त्वपूर्ण कार्य किया। 20वीं शताब्दी में रूक्मिणी देवी अरूण्डेल ने इसका पुनः उद्धार कर इसे विश्व मानचित्र पर रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके प्रयासों से ही भरतनाट्यम नृत्य पवित्र नाट्य व योग के रूप में पश्चिम में जाना गया। ''कलाक्षेत्र'' नृत्य विद्यालय की स्थापना कर इसकी सामूहिक व मंचीय प्रस्तुतियों को विशुद्ध रूप से संसार के समक्ष रखा। इस क्षेत्र में डॉ. पद्मा सुब्रह्मण्यम के प्रयास भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान में फिल्म संगीत, मंचीय प्रस्तुति, शासकीय प्रयासों व मीडिया के माध्यम से भरतनाट्यम नृत्य का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ है।

नृत्य के चरण–

भरतनाट्यम में आलारिपु, जाति स्वरम, शब्दम वर्णम, पद्म, स्तुति(श्लोकम), तिल्लाना का चरणबद्ध प्रदर्शन होता है। इसके अतिरिक्त – जावलि, स्वरांजलि, कृति, थरंगनृत्तम आदि पर भी प्रस्तुति की जाती है। जब विद्यार्थी नृत्य प्रदर्शन हेतु तैयार हो जाता है तो ''आरंगेत्रम'' प्रस्तुति आयोजित होती है। नाट्यशास्त्र में वर्णित करण, चारी, अंगहार व मंडलों को सुंदर संयोजन इसमें दिखाई देता है।

आभूषण व वेशभूषा

नृत्य के दौरान प्रयुक्त आभूषणों को ''मंदिर आभूषण'' जाना जाता है। इनमें सिर पर टीका तथा चन्द्रमा व सूर्य के प्रतीक आभूषण, गलें में विशेष मालाऐं, हाथ व कमर में रत्नजड़ित पारंपरिक गहनें व पैरों में घुंघरू भरतनाट्यम की पहचान है। घुंघरू 4–5 लाइनों में होते हैं।

नृत्य प्रस्तुति मेंसंगीत

भारत में दो प्रकार की संगीत शैलियां प्रचलित हैं–हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैलियां । भरतनाट्यम में कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैली में संगति की जाती है। वाद्यों में मृदंगम्, मंजीरे, वायलिन, बाँसुरी, नागस्वरम्, वीणा आदि का प्रयोग होता है। नृत्य रचनाऐं तमिल, तेलगु, कन्नड व संस्कृत भाषा युक्त होती हैं।

नृत्य गुरू व कलाकार

दक्षिण भारत में नृत्य गुरू को 'नट्टुवनर' कहा जाता है। भरतनाट्यम नृत्य में गुरु शिष्य परंपरा की अनगिनत कडियां हैं कुछ महत्वपूर्ण नाम निम्न हैं– मीनाक्षी सुंदरम् पिल्लई, कंडप्पा पिल्लई, कुबेरनाथ तंजौरकर, ई. कृष्ण अय्यर, रूक्मणी देवी अरूण्डेल, पद्मा सुब्रह्मण्यम, यामिनी कृष्णमूर्ति, कुप्पैया, गोविंदराज, मृणालिनी साराभाई, अनिता रत्नम्, बाल सरस्वती, मल्लिका साराभाई, शोभना आदि।

रूक्मिणी देवी अरूण्डेल

ओडिसी

पुरातत्व सर्वेक्षणों के अनुसार यह एक प्राचीन नृत्य शैली है। उदयगिरी की पहाड़ियों में (भुवनेश्वर के पास) खारवेल युगीन अवशेष, कोणार्क, ब्रह्मेश्वर, शिव मंदिर व जगन्नाथ मंदिर में मुद्रित नृत्य प्रतिमाऐं तथा प्राचीन काल से इन मंदिरों की चारदीवारी में इसका निरंतर प्रदर्शन इस शैली की पुरातनता के साक्ष्य हैं। भरत के नाट्यशास्त्र में नृत्य (वृत्ति) की 4 शैलियों का उल्लेख है – अवन्ति, दक्षिणात्य, पांचाली व औड्रमागधी । यहाँ औड्र उड़ीसा तथा औड्रमागधी ओडिसी नृत्य हेतु है। जैन कल्पसूत्र व वज्रयान बौद्ध शाखाओं में भी इसका उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार के एतिहासिक महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक साक्ष्यों, सदियों से विशुद्ध नृत्यशैली की निरंतर प्रस्तुति तथा उड़िया कवि व रंगकर्मी कालीचरण पट्टनायक के प्रयासों से– 1958 में आधिकारिक तौर पर ओडिसी नृत्य को भारतीय शास्त्रीय नृत्य की प्राचीन शैली व ''ओडिसी'' नाम से स्वीकृत किया गया। कुछ वर्षों पूर्व तक केवल मंदिर प्रांगण में किया जाने वाला यह नृत्य आज मंच प्रदर्शन, शिक्षण–प्रशिक्षण व जनरंजन का साधन है। मूलतः इसकी एकल प्रस्तुति ही की जाती थी, वर्तमान में एकल व सामूहिक दोनों स्वरूप ही प्रचलित हैं।

ओडिसी नृत्य शैली में **'महारी'** व **'गोटिपुवा'** शैलियाँ निहित हैं। महारी महान नारी, भगवान जगन्नाथ हेतु

गोटिपुवा–स्त्री वेश में लड़का

महारी–भगवान जगन्नाथ हेतु नृत्य करनेवाली देवदासी

नृत्य करनेवाली देवदासियाँ तथा गोटिपुवा अकेला लड़का, स्त्री वेश में लड़कों द्वारा किया जाने वाला नृत्य।

माहेश्वर कृत अभिनव चंद्रिका में इस शैली की मुद्राओं (हाथ, पैर व शरीर) का विस्तृत चित्रण है। इसमें लास्य अंग की प्रधानता है। बौद्ध, शैव, शाक्त, वैष्णव संस्कारों व शृंगार प्रधान इस शैली का हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक शास्त्रीय संगीत शैलियों से अलग अपना स्वतंत्र शास्त्र पक्ष, क्रियात्मक पक्ष व सांगीतिक पक्ष है। 2015 में आई. आई. टी. भुवनेश्वर ने ओडिसी नृत्य में बी.टेक. पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया है।

नृत्य के चरण व विषय वस्तु –

इसमें मंगलाचरण (भूमि प्रणाम व त्रिखंडी प्रणाम), बटु (शिव) नृत्य, ईष्ट वंदना, पल्लवी, गीताभिनय,तारीझामो व मोक्षनृत्य । गुरू केलुचरण महापात्र ने – बाल लीला, सुदामा चरित्र, ऋतु संहार, मेघदूत, कुमार संभव, आदि आध्यात्म धारा के विषयों का चयन कर इन्हें नृत्य शैली में पिरोया। वर्तमान में पंचकन्या, चित्रांगदा, गंगा–जमुना, जैसे विषय भी इस शैली की विषयवस्तु हैं लेकिन परंपरागत रूप से शिव, कृष्ण, राम, जगन्नाथ की स्तुतियाँ व जयदेव के गीत गोविंद की अष्टपदियाँ ही नृत्य की रचनाऐं हैं।

नृत्य प्रस्तुति में संगीत

नृत्य के दौरान मृदंग, करताल/मजीरे, बांसुरी, वीणा आदि वाद्यों से संगति की जाती है। ओडिसी शैली का अपना स्वतंत्र संगीत है। इसकी तालें – नवताल, दशताल, अग्रताल आदि। रागों में – कल्याना, नट, बरारी, पंचम, घनाश्री, भैरवी आदि तथा रागांग, भावांग व नृत्यांग से पल्लवी, भजन, छंद तथा गीत गोविन्द के पदों का प्रयोग होता है।

गुरू केलुचरण महापात्र

आभूषण व वेशभूषा

ओडिसी नृत्य के आभूषण 'ताराकाशी कला' (पतले तार) के नमूने हैं जो कि पारंपरिक उड़िया कला है। इसके आभूषणों में ताहिया, सींथी, टिक्का, माथापट्टी, अल्लका, कापा, झुमका, बाहिचुड़ी, कंकण, कमरबंद, घुंघरू आदि हैं। संबलपुरी व बोमकाई साड़ी कला की चमकदार गहरे नारंगी, बैंगनी, लाल, हरे, नीले रंग की साड़ी अथवा सुविधानुसार सिले हुए पायजामेंनुमा परिधान पहने जाते हैं।

गुरू व कलाकार

श्री मोहन महापात्र, केलुचरण महापात्र, पंकज चरणदास, रघुनाथ दत्ता, संयुक्ता पाणिग्रहीं, कुमकुम मोहंती, सोनल मानसिंह, मायाधर राउत, इन्द्राणी रहमान, रंजना गौहर, उपालि अपराजिता, माधवी मुद्गल, मधुमिता राउत, डोना गांगुलि आदि प्रमुख नृत्य गुरू व कलाकार हैं।

मणिपुरी नृत्य

प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण व मनोरम राज्य मणिपुर से विकसित यह नृत्य शैली विशुद्ध धार्मिक व

पौराणिक कथाओं पर आधारित है। इसमें वैष्णव पदावली का प्राधान्य है। अत्यंत आकर्षक वेशभूषा में मन्द–मन्द गति व पदाघातों से कोमलता व सुकुमारता का प्रदर्शन इस नृत्य में किया जाता है। इसका विकास, पारंपरिक ''लाईहारोबा'' शैली से है। इसमें रास के विविध स्वरूपों का दर्शन होता है जिनमें – बसंत रास, महारास, नित्य रास, कुंज रास, गोप रास, उलुखल रास, दिवा रास, राखाल रास आदि प्रकार हैं। इस नृत्य का अपना अप्रतिम सौंदर्य, मधुरता, कोमलता व आध्यात्मिक अनुभूतियाँ हैं।

लाई हारोबा नृत्य

पुंग चोलोम नृत्य

मणिपुर में प्रायः प्रत्येक गांव में कृष्ण मन्दिर हैं जहाँ नित्य प्रति लाई हारोबा, रास, भांगीपरेंग आदि नृत्य आयोजन होते हैं। मणिपुरी नृत्य शैली को स्थापित व परिष्कृत करने में महाराजा भाग्यचंद्र जयसिंह (1779) द्वारा प्रारंभ किए गए रास के विविध प्रकार, महाराजा गंभीर सिंह (1825–1834) के प्रयासों द्वारा भंगी परेंग, वृंदावन परेंग तथा महाराजा चंद्रकीर्ति (1849–1886) द्वारा पुंग चोलोम व नित्य रास के प्रयोग व प्रयास अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर द्वारा किये गए विशिष्ट प्रयास भी नृत्य हेतु जीवनदायी रहे। नृत्य हेतु विस्तृत अध्ययन सामग्री ''गोविंद संगीत लीला विलास'' ग्रंथ में उपलब्ध है। इस नृत्य के दौरान पैरों में घुंघरू नहीं बांधे जाते तथा पद संचालन एक विशेष व अलग तरीके से होता है।

नृत्य के चरण

मणिपुरी नृत्य में चाली, तेलना, स्वरमाला, चतुरंग, कीर्तिपद (प्रबंध) आदि विविध चरणों में नृत्य किया जाता है।

मणिपुरी रास

नृत्य प्रस्तुति में संगीत

नृत्य में पुंग (मृदंग के समान अवनद्व वाद्य), मंजीरा, बांसुरी, तार वाद्य पेना आदि की संगति होती है। जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, गोविंददास आदि के पद तथा संस्कृत, मैथिली व ब्रजभाषा का प्रयोग किया जाता है।

आभूषण व वेशभूषा

तार वाद्य पेना

नृत्य की वेशभूषा अति विशिष्ट व आकर्षक है। खूबसूरत जरी की कढ़ाई युक्त, फूला–फूला लहंगा, ऊपर सिल्क का जैकेट, सिर पर पारदर्शी ओढ़नी व आभूषण, मेहंदी, चंदन आदि से शृंगार किया जाता है। पुरूष रेशमी पीतांबरी धोती, ऊपर अचकन, सिर पर मोर मुकुट धारण कर कृष्ण जैसी सुंदर वेशभूषा व आभूषण धारण करते हैं।

गुरू व कलाकार

गुरू नाबा कुमार, गुरू विपिन सिंह, राजकुमार सिंघजीत सिंह, गुरू वीर मंगलसिंह, दर्शना झवेरी, चारूसीजा आदि प्रमुख मणिपुरी नृत्य कलाकार हैं।

कथक

इसे कथक व नटवरी नृत्य के नाम से भी जाना जाता है। यह भारत का अत्यंत लोकप्रिय नृत्य व उत्तर भारत की प्राचीन नृत्य शैली है। इसकी उत्पत्ति कब हुई। इसका स्पष्ट उत्तर तो नहीं दिया जा सकता है, लेकिन ! इस नृत्य की पुरातनता के साक्ष्य अवश्य उपलब्ध है – ब्रह्म पुराण, महाभारत व नाट्यशास्त्र में अभिनेता के लिए ' कथक ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। संभवतः प्राचीन काल में प्रचलित रास के विविध स्वरूपों का ही एक प्रकार वर्तमान कथक नृत्य है।

13 वीं शताब्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ संगीत रत्नाकर के नृत्याध्याय में उल्लेख है –

''कथका बन्दिनश्चात्र विद्यावन्तः प्रियम्वदाः।
प्रशंसा कुशलाश्चान्ये चतुरा सर्वमातुषु।।

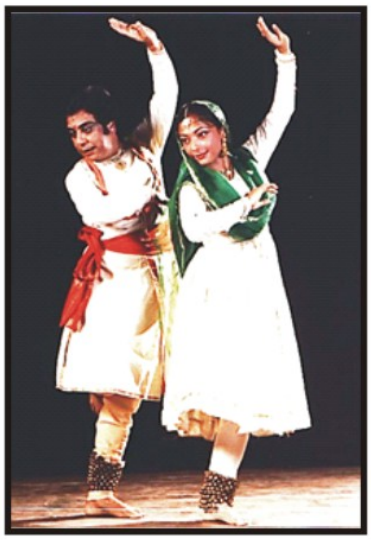

मध्यकाल के महत्त्वपूर्ण सांगीतिक ग्रंथ–संगीत दर्पण, संगीत मकरंद व कोहल रहस्य में कथक संबंधी महत्त्वपूर्ण विषय वस्तु (तत्कार, गत) का वर्णन प्राप्त होता है।

''कथयति यः स कथकः।
अर्थात–जो कथा कहे सो कथक कहाय।।

ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल से कथा कहने वालों को कथाकार व कथक कहा जाता था। जनरूचि से कथा के साथ नृत्य भी जुड़ गया तथा शैलीगत विशेषताओं के साथ नृत्य की विशिष्ट शैली के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मुगलकाल में कथक कलाकारों को दरबारों में आश्रय व सम्मान मिला, कलाकारों ने भी दरबार में प्रतिष्ठा पाने व बादशाह को खुश रखने के लिये अनेक प्रयोगात्मक बदलाव किए। कथक की वेशभूषा में मुगल दरबारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई

देता है। भक्ति प्रधान राधा–कृष्ण के पदों के साथ ही मुबारक बादियां तथा श्रृंगार प्रधान ठुमरियों का स्थान बढ़ा। उर्दू शब्दावली– सलामी, आमद अदा को स्थान मिला, साथ ही कृष्ण (नटवर नागर) का स्थान भी बना रहा। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की रचनाऐं भी कथक में ग्रहण की गईं। अष्टछाप के कवियों की रचनाओं में कथक शब्दावली का व्यापक प्रयोग मिलता है।

नृतति सुधंग, अंग, रंग संग राधिका
गिड़ि गिड़ि ता तत् थै थै रास रंगिनी –कृष्णदास

अवध नवाब वाज़िद अली शाह (1822–1887)के योगदान को लिखे बिना कथक की भूमिका अधूरी है। उनके दरबार में उच्च श्रेणी के कलाकारों व नर्तकों को प्राश्रय व प्रशिक्षण प्राप्त हुआ। वे स्वयं कृष्ण बनकर रास नृत्य करते थे। उन्होंने 'बन्नों' व 'नाज़ो' नामक पुस्तक की रचना की। कथक के क्रियात्मक व शास्त्रीय दोनों पक्षों का विकास इनके काल में हुआ। अनेक प्रकार की गतें, आदम, सलामी तथा ठुमरियों की रचना स्वयं वाजिद अली शाह ने की। ठाकुर प्रसाद जी उनके नृत्य गुरू थे।

19वीं शताब्दी में पूरे उत्तर भारत में कथक नृत्य का व्यापक प्रसार हुआ तथा पूरे उत्तर भारत के अलग–अलग दरबारों में इसे आश्रय मिला । इसी दौरान कथक के लखनऊ, जयपुर, बनारस तत्पश्चात रायगढ़ घराने अस्तित्व में आए।

रायगढ़ नरेश राजा चक्रधर सिंह (1905–1947)का नाम भी नवाब वाज़िद अली शाह के समान ही संगीत, नृत्य व शास्त्र रचना हेतु अमर है। अनेक उच्च संगीतकार, जयपुर व लखनऊ घराने के नृत्यकार इनके दरबार में थे। समस्त शैलियों का अध्ययन कर इन्होंने कथक की रायगढ़ शैली को विकसित किया। प्रस्तुति के दौरान स्वयं तबला, पखावज बजाते थे। राजा चक्रधर सिंहस्वयंअनेक तोड़ों व ठुमरियों के रचनाकार थे, संगीत, कला व नृत्य संबंधी कुल 15 महत्वपूर्ण पुस्तकों की इन्होंने रचना की।

जयपुर के गुणीजन खाने को पोषित करने तथा कलाकारों को आश्रय देने में सवाई जयसिंह द्वितीय, सवाई राम सिंह द्वितीय व राजा माधोसिंह द्वितीय का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार व राज्य सरकारों द्वारा विद्यालयों, महाविद्यालयों व संस्थागत कथक शिक्षा हेतु समुचित प्रयास किए गए हैं। संगीत नाटक अकादमी द्वारा कथक केन्द्र की स्थापना, राष्ट्रीय कथक समारोहों का आयोजन, प्रतिभावान विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, प्रतिष्ठित राष्ट्रीय सम्मान, अनेक कलाकारों, सरकारी, गैर–सरकारी व निजी संस्थाओं आदि के स्तुल्य प्रयास से न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर कथक नृत्य शैली की विशेष पहचान है। वर्तमान में कथक शिक्षण–प्रशिक्षण एक उच्च सामाजिक स्तर (सोशल स्टेटस) का प्रतीक है। अभिजात वर्ग का कथक के प्रति रूझान उसके उज्ज्वल भविष्य का संकेत देता है।

नवाब वाज़िद अली शाह

राजा चक्रधर सिंह

सवाई जय सिंह द्वितीय

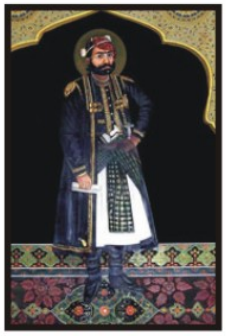
सवाई राम सिंह द्वितीय

सवाई माधो सिंह

कथक नृत्य के चरण

पदाघातों व घुंघरू के संयोग से लय–ताल के अद्‌भुत स्वरूप का प्रदर्शन करते हुए ठाठ, नृत्यांग, जाति शून्य, भाव रंग, इष्टपद, गतिभाव, तराना आदि अंगों की प्रस्तुति दी जाती हैं। नृत्त (शुद्ध नर्तन, बिना गीत व भाव के), **नृत्य** (गीत व भाव युक्त), **नाट्य** (अभिनय) का बेहतरीन संयोग कथक की पहचान है।

नृत्त अंग में आमद, सलामी, ठाठ, तोड़ा, टुकड़ा, परण आदि। नृत्य में कवित्त, गत आदि। नाट्य में वंदना ठुमरी, भजन, तराना, दादरा, गजल आदि।

प्रायः प्रस्तुति में गणेश वंदना, आमद, ठाठ, टुकड़ा, तोड़ा, परन, पढंत, गतभाव प्रदर्शन व तत्‌कार का क्रम रहता है। इस दौरान ग्रीवा (गर्दन), हस्तमुद्रा (हाथ), पद भेद, भृकुटि (भौंह) व दृष्टि के विविध संचालन दर्शनीय व आकर्षक होते हैं।जिनका शास्त्रोक्त अध्ययन उच्च स्तर के पाठ्यक्रम में किया जाएगा।

नृत्य प्रस्तुति में संगीत

कथक नृत्य की संगति में प्रायः सारंगी, तबला, पखावज, हारमोनियम, सितार, घुंघरू आदि वाद्यों का प्रयोग किया जाता है।नृत्यांग (नृत्य के बोल युक्त – तत्, थेई), तालांग (तबले के बोल युक्त – तिटकत्), कवितांग (कविता के शब्द युक्त – बीन मृदंग संग रास) का मिश्रित स्वरूप नृत्य में प्रस्तुत होता है। गीत शैलियों में प्रायः ध्रुपद, होरी, चतुरंग, ठुमरी, भजन, तराना, दादरा, गजल आदि का प्रयोग होता है। लखनऊ घराने के बिंदादीन महाराज ने लगभग 5000 रचनाऐं रची हैं जिन्हें कथक नृत्य जगत में सर्वत्र अत्यंत आदर व गौरव प्राप्त है।

वेशभूषा –

- कथक नृत्य की वेशभूषा में युगांतरकारी परिवर्तन दिखाई देते हैं।
- प्राचीन काल में देवी–देवताओं की पोशाक (कृष्ण–राधा, शिव–पार्वती आदि) में नृत्य किया जाता था।
- मुगलकाल में चूड़ीदार पायजामा, लंबा चोगा, ज़रीदार जाकेट, दुपल्ली नावदार लंबी टोपी व दुपट्टा का चलन था।
- राजपूत काल में नर्तकी लहंगा, कुरती व ओढ़नी तथा नर्तक अंगरखा व चूड़ीदार पायजामा को पहनकर नृत्य करते थे।

मुगलकालीन वेशभूषा

राजपूत कालीन वेशभूषा

– वर्तमान में परंपरागत परिधान के साथ–साथ नए प्रयोग भी दिखते हैं।
– आभूषणों में कंगन, कड़े, हार, झुमके, नथ, हाथफूल, बाजूबंद, अंगूठी आदि का प्रयोग किया जाता है

कथक हेतु कथानक

कथक या नटवरी नृत्य में प्रस्तुति के दौरान जिन पारंपरिक व ऐतिहासिक कथानकों का प्रयोग किया जाता है उनमें – कृष्णलीला, कालिय दमन, बाल लीला, गोवर्द्धन लीला, पूतना वध, पनघट, महारास, माखन चोरी, सुदामा चरित्र, मीरां के गिरधर आदि विभिन्न कृष्ण के स्वरूपों की प्रस्तुति की जाती है। इसके अलावा अहिल्या उद्धार, गज व ग्राह, दशावतार, चीरहरण, शबरी, शिव तांडव आदि हिन्दु कथानकों का चित्रण किया जाता है। कुमार संभव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम, मालविकाग्निमित्रम तथा वर्तमान में समाज के अन्य विषय– नारी उत्पीड़न, अशिक्षा आदि समस्याओं का मंचन कर विषय विस्तार व अभिनव प्रयोग किए जा रहे हैं।

कथक गुरू व नृत्यकार

कालका–बिंदादीन महाराज, अच्छन महाराज, लच्छू महाराज, शंभू महाराज, बिरजू महाराज, सितारा देवी, गोपी कृष्णा, प्रेरणा श्रीमाली, वेरोनिक अजान, सास्वती सेन, पं. सुंदर प्रसाद, पं. जयलाल, पं. नारायण प्रसाद, पं. चिरंजीलाल, उमा शर्मा, काजल मिश्र, कुमुदनी लखिया, कुंदनलाल गंगानी ,नारायणप्रसादजी पं.माणकचन्दजी जोधपुरी आदि एक विशाल श्रृंखला है।

प्रेरणा श्रीमाली

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- नृत्य अभिव्यक्ति की एक प्राचीन कला है।
- शास्त्रीय नृत्य शैलियों पर लोक तत्वों का प्रभाव स्पष्टतया दिखाई देता है।
- भारतीय शास्त्रीय नृत्यों ने राष्ट्र को वैश्विक पहचान दी है।
- वर्तमान में कुल 8 शास्त्रीय नृत्य शैलियां, भरतनाट्यम, कथक, ओडिसी, मणिपुरी, कुचिपुड़ी, कथकली, मोहिनीअट्टम, सत्रिया प्रचलित हैं।
- नृत्य की सफलता रस सृष्टि में है। शास्त्रौक्त नवरस–श्रृंगार, करूण, वीर, भयानक, हास्य, रौद्र, वीभत्स, अद्भुत व शांत है।
- भरतनाट्यम के पुनरूद्धार में रूक्मिणी देवी अरूण्डेल के प्रयास अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।
- भरतनाट्यम शैली का विकास तंजौर के मंदिरों में प्रचलित देवदासी अट्टम से हुआ है।
- उड़ीसा में 'महारी' व 'गोटिपुवा' शैलियों से ओडिसी शैली का विकास हुआ।
- ओडिसी नृत्य शैली का संगीत, प्रचलित संगीत पद्धतियों (हिन्दुस्तानी व कर्नाटक संगीत)से भिन्न व स्वतंत्र है।
- आई आई टी भुवनेश्वर ने 2015 से ओडिसी नृत्य में बी. टेक. पाठ्यक्रम प्रारंभ किया है।
- मणिपुरी नृत्य के उत्थान में गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर के प्रयास महत्त्वपूर्ण हैं।
- पारंपरिक 'लाई हारोबा' नृत्य से मणिपुरी नृत्य शैली विकसित हुई है।

- अवध नवाब वाजिद अली शाह व रायगढ़ नरेश चक्रधर सिंह जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने कथक नृत्य के विकास व प्राश्रय में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।
- प्राचीन राधा कृष्ण की रास व मुगल संस्कृति का समेकित प्रभाव कथक में दृष्टिगत होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. निम्न से संगीत, नृत्य कार्य में संलग्न प्राचीन जाति / वर्ग है –
   (अ) चारण, शैलूष (ब) लंगा, मांगणियार (स) ब्राह्मण, क्षत्रिय (द) सिक्ख, पारसी
2. तमिलनाडु प्रदेश से प्रचलित शास्त्रीय नृत्य शैली है –
   (अ) ओडिसी (ब) कुचिपुड़ी (स) भरतनाट्यम (द) यक्ष गान
3. भरतनाट्यम के विकास व उत्थान हेतु जिसने कार्य किया ?
   (अ) केलुचरण महापात्र (ब) बिरजू महाराज (स) गुरू विपिन सिंह (द) रूक्मिणी देवी अरूण्डेल
4. नाट्यशास्त्र में वर्णित 'औड्र मागधी' का संबंध किससे है ?
   (अ) कथक (ब) ओडिसी (स) कथकलि (द) मोहिनीअट्टम
5. ओडिसी नृत्य में किस कला की साड़ी पहनने का प्रचार है –
   (अ) बनारसी (ब) कांजीवरम् (स) बोमकाई (द) मैसूर सिल्क
6. 'पुंग' वाद्य है ?
   (अ) तत् (ब) अवनद्ध (स) घन (द) सुषिर
7. कथक नृत्य का अंग है ?
   (अ) आलारिपु (ब) चाली (स) आमद (द) पल्लवी
8. अच्छन महाराज का संबंध किस नृत्य से है ?
   (अ) कथक (ब) भरतनाट्यम (स) मणिपुरी (द) ओडिसी
9. किस नृत्य में पाँवों में घुंघरू नहीं पहने जाते हैं ?
   (अ) भरतनाट्यम (ब) ओडिसी (स) कथक (द) मणिपुरी
10. स्थायी भाव ''जुगुप्सा'' का संबंध किस रस से है ?
    (अ) श्रृंगार (ब) भयानक (स) अद्भुत (द) वीभत्स
11. सुमेलित कीजिये –

(1) नटवरी	(अ) भरतनाट्यम
(2) गोटिपुवा	(ब) मणिपुरी
(3) लाई हारोबा	(स) ओडिसी
(4) दासी अट्टम	(द) कथक

12. संबंध मिलाइये–

(1) केलुचरण महाराज	(अ) ओडिसी
(2) बिंदादीन महाराज	(ब) मणिपुरी
(3) दर्शना झवेरी	(स) भरतनाट्यम
(4) मृणालिनी साराभाई	(द) कथक

अतिलघुरात्मक प्रश्न

1. कथक नृत्य को किन अन्य नामों से भी जाना जाता है ?

2. भरतनाट्यम शब्द की शाब्दिक व्याख्या कीजिऐ ?
3. मणिपरी नृत्य में किन वाद्यों द्वारा संगत की जाती है ?
4. मुगलकालीन कथक वेशभूषा कैसी थी ?
5. आधिकारिक तौर पर 'ओडिसी' नामकरण कब व किनके प्रयासों से स्वीकृत हुआ ?

लघुरात्मक प्रश्न

1. भारत की प्रमुख शास्त्रीय नृत्य शैलियों के नाम व उद्‌गम प्रदेश लिखिए ?
2. ओडिसी नृत्य की वेशभूषा समझाईये ?
3. मणिपुरी नृत्य में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के रास के नाम लिखिए ?
4. ''नवाब वाज़िद अली शाह पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
5. शास्त्रोक्त भाव व रसों का उल्लेख कीजिए ?

निबंधात्मक प्रश्न

1. भरतनाट्यम नृत्य शैली को समझाइये।
2. ''मणिपुरी नृत्य शैली प्रकृति व धर्म की गोद में विकसित हुई'' नृत्य के पश्चिम में कथन की विस्तृत समीक्षा लिखिए ।
3. ओडिसी नृत्य का विस्तृत दीजिए ।
4. ''कथक नृत्य में अनेक बदलाव देखे हैं'' कथन के अन्तर्गत नृत्य शैली को समझाइये।

उत्तर– बहुवैकल्पिक

1. अ, 2. स, 3–द, 4–ब, 5–स, 6–ब, 7–स, 8–अ, 9–द, 10–द,
11–(1–द), (2–स), (3–ब), (4–अ)
12. (1–अ), (2–द), (3–ब), (4–स)

शिक्षकों हेतु अनुदेश

- शास्त्रीय नृत्य शैलियों के चित्रों का संकलन करवावें।
- विद्यार्थियों को इनके वीडियो दिखाकरल शैी की विशेषता, वेशभूषा, वाद्य संगति आदि का ज्ञान करावें।

अध्याय 5

राजस्थान के लोक नृत्य

लोक

लोक शब्द में किसी क्षेत्र विशेष तथा वहाँ रहने वाले स्थानीय लोग दोनों का भाव अंतर्निहित है। मनुष्य आदिम काल से ही एक सामाजिक प्राणी है तथा लोक शब्द भी अत्यंत प्राचीन है। अतः लोक शब्द एक आदर्श व सुगठित समाज तथा क्षेत्र के संदर्भ में प्रचलित है। यह अंग्रेजी के 'Folk' शब्द का रूपान्तरण है। लोक जीवन में मनुष्य स्वप्रेरणा से सामूहिक कल्याण के लिये कुछ बंधन भी स्वीकार कर लेता है। लोकसाहित्य, लोककलाओं व लोक जीवनशैली द्वारा इसे आसानी से समझा व अनुभूत किया जा सकता है।

लोक संगीत

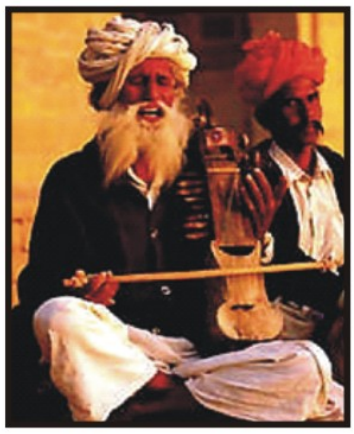

आदिकाल से मनुष्य के आनंद की सार्वभौमिक भाषा संगीत रही है। लोकजीवन में व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से, लोकजीवन के विविध सुख–दुःख, संयोग–वियोग–आवेग, आनंद आदि अनुभूतियों व परंपरा, त्यौहार, उत्सव, संस्कार आदि अवसरों पर की जानेवाली सुरमयी अभिव्यक्ति लोकसंगीत है।

लोकसंगीत में किसी नियमित प्रशिक्षण तथा शास्त्रीय अध्ययन की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। यह परंपरा से एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता आया है। कालक्रम से आवश्यकतानुसार इनमें परिष्कार व परिवर्तन होते रहते हैं। लोकसंगीत किसी क्षेत्र या समाज का सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करता है। माधुर्य, सरसता व स्वाभाविकता लोकसंगीत के विशेष गुण हैं।

लोकसंगीत के तीन अंग– लोकगीत, लोकवाद्य व लोकनृत्य हैं। लोक जनजीवन में भावनाओं की शाब्दिक

अनुभूति व उसकी स्वरमयी अभिव्यक्ति लोकगीत हैं। लोकगीतों की स्वर व ताल युक्त प्रस्तुति को लोकवाद्य और अधिक प्रभावी व आकर्षक बनाते हैं, तथा भावनाओं का तीव्र प्रवाह, जिसमें आनंद, उमंग, उत्साह से अभिभूत व मस्त होकर लयबद्ध अंग संचालन होता है, लोकनृत्य कहलाता है।

लोकनृत्य

मानव का मूल स्वभाव है कि किसी भी प्रकार की सफलता प्राप्त होने पर अनायास खुशी/प्रसन्नता को प्रकट करता है। यह प्रसन्नता, उत्साह व उमंग जब लयबद्ध अंग–संचालन के रूप में व्यक्त होता है तो लोकनृत्य कहलाता है। रीति–रिवाज, परंपरा, त्यौहार, उत्सव, संस्कार व प्राकृतिक तथा सामाजिक कारक लोकनृत्य के प्रस्तुतिकरण व भिन्नता को प्रभावित करते हैं तथा ये ही कारण मानव मन में आनंद व उन्मत्तता का संचार कर लोकनृत्य के प्रस्फुटन को प्रेरित करते हैं।

लोकनृत्य जीवन का अनिवार्य अंग हैं, ये मनुष्य के मानसिक, शारीरिक व सामाजिक स्वास्थ्य को संतुलित रखते हैं तथा सहज जीवन की आनंदानुभूति का स्त्रोत बन जाते हैं। इनके प्रशिक्षण की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है। स्वाभाविकता, इनका गुण है। आनंद अनुभुति की यह सहज प्रस्तुति सामुदायिक भावना से ओत–प्रोत शास्त्रीय बंधनों से मुक्त व स्वतंत्र होती है।

राजस्थान के लोकनृत्य

राजस्थान के लोकनृत्य अत्यंत सुंदर, आकर्षक, परिष्कृत व अलंकृत हैं। गीत, ताल, स्वर व लय के साथ आकर्षक भाव–भंगिमा, वेशभूषा आदि का संतुलित समन्वय इनमें दिखाई देता है। व्यक्तिगत आनंद अनुभूति तो प्रायः प्रत्येक श्रेणी के नृत्य का गुण हैं ही । इसके अलावा जाति विशेष के नृत्य, सामाजिक नृत्य, क्षेत्र विशेष के नृत्य, अवसर विशेष पर प्रस्तुत होने वाले नृत्य, व्यावसायिक नृत्य आदि अनेक श्रेणियों के अन्तर्गत इन लोकनृत्यों को समझा जा सकता है।

जाति विशेष के नृत्य

इन नृत्यों में राजस्थान की विशिष्ट जातियों में प्रचलित नृत्य हैं जिनमें – भील, मीणा, सहरिया, गरासिया, कामड़, कंजर, गुर्जर, कालबेलिया आदि जातियों में प्रचलित नृत्य हैं।

क्षेत्र विशेष के नृत्य

इस श्रेणी में कोई क्षेत्र विशेष एक नृत्य की पहचान बन जाता है – जैसे बाड़मेर का गैर नृत्य, जालौर का ढोल नृत्य, भरतपुर का बम नृत्य, करौली का लांगुरिया नृत्य, शेखावटी का गींदड़ नृत्य, नाथद्वारा का डांग नृत्य आदि प्रमुख हैं।

व्यावसायिक लोकनृत्य

कुछ लोकनृत्य व्यावसायिक दृष्टि से अत्यंत सफल, प्रचलित व पेशेवर श्रेणी के हैं जिन्हें सर्वत्र पहचान प्राप्त हुई है तथा दर्शकों द्वारा पसंद किये जाते हैं। ये नृत्य राजस्थान की वैश्विक पहचान व कलाकारों को आर्थिक संबल प्रदान करते हैं। इनमें – तेराताली, भवई, कच्छी घोड़ी आदि हैं।ये नृत्य जातिगत श्रेणी अथवा क्षेत्र विशेष के साथ–साथ उच्च व्यावसायिक श्रेणी का प्रतिनिधित्व करते है, उदाहरण– कालबेलिया नृत्य ।

प्रस्तुत अध्याय में राजस्थान के पारंपरिक तीन प्रमुख लोकनृत्यों का परिचय दिया जा रहा है जिनमें – घूमर, तेराताली, व चरी नृत्य हैं। इन नृत्यों ने राजस्थान को विश्व स्तर पर विशेष पहचान प्रदान की है।

(1) घूमर नृत्य

घूमर नृत्य राजस्थान का सर्वाधिक प्रचलित व राजस्थान की पहचान के तौर पर जाना जाता है। घूमर का अर्थ होता है – घूमना। इस नृत्य में दांए व बांए दोनों ओर घूमने से लहंगे का आकर्षक घेर बनता है। इस दौरान हाथों का लचकदार संचालन, कलाइयों व उंगलियों का कमनीय घुमाव व घूमने के दौरान झुकते हुए पुनः ऊपर उठने का ढंग अत्यंत प्रभावी होता है। नृत्यांगनाऐं पतला घूंघट डाले आकर्षक पारंपरिक लहंगा, चूनर, कांचली कुर्ती पहनकर विवाह, त्यौहार, उत्सव, मंच,राजकीय आयोजनोंव विद्यालयी कार्यक्रमों, प्रत्येक जगह, प्रत्येक अवसर पर घूमर नृत्य करती हैं।

इस नृत्य का ओज, परिधान व आकर्षक अलंकृत भाव–भंगिमाऐं राजपूताने की दरबारी संस्कृति का बोध कराती है। मूलतः राजस्थान की संस्कृति में तथा राजपूत रीति–रिवाजों में महिलाऐं घूंघट डालकर पारिवारिक अवसरों पर नृत्य करती हैं तथा भाव–भंगिमाओं में एक विशिष्ट सांस्कृतिक ओज के साथ ही अपनी नजाकत व कमनीयता को दर्शाती हैं।

नृत्य की वेशभूषा अत्यंत आकर्षक, गहरे चटक रंगों के वस्त्रों पर गोटा, तारी आदि के कार्य से सुसज्जित होती है। बोर, झूमके, नथ, पायल, रखड़ी, हार आदि आभूषण व हाथों व पाँवों में मेंहदी का शृंगार नृत्य की शोभा बढ़ा देते हैं।

नृत्य के दौरान शहनाई, ढोल, नगाड़ा, थाली आदि वाद्यों के साथ कहरवा ताल एक विशेष चाल में बजाई जाती है जिसे ''सवाई चाल'' या ''घूमर'' कहते हैं।इस दौरान घूमर का प्रसिद्ध गीत प्रचलित है जो राग सारंग के एक प्रकार (राग जलधर सांरग– कोमल ग़ व शुद्ध ध युक्त, ताल कहरवा) में बद्ध है–

ओ म्हारी घूमर छै नखराली ए माँ, घूमर रमवा म्हैं जास्यां
म्हानै राठौड़ा री बोली प्यारी लागै ए माय, घूमर रमवा म्हैं जास्यां
म्हानै रमतां नै लाडूड़ौ ल्यादो ए माय, घूमर रमवा म्हैं जास्यां
म्हानै परदसां मत दीजौ ए माय, घूमर रमवा म्हैं जास्यां

इसमें स्थान विशेष के साथ अन्य बन्द/पंक्तियाँ भी प्रचलित है। इस प्रमुख गीत के अलावा इसी ताल पर प्रचलित अन्य गीत भी घूमर नृत्य के दौरान प्रयुक्त किये जाते हैं। जिनमें –

- **सागर पाणी भरबा जाऊं सा, निजर लग जाय**
- **जला रे मूं तो राज रा डेरा निरखण आई**
- **म्हारी सवा लाख री लूम गम गई ईंडोणी**
- **कुणजी खुदाया कुआ बावड़ी.....आदि गीत प्रचलित हैं।**

राजस्थान की परिस्थितियों में यह नृत्य अत्यंत पल्लवित हुआ है तथा अन्य लोकनृत्यों पर भी घूमर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। घूमर की प्रस्तुति में भी अन्य लोकनृत्यों का मिश्रण किया जाने लगा है।

(2) चरी नृत्य

सिर पर चरी अथवा कलश भारतीय संस्कृति में शुभ सूचक माना जाता है, प्रज्ज्वलित अग्नि, दैवीय ऊर्जा का स्वरूप व पवित्रता का प्रतीक है। चरी नृत्य का चलन भी विवाह आदि शुभ अवसरों पर इन शुभ प्रतीकों के साथ नृत्य व आनंद का प्रदर्शन कर अवसर को और अधिक रंजक व कलात्मक बनाता रहा है। मूलतः गुर्जर जाति में किया जाने वाला यह नृत्य आज सर्वत्र प्रचलित है। गुर्जर लोग चरी का उपयोग दूध निकालने व उससे संबंधित कार्यों हेतु करते हैं।

नृत्यांगनाऐं चरी में कपास के बीज (काकड़े) जलाकर, चरी को सिर पर रखकर नृत्य करती हैं। सिर पर प्रज्ज्वलित अग्नि का दृश्य दर्शकों में प्रभाव उत्पन्न करता है। 6 से 10 महिलाओं का समूह घूमर नृत्य की आंशिक मुद्राओं के साथ, आकर्षक मुद्राओं, संरचनाओं व दृश्यों का निर्माण करता है। इस दौरान वृत्त के अंदर–बाहर निकलना, सीधी, आड़ी, तिरछी रेखाओं का निर्माण, बैठकर, लेटकर चरी का संतुलन बनाए रखना आकर्षण व प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

पुरुष ढोल, थाली, बांकिया आदि वाद्यों से संगत करते हैं। कई बार बिना गीत के ही केवल वाद्यों की ध्वनि पर ही नृत्य कर लिया जाता है तो कभी कहरवा (घूमर चाल) के ही विविध गीतों पर प्रस्तुति होती है। किशनगढ़ का नाम इस नृत्य के नाम से भी जाना जाता है। फलकू बाई ने इस पारंपरिक नृत्य को पेशेवर तथा मंचीय प्रस्तुति के रूप में स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस दौरान घूमर नृत्य के प्रसिद्ध गीत–

- **सागर पाणी भरबा जाऊं सा, नजर लग जाय**
- **ओ म्हारी घूमर छै नखराली ए माँ, घूमर रमवा म्हैं जास्या**
- **जला रे मूं तो राज रा डेरा निरखण आई**
- **कुणजी खुदाया कुआ बावड़ी**.....आदि अनेकों गीत प्रचलित हैं।

(3) तेराताली नृत्य

राजस्थान के लोक देवी–देवताओं में रामदेव जी का प्रमुख स्थान है। रामदेव जी के भोपे 'कामड़' कहलाते हैं। ये हाथ में तंबूरा/वीणै तथा मंजीरा, ढोलक की संगति देकर रामदेव जी के गीत गाते हैं तथा महिलायें नृत्य करती हैं। नृत्य के दौरान मंजीरे की निरन्तर टंकार से वातावरण में एक विचित्रता छा जाती है। मंजीरा और तेराताली का अद्‌भुत संयोग नृत्य में दिखाई देता है।

नृत्यांगनाऐं तेरह मंजीरों में से 9 को दायें पाँव पर बांधती हैं, दो मंजीरे कोहनी के ऊपर तथा दो कंधों पर बांधती हैं। इन 13 मंजीरों को, दो अन्य मंजीरे (जो हाथ में लिये होते हैं, उन्हें घूमाते हुए) से टकराकर लय व ताल के वैचित्र्य दर्शाती है। इस दौरान टन, टन, टन टन की बहुरंगी ध्वनि मन को आल्हादित करती रहती है। सिर पर थाल में कलश रखकर मुँह से तलवार पकड़ती हैं तथा बैठकर, लेटकर, पाँव फैलाकर आदि विविध स्थितियों में मंजीरों को लगातार टकराकर मनोरम वातावरण सृजित करती हैं। कभी–कभी ऊंगलियों पर थाली को लगातार घूमाकर भी प्रदर्शन करती हैं। यह नृत्य 1 से 5 नृत्यांगनाऐं अर्थात एकल तथा सामूहिक दोनों रूपों में होता है।नृत्य में पारंपरिक पोषाक व आभूषण पहने जाते हैं। रामदेव जी के सैंकड़ों गीत, प्रचलित हैं।

सर्वाधिक प्रचलित गीत –

अरे हे, रूणिचे रा धणियां, अजमाल जी रा कंवरा
माता मेणादि रा लाल, राणी नेतल रा भरतार
म्हारो हेलो सुणो जी रामा पीर
घर–घर होवे पूजा थारी, गांव–गांव जस गावे जी ।
जो कोई लेवे नाम पीर को, मन चाह्यां फल पावे जी।
ओ राम सा पीर थारी, धूणीं पे धोक लगावां,
मनड़ा रा फूल चढ़ावा ।।

मरतोड़ा ने जीवदान दो जीता ने वरदान जी ।
थारी शरण में आयोड़ा ने मिलै अभय वरदान जी।
महिमा अपरंपार थारी, धन–धन भाग विधाता,
ओ घणी खम्मां अनदाता ।।

इसके अतिरिक्त – **पश्चिम दिशो सूं म्हारा रामजी पधार्‌या**––– आदि गीत भी प्रचलित हैं। पारंपरिक, आध्यात्मिक व क्षेत्रीय श्रेणी का नृत्य आज पेशेवर या व्यावसायिक दृष्टि से भी अत्यंत प्रचलित है। विदेशी लोग भी इसका प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रदर्शन कर रहे हैं। पोकरण में रामदेव जी की समाधि स्थित है, पोकरण क्षेत्र कामड़ लोगों के लिए विशेष महत्त्व का स्थान है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- लोक शब्द अंग्रेजी के शब्द 'FOLK' का रूपांतरण हैं। इसमें किसी क्षेत्र तथा लोक दोनों का भाव निहित है।
- सदियों से लोक संगीत की त्रिवेणी धारा (गायन, वादन, नृत्य) प्रवाहित होती रही है।
- लोक जीवन में किसी भी प्रकार की प्रसन्नता की लयबद्ध अंग संचालन युक्त अभिव्यक्ति 'लोकनृत्य' कहलाती है।
- राजस्थान के लोकनृत्य अत्यंत सुंदर, आकर्षक व परिष्कृत हैं।
- राजस्थान में जातिगत, क्षेत्रीय व व्यावसायिक श्रेणी के नृत्यों की वृहद श्रृंखला है।
- 'घूमर' सर्वाधिक प्रचलित, नृत्य है। यह राजस्थान का आदर्श नृत्य व रजवाड़ी शान का प्रतीक है।
- घूमर में घूमने के दौरान हाथों व कलाइयों का लचकदार संचालन व घूमते हुए झुककर उठना विशेष आकर्षक मुद्राऐं हैं।
- 'कामड़' जाति की महिलायें, 13 मंजीरों को हाथों व पाँवों में बांधकर, लोक देवता रामदेव जी के गीतों पर तेराताली नृत्य करती हैं।
- मंजीरे की लयात्मक टन् – टन् – टन् आवाज़ तेराताली नृत्य का विशेष वैभव है।
- किशनगढ़ का चरी नृत्य गुर्जर जाति का प्रचलित नृत्य है। सिर पर चरी में अग्नि जलाकर आकर्षक मुद्राओं में यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है।
- फलकू बाई को चरी नृत्य की मंचीय प्रस्तुति में योगदान के लिये जाना जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. निम्न में से लोकनृत्य है ?
   (अ) भरतनाट्यम (ब) कथक (स) तेराताली (द) ओडेसी
2. राजस्थान की पहचान व रजवाड़ी संस्कृति का प्रतीक नृत्य कौनसा है ?
   (अ) तेराताली (ब) कालबेलिया (स) घूमर (द) अग्नि नृत्य
3. तेराताली नृत्य के गीत किस लोक देवता पर आधारित होते हैं ?
   (अ) पाबू जी (ब) रामदेव जी (स) तेजाजी (द) राणी सती
4. 'कामड़' लोगों का संबंध किस नृत्य से है ?
   (अ) तेराताली (ब) घूमर (स) चरी (द) गैर नृत्य
5. घूमर नृत्य में किस ताल का प्रयोग होता है ?
   (अ) कहरवा (ब) दादरा (स) रूपक (द) झपताल
6. चरी नृत्य का संबंध किससे है ?
   (अ) गुलाबो (ब) अल्लाजिलाई बाई (स) मांगी बाई (द) फलकू बाई

7. चरी नृत्य में अग्नि जलाने हेतु प्रयोग में लिये जाते हैं ?
   (अ) लकड़ी के टुकड़े (ब) जलते हुए कोयले (स) कपास के बीज, काकड़े (द) कपड़े
8. तेराताली नृत्य में किस वाद्य का विशेष प्रयोग होता है ?
   (अ) ढोलक (ब) मंजीरा (स) खड़ताल (द) नगाड़ा
9. चरी नृत्य का संबंध मूलतः किस स्थान से माना जाता है ?
   (अ) किशनगढ़ (ब) चित्तौड़गढ़ (स) कुशलगढ़ (द) नवलगढ़
10. ''घूमर रमबा म्हैं जास्यां'' गीत किस राग पर आधारित है ?
    (अ) देस (ब) भैरव (स) यमन कल्याण (द)सारंग का प्रकार

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लोकनृत्य किसे कहते हैं ?समझाइये ।
2. 'राजस्थान के लोकनृत्य' पर टिप्पणी लिखिए।
3. 'घूमर नृत्य' में प्रयुक्त किया जाने वाला कोई गीत लिखिए।
4. 'तेराताली' नृत्य का परिचय दीजिये।
5. चरी नृत्य का प्रदर्शन किस प्रकार किया जाता है?उल्लेख कीजिए।
6. ''घूमर नृत्य राजस्थान की पहचान है।'' कथन की व्याख्या कीजिए।
7. तेराताली व घूमर नृत्य में वाद्यों के प्रयोग का तुलनात्मक विवरण दीजिए।

उत्तर बहुवैकल्पिक प्रश्न

(1) स (2) स (3) ब (4) अ (5) अ (6) द (7) स (8) ब (9) अ (10) द

शिक्षकों हेतु अनुदेश

- लोक व शास्त्रीय नृत्य अंतर को व्यावहारिक तौर पर स्पष्ट करावें।
- राजस्थान के लोक नृत्यों व अन्य प्रदेश के लोक नृत्यों की वेशभूषा, मुद्राऐं, वाद्य प्रयोग आदि की चर्चा करें।
- विद्यालयी कार्यक्रमों में लोकशैली की प्रस्तुति व प्रतियोगिता करावें।

अध्याय 6

ताल

ताल की शास्त्रोक्त परिभाषा पूर्व में उल्लिखित की गई है। ताल की सहायता से गायन, वादन, नृत्य क्रियाऐं सम्पन्न होती हैं। ताल की संरचना में – उसकी निर्धारित मात्रा, संख्या, विभाग, ताल के बोल, ताली व खाली का अंकन आदि प्रमुख घटक हैं।

प्रस्तुत अध्याय में निर्धारित ताल का ठेका, दुगुन व चौगुन क्रियाओं से विद्यार्थियों को परिचय कराया जाना है। अतः ताल व लय के इन विविध स्वरूपों को समझना आवश्यक है।

ठाह अथवा ठेका

किसी ताल की मूल संरचना को ठेका कहते हैं। ताल के ठेके में निर्धारित की गई मात्रा/काल अवधि में ताल के निर्धारित बोलों को बोला जाता है। जैसे –

ताल मात्रा काल (4)	1	2	3	4
ताल के बोल	धा	धिं	धिं	धा

यहाँ 1, 2, 3, 4, तो निर्धारित की गई मात्रा/संख्या है, तथा धा, धिं, धिं, धा उसके बोल है। माना कि यह संपूर्ण रचना है तो यह ताल का ठेका कहलायेगा।

दुगुन

अर्थात – दुगुना, ठेके में एक मात्रा काल में एक बोल (धा) बोला गया लेकिन दुगुन में एक मात्रा काल में दो बोल (धा धिं) बोले जाऐंगे। यानि 4 बोल (धा, धिं, धिं, धा) को दो मात्रा काल में ही बोल देना दुगुन है। इसे घड़ी की सैकंड वाली सुई से समझें –

सैंकण्ड की सुई अथवा मात्रा काल	1	2	3	4
दुगुन में संख्या अभ्यास	12	34	12	34
दुगुन में ताल के बोल	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा

चौगुन

अर्थात – चौगुना । एक मात्रा काल में 4 तक संख्या या बोल बोलना। इस प्रकार 4 मात्रा काल में 16 संख्या या बोल चौगुन कहलायेंगी। इसमें ठेके के मूल मात्रा काल में, चौगुनी गति से कार्य किया गया।

सैंकण्ड की सुई अथवा मात्रा काल	1	2	3	4
चौगुन में संख्या अभ्यास	1234	1234	1234	1234
चौगुन में ताल के बोल	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा

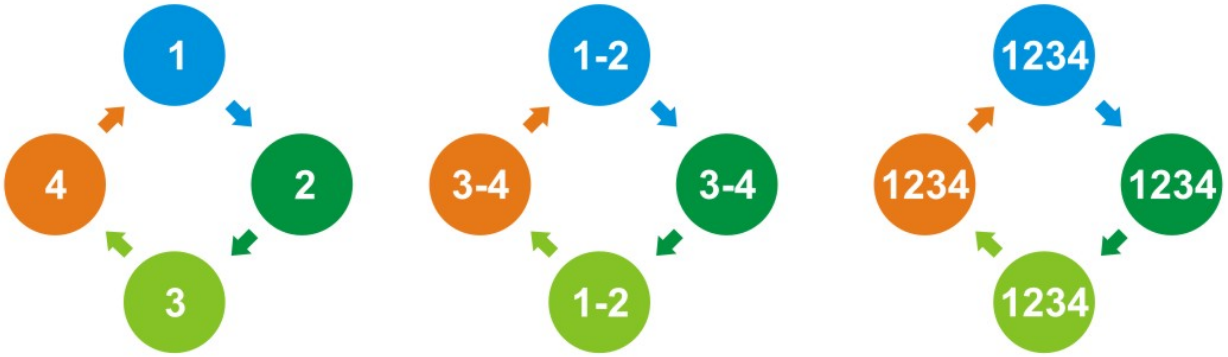

ठेका **दुगुन** **चौगुन**

लयकारी हेतु प्रचलित दो तरीके –(1) एक आवर्तत की दुगुन (2) संपूर्ण ताल मात्रा में दुगुन
दोनों ही प्रक्रिया में मूल ताल/ठेका का निर्धारित मात्रा काल पूर्ण करना अतिआवश्यक होता है।

(1) एक आवर्तन की दुगुन

जैसे ताल दादरा में 6 मात्रा है, अब 6 मात्रा की दुगुन 3 मात्रा में आएगी। लेकिन 6 मात्रा काल को पूर्ण करने के लिये तीन मात्रा तक ठेका तथा शेष तीन मात्रा में पूरी ताल की दुगुन की जाएगी –

ताल – दादरा (मात्रा–6)

मात्रा काल	1	2	3	4	5	6
ताल का ठेका	धा	धीं	ना	धा	तीं	ना
एक आवर्तन की दुगुन	धा	धीं	ना	धाधीं	नाधा	तींना
संख्या द्वारा	1	2	3	1 2	3 4	5 6
	X			0		

(2) संपूर्ण ताल आवर्तन में दुगुन

इस प्रक्रिया में ताल की प्रत्येक मात्रा पर ठेके के 2–2 बोल बोलते हुए 6 मात्रा काल में संपूर्ण ताल के बोल दो बार बोले जाऐंगे तथा 6 मात्रा काल पूर्ण किया जाएगा। इसी प्रकार चौगुन में ताल के बोल 4 बार बोले जाऐगें।

मात्रा काल	1	2	3	4	5	6
ताल का ठेका	धा	धीं	ना	धा	तीं	ना
दुगुन	धाधीं	नाधा	तींना	धाधीं	नाधा	तींना
संख्या द्वारा	1 2	3 4	5 6	1 2	3 4	5 6
	X			0		

अतः लयकारी के किसी भी प्रकार (दुगुन, तिगुन, चौगुन .....) में ताल की मूल संरचना में स्थित मात्रा संख्या को पूर्ण करना आवश्यक है।

पाठ्यक्रम में निर्धारित तालों की ठाह, दुगुन, चौगुन

त्रिताल अथवा तीन ताल

त्रिताल में 16 मात्रा तथा 4 भाग होते हैं। प्रत्येक भाग में 4–4 मात्राऐं होती हैं। 1, 5 व 13वीं मात्रा पर ताली तथा 9वीं मात्रा पर खाली होती है। शास्त्रीय संगीत में अत्यंत प्रचलित ताल है।

ताल – त्रिताल (16 मात्रा, 4 भाग)

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
दुगुन	धा	धिं	धा	धा	धा	धिं	धिं	धा	धाधिं	धिंधा	धाधिं	धिंधा	धातिं	तिंता	ताधिं	धिंधा
चौगुन	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	धाधिंधिंधा	धाधिंधिंधा	धातिंतिंतां	ताधिंधिंधा
	X				2				0				3			

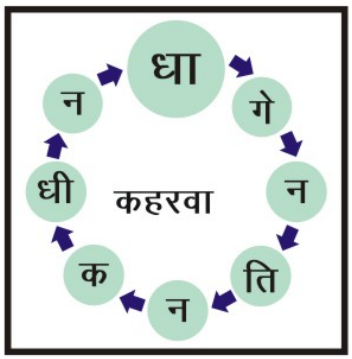

ताल – कहरवा (8 मात्रा, 2 भाग)

इसमें 8 मात्रा व 2 भाग होते हैं। प्रत्येक भाग में 4–4 मात्राऐं हैं। पहली मात्रा पर ताली तथा 5वीं मात्रा पर खाली है। गीत, गज़ल, भजन, ठुमरी, लोक संगीत आदि में सर्वाधिक प्रचलित ताल है।

ठेका	धा	गे	न	ति	न	क	धि	न
दुगुन	धा	गे	न	ति	धागे	नति	नक	धिन
चौगुन	धागेनति	नकधिन	धागेनति	नकधिन	धागेनति	नकधिन	धागेनति	नकधिन
	X				0			

ताल – दादरा (6 मात्रा, 2 भाग)

दादरा ताल में 6 मात्रा व 2 भाग हैं। प्रत्येक भाग में 3–3 मात्रा हैं। पहली मात्रा पर ताली व चौथी मात्रा पर खाली है। कहरवा के समान ही यह ताल गीत, गज़ल, भजन, ठुमरी, दादरा आदि शैलियों में सर्वाधिक प्रचलित है।

ठेका	धा	धीं	ना	धा	तिं	ना
दुगुन	धा	धीं	ना	धाधीं	नाधा	तिंना
चौगुन	धाधींनाधा	तींनाधाधीं	नाधातीना	धाधींनाधा	तीनाधाधीं	नाधातींना
	X			0		

ताल – एकताल (12 मात्रा, 6 भाग)

ख्याल गायन में यह त्रिताल के समान प्रचलित ताल है। इसमें 5, 9, 11 पर ताली तथा 3 व 7 पर खाली दर्शायी जाती है।

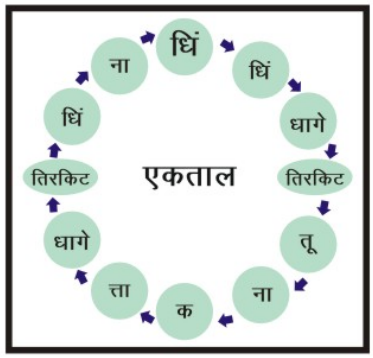

ठेका	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
	X		0		2		0		3		4	
दुगुन	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	धिंधिं	धागेतिरकिट	तूना	कत्ता	धागेतिरकिट	धिंना
चौगुन	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता	धागे	धिंधिंधागेतिरकिट	तूनाकत्ता	धागेतिरकिटधिंना
	X		0		2		0		3		4	

ताल – चौताल (12 मात्रा, 6 भाग)

चौताल में 12 मात्रा व 6 भाग होते हैं। 1, 5, 9, 11वी मात्रा पर ताली तथा 3, 7 वीं मात्रा पर खाली होती है। ध्रुपद गायन में यह अत्यधिक प्रचलित है। इसका वादन पखावज वाद्य पर होता है।

ठेका	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
दुगुन	धा	धा	दि	ता	किट	धा	धाधा	दिंता	किटवा	दिंता	तिट कत	गदि गन
चौगुन	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	धाधादिंता	किटधादिंता	तिटकतगदिगन
	X		0		2		0		3		4	

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. ताल की निर्धारित मूल संरचना कहलाती है ?
   (अ) ठेका (ब) अंतरा (स) दुगुन (द) कला
2. एक मात्रा काल में दो मात्रा के बोलों को बोलना क्या कहलाता है ?
   (अ) लय (ब) दुगुन (स) चौगुन (द) ठेका

3. एक मात्रा काल में चार मात्रा के बोलों को बोलना क्या कहलाता है ?
   (अ) ठेका (ब) दुगुन (स) चौगुन (द) ताल
4. 10 मात्रा के एक आवर्तन की दुगुन कितनी मात्रा में आएगी ?
   (अ) 10 (ब) 5 (स) 2 (द) कोई नहीं
5. 12 मात्रा के ताल की चौगुन, प्रारम्भ से लिखने पर मूल ताल को कितनी बार लिखा जाएगा?
   (अ) 12 (ब) 6 (स) 3 (द) 4

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. किसी भी ताल की दुगुन किस प्रकार ज्ञात की जाएगी ?
2. किसी भी ताल की चौगुन किस प्रकार ज्ञात की जाएगी ?
3. ताल कहरवा का ठेका व दुगुन लिखिए ?
4. ताल त्रिताल का ठेका व दुगुन लिखिए ?
5. ताल एकताल की चौगुन लिखिए?

उत्तर बहुवैकल्पिक प्रश्न

(1) अ (2) ब (3) स (4) ब (5) द

शिक्षकों हेतु अनुदेश

- घड़ी की सुई के साथ तालों की ठेका, दुगुन, चौगुन का अभ्यास करावें।
- अभ्यास पहले अंकों से करावें।
- ताल चक्रों के चित्र प्रोजेक्ट में बनवावें।

प्रायोगिक कार्य हेतु परिशिष्ठ 1

तत्कार की दुगुन, चौगुन

तत्कार की दुगुन, चौगुन आदि लयकारी भी ताल अध्याय में सिखाई गई लयकारी के समान ही की जानी है। ताल अध्याय में मूल ताल की दुगुन, चौगुन की गई है और यहाँ तत्कार के बोल, जो त्रिताल में बद्ध है, उनकी दुगुन चौगुन की जा रही है। (पैर– दां = दांया एवं बां = बांया समझें)

ठाह	ताऽ	थेई	थेई	तत्	आऽ	थेई	थेई	तत्	ताऽ	थेई	थेई	तत्	आऽ	थेई	थेई	तत्
पैर	दां	बां	दां	बां	बां	दां	बां	दां	दां	बां	दां	बां	बां	दां	बां	दां
चिन्ह	X				2				0				3			

दुगुन	ताऽथेई	थेईतत्	आऽथेइ	थेईतत्	ताऽथेई	थेईतत्	आऽथेई	थेईतत्
	X				2			
दुगुन	ताऽथेई	थेईतत	आऽथेई	थेईतत्	ताऽथेई	थेईतत्	आऽथेई	थेईतत्
	0				3			
चौगुन	ताऽथेई थेईतत्	आऽथेई थेईतत	ताऽथेई थेईतत्	आऽथेई थेईतत्	ताऽथेई थेईतत्	आऽथेई थेईतत्	ताऽथेई थेईतत्	आऽथेई थेईतत्
	X				2			
चौगुन	ताऽथेइ थेईतत्	आऽथेइ थेईतत	ताऽथेइ थेईतत्	आऽथेइ थेईतत्	ताऽथेइ थेईतत्	आऽथेइ थेईतत्	ताऽथेइ थेईतत्	आऽथेइ थेईतत्
	0				3			

तत्कार के पलटे

ताल–त्रिताल (16 मात्रा)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
ता	थेई	थेई	तत	आ	थेई	थेई	तत	ता	थेई	थेई	तत	आ	थेई	थेई	तत
X				2				0				3			
तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	आऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	आऽथेई	थेईतत्
तत्	तत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	आऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	आऽथेई	थेईतत्
तत्	ताऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	तत्	आऽथेई	थेईतत्	तत्	ततथेई	थेईतत्	तत्	तत्	तत्	आऽथेई	थेईतत्
तत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	तत्	आऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	तत्	आऽथेई	थेईतत्
तत्	तत्	तत्	तत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्	तत्	तत्	तत्	तत्	तत्	तत्	ताऽथेई	थेईतत्
ताथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत्	आथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत्	ताथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत्	आथे	ईत	ताऽथेई	थेईतत्
ऽऽतत्	ततत्त्	ताऽथेऽ	ईऽताऽ	ऽऽतत्	ततत्त्	आऽथेऽ	ईऽताऽ	ऽऽतत्	ततत्त्	ताऽथेऽ	ईऽताऽ	ऽऽतत्	ततत्त्	आऽथेऽ	ईऽताऽ
ताऽथेई	थेईतत्	ताऽथेई	थेईतत्	ताऽथेई	थेईतत्	ऽऽतत्	ततत्त्	आऽथेई	थेईतत्	आऽथेई	थेईतत्	ताऽथेई	थेईतत्	ऽऽतत्	ततत्त्
X				2				0				3			

प्रायोगिक कार्य हेतु परिशिष्ठ 2

संगत हेतु लहरे

ताल – त्रिताल राग – चन्द्रकौंस

ग	म	ध	नि	सां	–	–	सां	नि	ध	नि	सां	नि	ध	म	गसा
3		–		x				2				0			

राग – किरवानी

ग	सा	ध़	नि़	सा	–	–	सारे	प	पप	ध	प	म	ग	रे	गम
3				x				2				0			

राग – खमाज

सां	–	नि	ध	–	म	प	ध	म	ग	–	सा	ग	म	प	नि
x				2				0				3			

ताल – एकताल

राग – खमाज

सां	–	नि	सां	ध	नि	ध	म	ग	सा	नि़	सा				
x		0		2		0		3		4					

राग – बागेश्री

सां	–	नि	ध	म	ध	नि	ध	म	ग	रे	सा				
x		0		2		0		3		4					

राग – तिलंग

ग	म	प	नि	सां	–	–	नि	प	म	ग	सा				
3		4		x		0		2		0					

प्रायोगिक कार्य हेतु परिशिष्ठ 3

कवित्त

छंदबद्ध शब्द रचना 'कवित्त' (कविता) कहलाती है। कवित्त द्वारा नृत्य को गति दी जाती है। इसमें कविता का अंग ही अधिक होता है तथा नृत्य व तबले–पखावज के बोल कभी–कभी संलग्न होते हैं। इनमें लय–ताल का सुंदर स्वरूप भी दिखता है। प्रायः सभी देवी–देवताओं की रचनाऐं प्राप्त होती हैं पर सर्वाधिक राधा–कृष्ण के कवित्त प्रचलित हैं। पखावज वादक इसके लिये 'परन' शब्द का प्रयोग करते हैं। कवित्त भाव संप्रेषण में आसान तथा दर्शकों को प्रभावित करने में सक्षम होते हैं। ठुमरी द्वारा नृत्य में भाव अदायगी प्रस्तुत की जाती है तथा कवित्त नृत्य को गति प्रदान करते हैं। रीतिकालीन ब्रजभाषा के अनेक छंद नृत्य हेतु 'कवित्त' रचना के रूप में ग्रहण किए गए ।

1. मुरली मनोहर कृष्ण कन्हैया,
   जमुना के तट पे बिराजै हैं।
   कान में कुंडल हाथ मुरलिया
   धा मुरलिया धा मुरलिया।

2. मुरली की धुन सुन राधे आई।
   श्याम सुंदर संग छम छम नाचत।
   तिगधा दिगदिग धई तिगधा।
   दिगदिग धई तिगधा दिगदिग।

3. खम्भ फाड़ प्रहलाद उबार्‌यो
   रामचन्द्र बन रावण मार्‌यो
   गगन निवासी घट–घट वासी
   शंख चक्र अरु गदा पद्म धर
   लक्ष्मीपते नमोः– तिहाई

4. नाचत गोपाल लाल, तक्क धिकिट धेधे तड़ान
   राधा मुसकात आन, धातिरकिट धुमतिरकिट धिंनड़ान
   मुरलीधर अधर लीनी सांवरे ने एक तान
   राधिका ने नृत्य कियो, मार के कटाक्ष बान
   धिन–धिन–धिन, जात–जात तट तट तट यमुना तट
   द्रिगिन द्रिगिन नीर जात, कुंज–कुंज, भटक–भटक
   ध्रिग–ध्रिग–ध्रिग ग्वालन को, ध्रिग–ध्रिग–ध्रिग गोपिन को
   निरखे हैं जिनके नैन, गोवरधन धारी को
   धन–धन–धन भाग उनके हैं– 3 पंक्ति की तिहाई।

प्रायोगिक कार्य हेतु परिशिष्ठ 4

आमद

लखनऊ घराने की आमद– त्रिताल

धात	कथुं	गाऽ	धागे	दिगि	ताऽ	धाऽऽदिं	ऽऽताऽ	
धित्ता	किड़धा	तऽकाऽ	थुऽगा	तकिटत	काऽ	तिटकत	गदिगन	
धाऽऽति	ऽऽटऽ	धाऽऽति	ऽऽटऽ	धा	कड़नग	धाऽऽति	ऽऽटऽ	
धाऽऽति	ऽऽटऽ	धा	कड़नग	धाऽऽति	ऽऽटऽ	धाऽऽति	ऽऽटऽ	। धा

जयपुर घराने की आमद– त्रिताल

धातिटधा	तिटधाधा	तिटकिड़धा	तिटधागे	दिगिनागे	तिटकता	किड़धातिट	धातिधाऽ	
नधाऽन	धाऽकिड़धा	तिटधाति	धाऽनधा	ऽनधाऽ	किड़धातिट	धातिधाऽ	नधाऽन ।	धा

सलामी

तत्	ऽऽ	तत्	ऽऽ	ताऽ	थेई	थेई	तत्	
आऽ	थेई	थेई	तत्	तऽ	ऽत	तऽ	ऽत	
थेई	1	2	3	तऽ	ऽत	तऽ	ऽत	
थेई	1	2	3	तऽ	ऽत	तऽ	ऽत	। धा

तिहाई दार तोड़ा

तत्	तत्	थेई	तत्	तिगधाऽ	दिगदिग	थेई	ऽऽ	
तत्	तत्	थेई	तत्	तिगधाऽ	दिगदिग	थेई	ऽऽ	
तत्	तत्	थेइ	तत्	तिगधाऽ	दिगदिग	थेई	ऽऽ	
तिगधाऽ	दिगदिग	थेई	तिगधाऽ	दिगदिग	थेई	तिगधा	दिगदिग	। धा

राजस्थान के कुछ प्रसिद्ध संगीतज्ञ

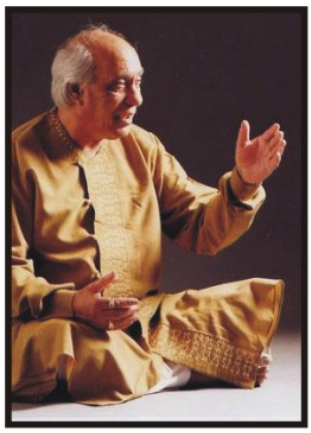

ज़िया फरीदुद्दीन डागर
ध्रुपद गायक

पं. चतुर लाल
तबला वादक

उ. सुल्तान खां
गायक एवं सारंगी वादक

पं. विश्वमोहन भट्ट
मोहन वीणा वादक

पं. कुन्दनलाल गंगानी
कथक, जयपुर शैली

जगजीत सिंह
गज़ल गायक

अल्लाजिलाई बाई
मांड गायिका

उ. साकर खां मागणियार
कमाइचा वादक

गुलाबो
सपेरा नृत्यांगना

पाठ्य क्रम में निर्धारित रागों पर आधारित कुछ प्रसिद्ध फिल्मी गीत

	गीत	गायक	फिल्म
अ.	**राग भैरव**		
1.	जागो मोहन प्यारे	लता मंगेशकर	जागते रहो
2.	मोहे भूल गये सांवरिया	लता मंगेशकर	बैजू बावरा
3.	दिल एक मंदिर है	लता मंगेशकर–मो. रफी	जदिल एक मंदिर
ब.	**राग यमन**		
1.	चंदन सा बदन	लता मंगेशकर–मुकेश	सरस्वती चन्द्र
2.	वो जब आए	लता मंगेशकर–मो. रफी	पारसमणी
3.	आंसू भरी है	मुकेश	परवरिश
4.	जब दीप जले आना	लता मंगेशकर–येशुदास	चितचोर
5.	जिया ले गयो जी मोरा	लता मंगेशकर	अनपढ़
स.	**बागेश्री**		
1.	राधा ना बोले, ना बोले	लता मंगेशकर	आज़ाद
2.	जाग दर्दे इश्क जाग	हेमन्त कुमार	अनारकली
3.	तूने ओ रंगीले कैसा	लता मंगेशकर	कुदरत
द.	**राग देशकार**		
1.	सायो नारा सायो नारा	आशा भौंसले	लव इन टोक्यो
2.	ज्योति कलश छलके	लता मंगेशकर	भाभी की चूड़ियां
3.	पंख होते तो उड़ आती रे	लता मंगेशकर	सेहरा
4.	नीले गगन के तले	महेन्द्र कपूर	हमराज
य.	**राग देस**		
1.	वंदे मातरम	पारम्परिक	
2.	ओम जय जगदीश हरे	पारम्परिक	
3.	अजी रुठ कर अब कहां	लता मंगेशकर	आरजू

भारत रत्न

एम. एस. सुब्बालक्ष्मी

कर्नाटक शास्त्रीय गायन - 1998

पं. रविशंकर

सितार वादन - 1999

उ. बिस्मिल्लाह खान

शहनाई वादन - 2001

लता मंगेशकर

पार्श्व गायन - 2001

पं. भीमसेन जोशी

हि. शास्त्रीय गायन - 2008

परिशिष्ठ

राष्ट्रगान

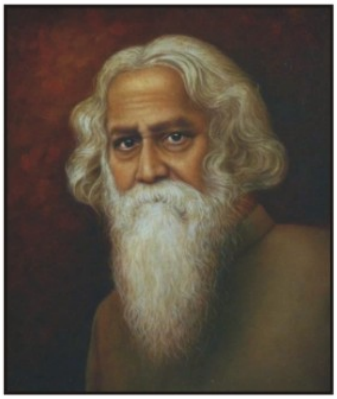

रचना : रविन्द्र नाथ टैगौर

जनगणमन–अधिनायक जय हे, भारत भाग्यविधाता ।
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बंग
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा, उच्छल जलधितरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशीष मांगे, गाहे तव जयगाथा।
जनगण–मंगलदायक जय हे, भारत–भाग्यविधाता।
जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय, जय हे।।

(राष्ट्रगान की निर्धारित गायन अवधि 52 सैकण्ड है)

राष्ट्रगीत : वन्दे मातरम्

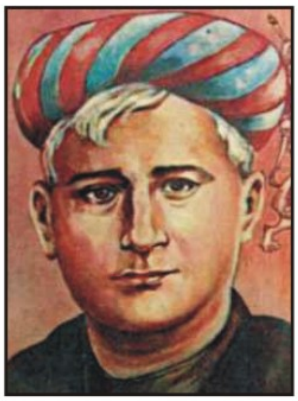

रचना : बंकिम चंद्र चटर्जी

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम् शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्रज्योत्स्ना–पुलकित यामिनीम् फुल्लकुसुमित–द्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम् सुखदां वरदां मातरम्।
सप्तकोटिकण्ठ–कल–कल–निनादकराले,
द्विसप्तकोटि भुजैर्धृतखरकरवाले,
अबला केन मा एत बले!
बहुबलधारिणीं नमामितारिणीं रिपुदलवारिणीं मातरम्।
तुमि विद्या तुमि धर्म्म, तुमि हृदि तुमि मर्म्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाहुते तुमि मा शक्ति, हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ि मन्दिरे मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी, कमला कमल–दल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी नमानि त्वां, नमामि कमलाम् अमलां अतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम् वन्दे मातरम् श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीम् मातरम्।